"उत्तर प्रदेश में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद गठित आयोगों द्वारा प्रतिपादित नीतियों तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति १९८६ का तुलनात्मक अध्ययन"

(A Comprative Study of the National Education Policy 1986 with the Policies enunciated by the Commission Constituted after Independence in Uttar Pradesh)

बुण्देलखण्डं विश्वविद्यालय झाँसी
शिक्षा संकाय में
विद्या वाचस्पति (पी–एच.डी.)
की उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध - प्रबन्ध

2002

निर्देशक
डा० डी०एस० श्रीवास्तव
अधिष्ठाता – शिक्षा संकाय
संयोजक – पाठ्यक्रम समिति
बुण्देल खण्ड विश्वविद्यालय – झाँसी
विभागाध्यक्ष – शिक्षक – शिक्षा विभाग
अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कालेज – अतर्रा (बांदा)

शोधकर्त्री
श्रीमती सविता रानी जैन
एम०ए० (इतिहास, समाजशास्त्र)
एम० एड०, डिप्लोमा इन रूरल डवलपमेंट
लखनऊ – उत्तर प्रदेश
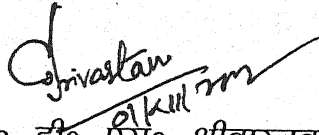
डॉ० डी० एस० श्रीवास्तव
अधिष्ठाता, शिक्षा संकाय
संयोजक, पाठ्यक्रम समिति
बुन्देलखण्उ विश्वविद्यालय
झांसी

दूरभाष : 05191-244290, 244204
विभागाध्यक्ष,
शिक्षक शिक्षा विभाग
अतर्रा कालेज अतर्रा
दिनांक : 01 / 12 / 2002

प्रमाण - पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्रीमती सविता रानी जैन ने बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी द्वारा शिक्षा विषय पर स्वीकृत "उत्तर प्रदेश में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद गणित आयोगों द्वारा प्रतिपादित नीतियों तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति १९८६ का तुलनात्मक अध्ययन" विषय पर मेरे निर्देशन में बड़े परिश्रम और अध्यवसाय से यह शोध प्रबन्ध पूर्ण किया है। इसकी विषय सामग्री मौलिक है और यह सम्पूर्ण या आंशिक रूप से किसी अन्य परीक्षा के लिए प्रयोग नही की गयी है। श्रीमती जैन ने अवकाश के दिनों में २०० दिन उपस्थित रहकर यह कार्य पूर्ण किया है।

यह शोध-प्रबन्ध बुन्देल खण्ड विश्वविद्यालय झांसी की पी-एच०डी० आर्डिनेन्स सभी उपबन्धों की पूर्ति करता है। मैं संस्तुति करता हूँ कि यह शोध-प्रबन्ध इस योग्य है कि मूल्यांकन हेतु विश्वविद्यालय को प्रस्तुत किया जाय।

Shrivastava
01/XII/2002

(डॉ० डी० एस० श्रीवास्तव)
अधिष्ठाता
शिक्षा-संकाय
बुन्देल खण्ड विश्वविद्यालय
झांसी

आत्म निवेदन

भारतीय समाज में शिक्षा को सदैव ही महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। सभ्यता के विकास के साथ शिक्षा के क्षेत्र में भी विकास की दिशाएं निरन्तर अग्रसर होती रही हैं। प्राचीन काल के गुरूकुलों से लेकर वर्तमान समय के विश्वविद्यालय और शिक्षा संस्थानों तक मानव के उदातीकरण के साथ-साथ शिक्षा का भी उन्नयन होता गया है। स्वतन्त्रता के पूर्व व स्वतन्त्रता के उपरान्त शिक्षा की जो व्यवस्थाएं रहीं हैं उनका अध्ययन करना शिक्षा के शोधार्थी को आवश्यक है। शिक्षा के इस विशाल विकास पटल पर अनेक विचार धाराएं और उनसे उत्पन्न सामाजिक प्रतिक्रियाएं शिक्षा के स्वरूप को प्रभावित करती रही हैं। मुगलकाल में शिक्षा पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया और पूर्व में स्थापित भारतीय विश्वविद्यालय तक्षशिला, नालन्दा, बल्लभी, विक्रमशिला आदि विभिन्न क्षेत्रों के विभिन्न अध्ययन केन्द्र थे, उनकी शिक्षा व्यवस्था, शिक्षा कार्यक्रम अनवरत शिक्षा व्यवस्था हेतु मार्ग दर्शक तथा प्रेरक रहे हैं। किन्तु मुगलकाल के बाद अंग्रेजों के शासनकाल में शिक्षा का स्वरूप तेजी से बदलने लगा था। अंग्रेजों ने अपने शासनकाल में अनेक शिक्षा नीतियाँ बनायीं, जिनका लाभ अंग्रेजी प्रशासकों को ही हुआ। यह सत्य है कि अंग्रेजी शिक्षा से अनेक भारतीय समाज भी प्रभावित हुयी और उन्होंने शिक्षा को स्वावलम्बी बनाने में तथा राष्ट्र की अस्मिता को उन्नतशील बनाने में उसका प्रयोग किया।

स्वतन्त्रता के पश्चात् राष्ट्रीय शैक्षिक विचारकों, दार्शनिकों एवं समाजवादियों ने शिक्षा के प्रजातांत्रिक पद्धति के विकास हेतु अनेक विचार धाराओं पर विचार किया, फलस्वरूप शिक्षा के सभी स्तरों में सुधार हेतु आयोगों तथा समितियों का गठन किया गया, इन आयोगों की सुस्तुतियों के अनुसार शिक्षा नीतियाँ भी बनायी गयी लेकिन उनके क्रियान्वयन में अनेक समस्याएं उत्पन्न हो गयी। अतः मेरे मन में यह विचार आया कि देश में जो भी आयोग गठित किये गये हैं तथा स्वतन्त्रोंत्तर काल में उत्तर प्रदेश में शिक्षा व्यवस्था में भी आमूल चूल परिवर्तन हुए। काशी, प्रयाग, आगरा जैसे शिक्षा केन्द्र ने विश्वविद्यालय का रूप धारण किया। माध्यमिक शिक्षा को स्वतन्त्र स्तर हो गया। बेसिक शिक्षा हेतु संविधान में व्यवस्था की गयी जो भारत की शिक्षा व्यवस्था का प्रतिरूप है अतः इसके अध्ययन करने में कतिपय कठिनाइयाँ भी अनुभव की गयी हैं। विशेषकर उत्तर प्रदेश में जहाँ परम्परा से चली आ रही

पौराणिक शिक्षा पद्धति मुगलकाल में इस्लामिक शिक्षा के कट्टर पंथी मकतबों से उत्पन्न समस्याएं और अंग्रेजी शासनकाल के प्रमुख केन्द्र स्थल होने के कारण अंग्रेजी शिक्षा का व्यापक प्रभाव मिलजुज कर ऐसा रहस्यात्मक प्रभाव छोड़ता है जिसे पृथक–पृथक अध्ययन करते हुये भी एक दूसरे में समायोजित होना स्वाभाविक है।

स्वतन्त्रता के उपरान्त शिक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन हुये, जिनमें उच्च शिक्षा हेतु राधाकृष्णन, माध्यमिक शिक्षा हेतु मुदालियर और सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था हेतु डा0 कोठारी की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय, माध्यमिक शिक्षा आयोगों का गठन हुआ है और भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में एक अद्भुत क्रांति उत्पन्न हुयी व इन्हीं आयोगों की समीक्षा समय–समय पर होती रही। कोठारी आयोग की संस्तुति पर पृथक राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 निर्मित की गयी। 1990 में जनता सरकार ने आचार्य राममूर्ति की अध्यक्षता में एक समिति गठित की, जिसने 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति की समीक्षा कर आवश्यक संशोधन प्रस्तुत किये।

मैं अपने निदेशक *डा० डी० एस० श्रीवास्तव* डीन शिक्षा संकाय बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, वर्तमान में विभागाध्यक्ष शिक्षक शिक्षा विभाग अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कालेज अतर्रा के प्रति कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने अथक परिश्रम कर प्रारम्भ से अन्त तक मुझे निदेशित करने में सदैव सहायता की है। और समय–समय पर मेरे लेखन कार्य का भी अवलोकन किया है। इस अच्छे सुयोग से ही मेरा यह लेखन कार्य सम्पन्न हो सका है।

मैं अपने माता पिता *(श्रीमती सुशीला देवी जैन अध्यापिका एवं श्री प्रेमचन्द जैन* अध्यापक मऊरानीपुर झांसी) से स्नेह और आर्शीवाद प्राप्त करती रही हूँ जिनकी सतत् प्रेरणा ने मुझे अध्ययन करने की ओर अग्रसर किया है।

मैं अपने पति श्री *अजय जैन* को क्या कहूं जो मुझे अहर्निश चैतन्य करते रहे हैं कि मैं अपना यह शोध कार्य शीघ्र पूरा करते हुये विद्वानों के परीक्षण हेतु सौंप दूं। मैं उनके सहयोग के प्रति ह्रदय से आभारी हूँ।

मैं अपने धर्म माता–पिता *(श्रीमती पुष्पा देवी एवं श्री नरेन्द्र कुमार जैन लखनऊ)* के प्रति सम्मान पूर्वक आदर व्यक्त करती हूँ जिन्होंने मुझे शोध कार्य के लिए ग्रह चिन्ताओं से सदैव मुक्त रखा है।
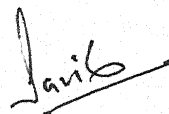
मैं अपनी अनुजा *कु0 बबीता जिज्ञासू* (शिक्षिका राजकीय इण्टर कालेज मऊरानीपुर झांसी को मैं वहीं आर्शीवाद दे सकती हूँ जो उसके लिए नितान्त उपयुक्त हो क्योंकि उसी ने मुझे अवरोधों से निकाल कर यह शोध कार्य पूरा करने को प्रेरित किया है।) मैं आभारी हूँ डा0 जवाहर लाल, जिन्होंने मुझे अंग्रेजी अभिलेखों एवं पुस्तकों का हिन्दी रूपान्तर करवाने में प्रारम्भ से अन्त तक सहयोग किया है।

मैं आभारी हूं *डा० जवाहर लाल कंचन* की जिन्होंने मुझे अंग्रेज़ी अभिलेखों एवं पुस्तकों हिन्दी रूपांतर करवाने में प्रारम्भ से अंत तक पूर्ण सहयोग दिया है।

मैं अपनी मित्र *श्रीमती नीलम सिंह एवं श्रीमती अर्चना त्रिपाठी* एवं उनके परिवार की भी ह्रदय से आभारी हूँ जिन्होंने मुझे अतर्रा में मुझे ठहरने व भोजनादि व्यवस्था के साथ संरक्षण प्रदान किया है एवं शोधकार्य को पूरा करने हेतु ढांढस बंधाया है।

इस शोध प्रबन्ध को टंकित करने वाले *श्री तबरेज़ अहमद* और *कु० रूचि रावत* लखनऊ, के सक्रिय सहयोग के बिना यह कार्य सम्भव ही नहीं था, अतएवं मैं उनका आभार व्यक्त करती हूँ।

इस शोध में मैंने आयोगों के मूल प्रतिवेदनों, राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों के मूल दस्तावेजों, भारतीय संविधान तथा प्रकाशित ग्रंथ ' प्रबुद्ध एवं माननीय समाज की ओर ' का विधिवत अध्ययन किया है। साथ ही भारतीय शिक्षा एवं उसके विविध आयोगों पर प्रकाशित विभिन्न पुस्तकों, ग्रन्थों, पत्रिकाओं, शोधपत्रों तथा शोध पत्रिकाओं (Research Journals) में दिए गये विचारों का भी अध्ययन कर अपने मौलिक विचार प्रस्तुत किये हैं।

(सविता रानी जैन)

अनुक्रमणिका

द्वितीय अध्याय

"समस्या से सम्बद्ध साहित्य"

तृतीय अध्याय

"भारतीय शासन की शिक्षा नीतियाँ"

चतुर्थ अध्याय

"स्वातन्त्रोतर काल में उपरान्त गठित शिक्षा आयोगों की आवश्यकता एवं नीतिगत विवेचन"

पंचम अध्याय

"राष्ट्रीय शिक्षा नीति तथा आयोगों में प्रतिपादित शिक्षा नीतियों की तुलना एवं विभिन्न शिक्षा अधिनियम"

षष्ठ अध्याय

"निष्कर्ष एवं सुझाव"

प्रथम अध्याय

समस्या और शोध विधि

1. *समस्या की पृष्ठ भूमि*

शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। देश में अंग्रेजी शासन से चली आ रही शिक्षा प्रणाली में वर्तमान परिवेश को देखत हुये परिवर्तन की आवश्यकता महसूस हुयी और समय–समय पर शिक्षा समितियाँ गठित कर शिक्षा के क्षेत्र में सुझाव मांगे गये। शैक्षिक समस्याओं का समाधान खोजने के लिए अनेक समितियों तथा आयोगों का गठन किया गया। परन्तु 1950 में लागू किये गये भारतीय संविधान में कुछ सीमित क्षेत्रों को छोड़कर शिक्षा को राज्य का उत्तर दायित्व स्वीकार किया गया था। इसीलिए स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के प्रारम्भिक वर्षों से शिक्षा की राष्ट्रव्यापी नीति तैयार करने का कोई विशेष प्रयास नहीं किया गया। तृतीय पंचवर्षीय योजना में अन्तिम दौर पर शिक्षा व्यवस्था एवं इसके पुर्नरीक्षण की आवश्यकता महसूस की गयी तब 1964 में भारत सरकार द्वारा डाव दौलत सिंह कोठारी की अध्यक्षता में एक शिक्षा आयोग का गठन किया गया। 1966 में इस आयोग ने अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया आयोग की सिफारशों पर पर्याप्त चर्चा हुयी तथा विद्वानों, शिक्षाविदों तथा राजनैतिक नेताओं में एक मतैक्त सा हो गया। तब 1968 में भारत सरकार ने शिक्षा के पुर्ननिर्माण की आवश्यकता को महसूस करते हुये एक राष्ट्रीय शिक्षा नीति के स्वरूप को प्रस्तुत किया। जिसमें में स्वीकार किया गया कि देश के आर्थिक व सांस्कृतिक विकास, राष्ट्रीय एकता तथा समाजवादी समाज के निर्माण में लक्ष्य की प्राप्ति के लिए शिक्षा का पुर्ननिर्माण आवश्यक है तथा शिक्षा प्रणाली ऐसी होनी चाहिए, जिससे राष्ट्रीय सेवा तथा विकास के लिए दृढ़ संकल्प, चरित्रवान तथा योग्य–युवक युवतियों का निर्माण हो। अतः भारत सरकार ने 1968 में शिक्षा की राष्ट्रीय नीति का निर्धारण करने की विधिवत् घोषणा की। इस नीति द्वारा शिक्षा के उन्नयन एवं विकास हेतु 17 आधारभूत सिद्धान्तों को स्थापित किया गया था।

इस प्रकार स्वतन्त्रता प्राप्ति से लेकर सन् 1977 तक भारत की शासन व्यवस्था अखिल भारतीय कांग्रेस के अधिकार में रही परन्तु 1977 में भारतीय जनता पार्टी को लोक सभा में बहुमत मिला और पहली बार देश में गैर कांग्रेसी सरकार ने देश की सत्ता संभाली, और सत्ता में आयी जनता सरकार ने यह अनुभव किया कि राष्ट्र की तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था में अनेक कमियाँ हैं। जिसमें सुधार करने की अत्यन्त आवश्यकता है। इस प्रकार सरकार

ने विचार–विमर्श उपरान्त सन् 1979 में भारत सरकार ने नवीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति का मसौदा तैयार किया। इस नीति के अन्तर्गत 23 शीर्षक रखे गये। लेकिन जनता शासन का कार्यकाल बहुत ही कम रहा है अतः 198व में जनता पार्टी सरकार का अन्त होते ही इस नीति का भी अन्त हो गया।

5 जनवरी 1985 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी ने राष्ट्र के नाम अपने संदेश में देश को 21वीं सदी में प्रवेश के लिए वैज्ञानिक तौर पर तथा आर्थिक रूप से देश मजबूत करने के लिए एक नई शिक्षा नीति तैयार करने की घोषणा की थी। इस नयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति के निर्माण के पूर्व भारत सरकार ने अगस्त 1985 का "शिक्षा की चुनौती" नीति सम्बन्धी परिप्रक्ष्य" नामक 68 पृष्ठीय दस्तावेज तैयार किया। जिसमें तत्कालीन शिक्षा की कमियों की ओर संकेत करते हुये भावी नीति के सम्बन्ध में विचार प्रस्तुत किये गये।

तत्कालीन शिक्षा मंत्री श्री कृष्ण चन्द्र पंत ने अपने प्रस्तुति में यह स्पष्ट किया कि "शिक्षा का सम्बन्ध भविष्य से होता है और इसका स्वरूप सर्वागीण होना चाहिए इसलिए इस परिप्रेक्ष्य को लेकर देशव्यापी चर्चा हुयी तथा नयी शिक्षा नीति पर परिचर्चा में सभी वर्गों के लोग शामिल हुये। शिक्षा एक राष्ट्रीय उत्तर दायित्व है, को मानते हुये जो दस्तावेज प्रस्तुत किया गया वह चार अध्यायों में विभक्त है।

शिक्षा नीति के प्रारूप की लोकसभा ने तीन दिन की बहस के पश्चात् 8 मई 1986 की स्वीकृति प्रदान कर दी। तत्पश्चात् 2 दिन की बहस के उपरान्त राज्य सभा ने 13 मई 1986 को शिक्षा नीति के प्रारूप की मंजूरी दे दी। इस प्रकार नयी शिक्षा नीति का निर्धारण हुआ और अयात 1986 में "क्रिया विधि की योजना "Programme of Action" नाम से एक अलग दस्तावेज प्रकाशित हुआ। जिसमें कार्य की प्राथमिकताओं की दृष्टि से विचार किया गया।

7 मई 1998 को भारत सरकार ने 1986 को राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर नये सिरे से विचार करने के लिए एक समीक्षा समिति की घोषणा की। आचार्य राममूर्ति समिति ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में 12 परिवर्तन बिन्दु सुझाये।

इस प्रकार प्रस्तावित एवं स्वीकृत राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 का क्रियान्वयन सम्पूर्ण देश में प्रारम्भ हुआ। देश तथा प्रदेशों/संभागों ने अपने–अपने ढंग से क्रियान्वयन प्रारम्भ किया। कुछ समय तक तो राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 एक बनकर शिक्षाविदों, शासकों तथा विद्वानों

के मस्तिष्क में रही। 1989 में केन्द्र में राष्ट्रीय मोर्चा सरकार ने सत्ता संभाली तथा श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह के नेतृत्व में सरकार का गठन हुआ। अतः राजीव गांधी सरकार द्वारा घोषित की गयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति के परिवर्तन की मांग उठाने लगी। आचार्य राममूर्ति के नेतृत्व ने 17 सदस्यीय समीक्षा समिति का गठन किया गया। 26 दिसम्बर 199व को इस समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। परन्तु केन्द्र में पुनः सत्ता परिवर्तन के कारण इस समिति के सुझावों को क्रियान्वित किया जाना सम्भव नहीं हो सका था।

1986 में राजीव गांधी सरकार द्वारा घोषित नवीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति शैक्षिक विकास के क्षेत्र में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कदम था। इसी क्रम में सन् 1992 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की समीक्षा की गयी तथा संशोधित नीति प्रारूप 7 मई 1992 को संसद के दोनों सदनों में रखे गये तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति में कतिपय संशोधन कर कार्यान्वयन हेतु संशोधित कार्यान्वयन कार्यक्रम तैयार किया गया जिसे कार्यान्वयन कार्यक्रम 1992 (PDA. 1992) कहा गया।

प्रस्तुत शोध में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 का शिक्षा आयोगों द्वारा प्रतिपादित नीतियों का तुलनात्मक दृष्टि से किस प्रकार क्रियान्वयन किया गया ? उसकी उपलब्धि क्या रही? तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति में क्रियान्वयन में सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में क्या समस्यायें आयी ? आदि अनेकों प्रश्न आज शिक्षाविदों, प्रशासकों, समाज सेवियों तथा विद्वानों के समक्ष खड़े किये जा रहे हैं। जिसका सार्थक उत्तर किसी भी अनुसंधान के परिणामों के बिना जान पाना उचित नहीं है। अतः इस पर गहनतम अध्ययन हेतु मैंने उक्त समस्या का चयन किया है।

2. समस्या की आवश्यकता एवं महत्व

भारत में शिक्षा के नीति निर्धारण, संवर्धन और संशोधन से संदर्भित समय–समय पर राष्ट्रीय विकास के निमित्त शिक्षा को महत्व दिया जाता रहा है। इस राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में उत्तर प्रदेश ऐसा राज्य है। जहाँ शिक्षा की नीतियों का अनुगमन अपेक्षाकृत शीघ्र किया जाता रहा है और उत्तर प्रदेश अन्य राज्यों की अपेक्षा अधिक जागरूक और शिक्षा प्रसार में अंग्रेजी राज्य है। वर्तमान युग में शिक्षा का आधुनिकीकरण मात्र सैद्धान्तिक, चिन्तन प्रधान अथवा दार्शनिक ज्ञान का क्षेत्र नहीं रह गया है। अपितु औद्योगिकी और आर्थिक विकास के

साथ–साथ वैज्ञानिक और तकनीक शिक्षा नितान्त अनिवार्य समझी जाने लगी है। इन्हीं के आधार पर शैक्षणिक मूल्यों का नियोजन क्रियान्वयन और उन्नयन सम्भव है ताकि हमारा देश आर्थिक दुष्चिन्ताओं से मुक्त एक विकास समाज की रचना करने में सक्षम और समर्थ हो सके। शिक्षा के समग्र विकास के लिए 1948 से विभिन्न आयोगों का गठन और समीक्षा समितियों की स्थापना की गयी जिससे कि भारतीय शिक्षा पद्धति और राष्ट्रीयता के अनुकूल उपलब्धियाँ प्राप्त हो सकें और सम्पूर्ण भारत विशेषकर उत्तर प्रदेश में अंग्रेजी प्रशासकों द्वारा प्रतिपादित शिक्षा पद्धतियों और नीतियों को निरन्तर न बनाये रखा जाय। लार्ड मैकाले की शिक्षा पद्धतियों और नीतियों को निरन्तर न बनाये रखा जाय। लार्ड मैकाले की शिक्षा पद्धति प्राथमिक, माध्यमिक अथवा विश्व विद्यालयी स्तर पर राष्ट्र के लिए उपयोगी नहीं थी क्योंकि उसमें राष्ट्रोदय की कोई भावना और न ही कोई विकास की दिशाएं प्रतीत होती थीं। यह आवश्यक था कि स्वतन्त्र भारत में अपने ही देश की सीमाओं में उपलब्धी, विचार, चिन्तन, वैज्ञानिक उपकरण, तकनीकी विधियाँ विकसित की जाये। और उन्हीं संशाधनों से देश को समृद्धि तथा उन्नतिशील बनाया जाय। इसी के अनुकूल पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने भी 21वीं सदी के भारत की नयी परिकल्पना को साकार स्वरूप देने का प्रयास किया था। 1986 तक समस्त शिक्षा नीतियों का अध्ययन और अवलोकन करने के उपरान्त शिक्षा की चुनौती शीर्षक से एक नीतिगत अभिलेख प्रस्तुत किया गया जिसमें सम्पूर्ण देश की मनीषा को आमंत्रित कर नये सुझाव और विकास की दिशाएं आमंत्रित की गयीं और हमारे बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय में भी एक कार्यशाला द्वारा विचारों का संयोजन प्रस्तावित कर शासन को प्रेरित किया गया। इसलिए भी इन समस्त आयोगों और समितियों की संस्तुतियों को शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में उत्तर प्रदेश में महत्वपूर्ण समझा गया क्योंकि उत्तर प्रदेश में ही इनका संयोजन किया गया था। इस विषय पर शोध करना सर्वथा समीचीन है और इसकी महती आवश्यकता भी है।

नीतिगत विवेचन : भारतीय शिक्षा पद्धति में प्राचीन भारतीय शिक्षा के स्वरूप से लेकर अंग्रेजी शासन काल के अभ्युदय तक शिक्षा का जो स्वरूप रहा उसमें प्राचीन भारतीय शिक्षा बौद्ध कालीन शिक्षा, मुस्लिम शिक्षा तथा यूरोपीय मिशनरियों द्वारा किये गये शिक्षा कार्यों का अध्ययन अपेक्षित है।

प्राचीन भारतीय शिक्षा

स्वरूप : प्राचीन भारतीय शिक्षा के विषय में अंग्रेजी विद्वान टोमस ने लिखा है कि शिक्षा विदेशी प्रयास नहीं है अपितु भारत ही ऐसा देश है जहाँ ज्ञान के प्रति प्रेम प्राचीन युग से ही प्रार्दुभूत हुआ है। और उसका प्रभाव भी चिरस्थायी है।[1]

भारतीय शिक्षा

वैदिक काल से विद्या, ज्ञान, बोध और विनय पर आधारित थी। जिसका उद्देश्य व्यक्ति को सभ्य और उन्नत बनाना था। यह मात्र पुस्तकीय ज्ञान नहीं था और न ही जीविका उपार्जन करने का साधन। इसका उद्देश्य जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में मनुष्य की उन्नतशील और आदर्श मानव बनाना था। गुरूकुलों की शिक्षा प्रणाली जीवन के विविध स्वरूपों में मनुष्य की समर्थ और सक्षम बनाने के लिए ही थी। उस युग की शिक्षा नीति में धार्मिकता, चरित्र निर्माण नागरिक तथा सामाजिक कर्तव्य पालन की क्षमता के राष्ट्रीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में शिक्षा द्वारा निर्धारित करना ही एक मात्र लक्ष्य था। डाव आल्तेकर ने इस सम्बन्ध में ज्ञान और सत्यानुमति पर वैदिक शिक्षा का आधार माना है। छन्दोग्य उपनिषद में श्वेत केतु का ऐसा उदाहरण है कि एक दशक तक शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त भी उसे उच्च स्तरीय शिक्षा के लिए योग्य नही समझा गया। पांतज्जलि के महाभाषय में योग को चरित्र निर्माण की एक शैली माना है। जो चित्त वृत्तियों के निरोध से ही सम्भव है। **"योगस्य चित्तवृत्तिः निरोधः"** पद सम्पूर्ण शिक्षा पद्धति का एक सूत्र वाक्य है। इसी से छात्रों के चरित्र का निर्माण किया जाता था और यही शिक्षा का एक अनिवार्य उद्देश्य था। डा० वेदमिश्र ने छात्रों के चरित्र निर्माण करने में ही प्राचीन भारतीय शिक्षा को व्याख्यायित किया है।[2]

प्राचीन भारतीय शिक्षा को दो विभागों में अध्ययन किया जा सकता है।

1. प्रारम्भिक शिक्षा
2. उच्च स्तरीय शिक्षा

---

1. Educations is no extic in India. There has been no country where the love of learninghood so early and origin or has exercised so lasting and powerty for influence.

   - F. W. Thomas, The History & Prospactivs of British Eductaiton in India

2. The building of character of the students was deemed as one of the essential objects of Education.

   Education in Ancinat India.

प्राथमिक शिक्षा पंडितों और ब्राह्मणों द्वारा प्रदान की जाती थी इसे विद्या दान का एक संस्कार समझा जाता था। इस स्तर की शिक्षायें मंत्र आदि को कंठस्थ करने का विधान था तथा साहित्य और व्याकरण का सम्यक बोध अनिवार्य था।

उच्च स्तरीय शिक्षा में लौकिक विद्या और परा विद्या का शिक्षण किया जाता था। परा विद्या में वेद, वेदांत, पुराण, दर्शन, उपनिषद और अन्य आध्यात्मिक विषयों का अध्ययन, चिन्तन और मनन किया जाता था। इससे शारीरिक ओर मानसिक क्षमताओं का विकास एक सम्पूर्ण मानव की ओर ले जाने का आदर्श प्रयास था। वेदांत द्वारा आयुर्वेद, धर्नुवेद आदि की शिक्षाएं सम्पन्न की जाती थी और वेद उपनिषद मनुष्य के आन्तरिक चरित्र का निर्माण करते थे। जिनसे आध्यात्मिक चिन्तन का विकास होता था। शिक्षा एक संस्कार समझी जाती थी जो वंश परम्परा से जुड़कर भावीजीवन का भी आदर्श निर्माण करने में समर्थ थी। सामाजिक और लोक व्यवहार सैनिक शिक्षा, न्याय और दण्ड की प्रक्रियाएं, कलाकृतियों का सौन्दर्य आदि की रचना और विकास वैदिक शिक्षा के मूल आदर्श थे। और उनकी उपलब्धि ही आपत समझी जाती थी। शिक्षा वर्ण व्यवस्था के अनुसार चलायी जाती थी जिसका स्वरूप कर्मप्रधान था। महर्षि पांतज्जलि योग के कर्म से भी सम्बन्धित किया है। **''योगः कर्मषु कौशलम्''** आज की भांति वर्ण व्यवस्था जन्म उत्पन्न नहीं थी। कर्मोत्पन्न थी। जो शिक्षा के जिस स्तर पर पहुंच जाता था उसे उसी वर्ण में सर्मपण कर दिया जाता था।

प्राचीन भारतीय शिक्षा निष्कर्षत चरित्र निर्माण और कर्मगत नीतियों पर आधारित ऐसी शिक्षा व्यवस्था थी जो मानव में सम्पूर्णतः के लक्ष्य को विकसित कर देवत्व की ओर ले जाती थी।

वैदिक काल की ·शिक्षा में शिक्षार्थी

प्राचीन भारतीय शिक्षा जगत में विद्यार्थी अन्ते वासी कहलाते थे। अन्ते वासी से तात्पर्य है कि विद्यार्थी गुरू और आचार्यों के परिवार में ही रहकर विद्याध्ययन करते थे। वे भि सारन करते, पूजा सामग्री एकत्र करते और गुरू के गृह कार्यों का भी किया करते थे। अथर्ववेद में ऐसे अन्तवासियों को ब्रह्मचर्य कहा गया है। अर्थर्ववेद की संहीतो में विद्यारम्भ को उपनयन संस्कार कहा गया है।[1] और विद्यार्थी द्वारा अध्ययन की प्रक्रिया की स्वाध्याय। जो विद्यार्थी ब्राह्मण नहीं होते थे, क्षत्रिय अथवा वैश्य जातियों उपजातियाँ में होने पर भी वे जो स्वाध्याय

---

1. अर्थर्वेद – **XI - 5**

करते थे उस स्वाध्याय को विद्या कहा गया है। विदेह राजा जनक क्षत्रिय होते हुए भी ऐसे ही वेद ज्ञानी थे। यद्यपि सामान्यतः क्षत्रियों को युद्ध कला और धर्नुविद्या की ही शिक्षा दी जाती थी। विद्यारम्भ की उपनयन को वेद की संहिता में संस्कार कहा गया है।[1]

गुरू भी विद्यार्थियों को उनके अनुरोध पर अन्तेवासी स्वीकार करते थे। ऋषि अंगी रस स्वयं युवा थे, किन्तु तत्व ज्ञानी होने के कारण उन्होंने अपने से अधिक अवस्था वालों को भी शिक्षा प्रदान की है।[2] आश्रेय और त्रैत्रेयी ब्राह्मणों ने समस्त शिक्षा प्रणाली का निर्वाण दिया है। मैत्रेयी अरयण्यक में गृह सूत्र की भाँति विद्यार्थियों के कर्त्तव्य बताये गये हैं। स्त्री शिक्षा का उल्लेख औपचारिक रूप से शिक्षा ग्रहण करने के सम्बन्ध में प्राप्त नहीं होता पर नारियां उस युग में भी विदुषी होती थीं। मैत्रेयी संहिता में नारियों के नृत्य और गायन में प्रवीण होने का उल्लेख मिलता है।[3]

जहाँ तक अध्ययन और अध्यापन का प्रश्न है। विद्यार्थियों को भाषा, व्याकरण, छन्द और गणित की शिक्षा दी जाती थी किन्तु इन सभी विषयों में भाषा की शिक्षा प्रमुख थी। अध्ययन से ये ज्ञात होता है कि उत्तर भारत के निवासी भाषा और व्याकरण में पारंगत होते थे। वैदिक युग में शिक्षा राज्य का कोई विषय नहीं थी, अपितु गुरू–शिष्य सम्बन्धों से आचार्यात्व की महिमा प्रतिष्ठित होती थी और विद्यार्थी को गुरू की प्रतिष्ठा के अनुसार ही जाना जाता था। शिष्य गुरू को कोई शुल्क न देकर गुरू की इच्छानुसार गुरू दक्षिणा देते थे।

सामवेद सूत्र में ब्राह्मण परिवारों का उल्लेख है। जिनमें बाजस्नेयी, कनव और माध्यान्निदिन लोक प्रतिष्ठित थे। इसी प्रकार के अनेकानेक विद्यालय ऋषि कुलों में स्थापित थे। और साहित्य तथा दर्शन का अध्ययन कर अनेक विद्यार्थी राजदरबारों में उचित मंत्रणा देने के लिए आमंत्रित किये जाते थे। गृहसूत्र में गुरू शिष्य की परम्परा का व्यापक विश्लेषण किया गया है। जिसका 'उल्लेख 'वीवएनव आप्टे' ने अपने ग्रन्थ गृहसूत्र में किया है।

विद्यारम्भ और उपनयन संस्कार के उपरान्त कौटिक्य के अनुसार लिपि और संख्या अर्थात् लेखन और गणित की शिक्षा दी जाती थी, मनु ने इसे आध्यात्मिक जन्म ब्रह्म जन्म कहा है। जहाँ माता को सावित्री और पिता को आचार्य कहकर सम्बोधित किया गया है। प्रायः विद्यार्थी निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करते थे किन्तु यदि कोई अध्यापक शिक्षा शुल्क के लिए

1. शतपथ ब्राह्मण XI 3.3, 1–7
2. ताण्डे ब्राह्मण XIII 3, 23–4
3. मैत्रेयी संहिता III 7.3,

विद्या दान करता था उसे उपपातकी (पापी) कहा जाता था और वृत्तिक संज्ञा दी गयी थी। जो विद्यार्थी किसी भी कारण शिक्षा बीच में छोड़ देते थे अथवा उन्हें आश्रमों में से निकाल दिया जाता था उन्हें खटावकह कहा जाता था। कभी–कभी विद्यार्थी शिक्षकों को यदि बदलाते थे उन्हें 'तीर्थकाक' अर्थात् कौठ के समान अस्थिर मनवाना विद्यार्थी कहा जाता था। ऐसे विद्यार्थियों का कुमारी दक्ष भिक्षा– मानव अथवा उदानपन्ह कहा जाता था कुछ विद्यार्थी धृत रूधिया (घी खाने वाले) अथवा कम्बला चारण्य कहा जाता है। मनु ने दो प्रकार के अध्यापकों की व्याख्या की है।

1. उपाध्याय जो वेद और वेदांग पढ़ाकर अपनी जीविका उपार्जित करते थे।
2. आचार्य – जो कल्प सूत्र और उपनिषद की शिक्षा निशुल्क प्रदान करते थे। इसके प्रति फलस्वरूप विद्यार्थी स्वर्ण, रजत, गाय, घोड़े, वस्त्र आदि दणिजा स्वरूप श्रद्धा सहित गुरू को भेंट करते थे।[1]

कौटिल्य ने शिक्षा की आठ श्रेणियाँ निर्धारित की थी।

1. सुश्रसा (कथन द्वारा शिक्षक से ज्ञान प्राप्त करना।)
2. श्रवणम् (सुनकर)
3. ग्रहणम् (ग्रहण कर)
4. धारणम् (धारणकर)
5. ऊहापोह (वाद–विवाद)
6. विज्ञान (विशेष ज्ञान)
7. तत्वाभिनिवेश

अथवा अध्यापक द्वारा तत्व ज्ञान को सम्पूर्णता में ग्रहण करना। ये आठ चरण विद्यार्थी को पारंगत करने के लिए पर्याप्त थे।

लेखन कला:

प्राचीनतम् लेख ब्राह्मी लिपि में प्राप्त होते हैं। अशोक ने अपने शिलालेख इसी लिपि में खुदवाये हैं, स्वरोष्टी लिपि पश्चिम में जाकर भारत में विलुप्त हो गयी। इस लिपि को

---

1. पताञ्जलि द्वारा उल्लिखित – पृष्ठ 141 से 156 तक।

दाहिनी और बांयी ओर से लिखा जाता था। यद्यपि लिपि का विकास हो चुका था तथापि गुरू–शिष्य परम्परा में कंठस्थ करने का प्रचलन बना रहा। 'रायसडेवीज' नामक भाषा विज्ञानी ने अपने ग्रन्थ बुद्ध कालीन भारत में उल्लेख किया है कि "यद्यपि विकास के साथ लेखन में उन्नति हुयी थी, किन्तु उस युग तक समस्त साहित्य दर्शन और उपनिषद आदि का ज्ञान विद्यार्थियों को कंठस्थ रहता था अतः लिपि का कोई विशेष महत्व उनके लिए नहीं रह गया था।[1]

अध्ययन के विषय

मनु स्मृति के अनुसार सम्पूर्ण वैदिक साहित्य के अतिरिक्त धर्मशास्त्र, इतिहास और पुराण, वैखानश सूत्र आदि प्रमुख विषय अध्ययन किये जाते थे। अर्थशास्त्र, अन्विंक्षिकी (बोलियाँ) दण्डनीति अर्थात् राजनीति की शिक्षा भी दी जाती थी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वैदिक अध्ययन और अर्थशास्त्र का पढ़ना आवश्यक बताया गया है।[2]

राजकुमारों को कौटिल्य द्वारा निर्धारित विषयों के अतिरिक्त सैन्य विज्ञान जिसमें हाथी, घोड़े और रथ का संचालन, प्रहाण्य, इतिहास पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, उदाहरण धर्मसूत्र और अर्थशास्त्र का अध्ययन करना राजकुमारों के लिए अनिवार्य था।[3]

महाभारत में सेवएिट चतुरों वर्णन से तात्पर्य है कि विद्यार्थी वेदों पर चर्चा सुने और वैदिक ऋचाओं का गायन करें। ब्राह्मण–गुरू केवल शैक्षिक ज्ञान ही नहीं देते थे अपितु व्यवहारिक ज्ञान भी प्रदान करते थे, जिनमें युद्ध कला के अतिरिक्त, जादू–टोने, ज्योतिष, आयुर्वेद, कृषि अनिवार्य था जहाँ वे दस्तकारी का कार्य भी सीखते थे। निश्चित समय के पूर्व अध्ययन छोड़ने पर विद्यार्थियों को दण्ड और बन्धक किये जाने की व्यवस्था थी उन्हें चतुष्यषष्ठी (चौषठ कलाएँ) सिखायी जाती थी। बिम्बसार के राज्य में जीवक जैसा राज्य वैद्य चिकित्सा पद्यति में अद्वितीय समझा जाता था। जीवक ने सात वर्ष तक तक्ष शिला विश्वविद्यालय में रह कर शिक्षा प्राप्त की थी। उसने उज्जैनी के राजा प्रद्योत, मगध के राजा बिम्बसार और अन्य राजाओं तथा सामान्य जनों का उपचार भी किया था। वह वनस्पतियों के प्रयोग से चिकित्सा करंने में विश्वास रखता था और इस प्रकार 'जीवक' आयुर्वेद का उस युग का सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक समझा जाता था।

---

1. Rhysdavids - Page 112-113, Budhist - India.
2. विद्याभवन द्वारा प्रकाशित – The Age of Emperial Unity
3. वही – पृष्ठ 586

आश्रम अथवा गुरूकुल

महाभारत में अनेक आश्रमों का उल्लेख मिलता है। सम्पूर्ण आश्रम में निम्नलिखित विभाग होते थे।

1. अग्नि स्थान – पूजा का भवन कहा जाता था।
2. ब्रह्म स्थान – आध्यात्म और वैदिक अध्ययन के लिए निर्धारित था।
3. विष्णु स्थान – में राजनीति , अर्थनीति और वार्ता।
4. महेन्द्र स्थान – में सैनिक शिक्षण।
5. वैवश्वत स्थान – में ज्योतिष ओर खगोल शास्त्र।
6. सोम स्थान – में वनस्पति।
7. गरूण स्थान – मे यातायात।
8. कार्तिकेय स्थान में – सैन्य संगठन तथा सैन्य संचालन सिखाया जाता था।

'निमिष' नाम का आश्रय उस समय सर्वश्रेष्ठ समझा जाता था जहाँ 'सैनिक ऋषि' विद्यादान करते थे। उनके दस हजार शिष्य थे और वे स्वयं उनके कुलपति। उन्होंने बारह वर्ष का त्यागमय जीवन व्यतीत कर अनेक–दार्शनिक और वैज्ञानिक चर्चाओं का आयोजन किया था। मालिनी नदी के किनारे 'कष्व ऋषि' का दूसरा आश्रम था जहाँ भौतिक विज्ञार, ज्यामिती, दृष्य गुण और रसायन की विद्या दी जाती थी। ये आश्रम नगर की सीमाओं के बाहर होते थे और वहीं पर विद्वानों के प्रवचन आयोजित किये जाते थे।अयोघ्या में स्त्रियों की शिक्षा के लिए वधू संघ स्थापित किये गये थे तथा नाटक संघों की स्थापना मनोरंजन के लिए की गयी थी। इन सबसे बड़ा आश्रम भरद्वाज ऋषि कथा जो प्रयाग में स्थित था जहाँ भरत ने अपने समस्त राजकीय सेनाओं और प्रजाजनों के साथ विश्राम किया था।

बुद्ध कालीन शिक्षा

बुद्ध काल की शिक्षा सम्बन्धी व्यवस्था का विवरण ह्वेनसांग के लेखों से प्राप्त होता है। उसके शिष्य ईजिंग ने 7वीं शताब्दी में उसका विशेष विवरण दिया है। ह्वेनसांग का कथन है कि प्रतिष्ठित अध्यापक बहुत अध्ययनशील तथा शिक्षण कार्य के लिए समर्पित होते थे।[1] ये ब्राह्मण अध्यापक जीवन भर निर्धन रहते थे जैसा कि हर्षचरित के लेखक वाणभट्ट

1. H. T. W. - 1, Page 159 to 168

का अनुभव है। जब वह 14 वर्ष की अवस्था में अपने गुरू के घर से वापिस लौटा उसने अपने गुरू के निर्धन जीवन चरित्र को चित्रित किया है। कदम्ब वंश के ब्राह्मण ने 'मयूर शर्मन' ने काँची में 'घटिका' में शिक्षा प्राप्त की थी। 'घटिका' उस युग के राजा द्वारा बसाया एक विद्यालय था।[1]

शिक्षक और शिक्षार्थी

शिक्षक और शिक्षार्थी के बुद्ध काल में भी वही सम्बन्ध थे जो ब्राह्मण काल में रहे होंगे। अन्तर इतना था कि विद्यार्थी को सद्–विहारिका कहा जाता था। सातवीं शताब्दी के अन्त में ह्वेनसाँग के शिष्य इजिंग ने बौद्धकालीन–शिक्षा केन्द्रों का विस्तृत वर्णन किया है जिसमें उल्लेख है कि शिष्य अपने गुरू की सेवाओं का समस्त भार स्वयं उठाता था। शिक्षक भी विद्यार्थी को 'त्रिपटक' ग्रन्थों का विधिवत् ज्ञान कराता था तथा शिष्य के नैतिक सदाचरण की भी परीक्षा करता था। त्रुटि होने पर विद्यार्थी को पश्चाताप की भी परीक्षा करता था। त्रुटि होने पर विद्यार्थी पश्चाताप करते थे। पाँच वर्षों तक 'विनय पिटक' का अध्ययन करते थे और दस वर्ष तक उन्हें 'विनयपिटक' पर सम्पूर्ण अधिकार हो जाता था। इसके अतिरिक्त इन विद्यालयों में सामान्य विद्यार्थी के भी दो वर्ग थे। 'मानव' (बच्चे) बुद्ध वचनों को पढ़ते और श्रेष्ठचारी धार्मिक ग्रन्थों का पारायण करते थे।

उच्च शिक्षा केन्द्र

मगध राज्य में गुप्त वंश का शासन काल था वहीं नालन्दा विश्वविद्यालय में बौद्धिक चिन्तन और उच्च शिक्षा शिष्यों को प्रदान की जाती थी। गुप्त वंश की छः पीढ़ियों में लगभग 1वव गाँवों की आय से हजारों विद्यार्थियों का शिक्षण किया जाता था। ह्वेनसाँग के अनुसार ये विद्यार्थी नालन्दा विश्व विद्यालय के स्नातकों को सम्मान से देखते थे। नालन्दा विश्वविद्यालय में विदेशों से भी विद्यार्थी विद्याध्ययन हेतु आते थे, किन्तु उच्चस्तरीय शिक्षण होने के कारण 20% विद्यार्थी ही नालन्दा विश्वविद्यालय में प्रवेश पा सकते थे। समस्त शिक्षक सम्पूर्ण समय केवल मन्त्र, चिन्तन, अध्ययन और अध्यापन में ही लगाते थे। इस विश्व विद्यालय के प्रसिद्ध आचार्य 'शंक्रादित्य' और उसके पुत्र बुद्धगुप्त' तथा उनके वंशज 'तथागत गुप्त', 'बालादित्य और 'बज्र' विख्यात आचार्यों में गिने जाते थे। एक बड़े सभा भवन में लगभग 300 कक्ष विद्यालय में ही होते थे, ऐस लब्ध प्रतिष्ठित आचार्यों में चन्द्रकोटि, शान्तिदेव,

---

1. H. T. W. - 1, Page 271

शान्तरक्षित आदि के नाम आज भी सम्मान से लिये जाते हैं। नालन्दा के समतुल्य काठिया वाड प्रदेश वर्तमान 'गुजराज' में बल्लभी का विश्वविद्यालय सातवीं शताब्दी में अत्यधिक प्रसिद्ध था। नालन्दा और बल्लभी ऐसे विद्यालय थे जहाँ के विद्यार्थी ज्ञान की सम्पूर्णता के लिए नालन्दा से बल्लभी और बल्लभी से नालन्दा जाते थे। इजिंग स्वयं नालन्दा में दस वर्ष रहा। उसका उल्लेख है, कि ब्राह्मण अर्न्वेदी देश (गंगा और यमुना के दो आण) से सोलह वर्ष की अवस्था के उपरान्त अध्ययन के लिए बल्लभी जाते थे। इन दोनों विद्यालयों के विद्यार्थियों में शास्त्रार्थ भी होते थे।[1]

अध्ययन के विषय

उपर्युक्त महाविद्यालयों में लगभग सभी विषय पढ़ाये जाते थे जिनमें पवित्र वेद इतिहास और पुराण तो होते ही थे। नृत्य, गायन–वादन तथा अन्य चौदह से अठारह प्रकार की कलाएं भी सिखाई जाती थी। जिनमें छः वेदांग, पुराण, न्याय, मीमांषा, धर्मशास्त्र, गंदर्भवेद, धर्नुवेद और अर्थशास्त्र सम्मिलित थे।[2] बृहस्पति नामक गुरू ने विधाओं की एक वृहत् सूची का भी उल्लेख किया है जिसमें नाट्य चित्रकला, भविष्य, पाकविज्ञान, राजनीति विज्ञान, खगोलशास्त्र, व्याकरण, गणित और दिव्यज्ञान के विषय प्रमुख रूप से अध्ययन किये जाते जाते थे। बुद्धकाल में ब्राह्मण काल के समान ही शिक्षा पद्यति प्रचलित थी। ह्वेनसाँग ने लिखा है कि सात वर्ष की अवस्था से पाँच प्रकार का विज्ञान विद्यार्थियों को सिखाया जाता था जिनमें ध्वनि विज्ञान और व्याकरण कला और दस्तकारी का वैज्ञानिक अध्ययन, चिकित्सा विज्ञान, तर्कशास्त्र और आध्यात्म विद्या सिखायी जाती थी। एक अन्य स्थान पर पाणिनी के सूत्रों की संख्या का आठ हजार से घटा कर दो हजार पाँच सौश्लोक तक किया गया, इसमें भी संक्षिप्त एक हजार श्लोक का प्रबन्ध जो मण्डक नाम से प्रसिद्ध है। 'उनादी' और अष्ठ धातु जेसे नामों से भी जाना जाता है। दस वर्ष की अवस्था में विद्यार्थियों की अष्ठधातु मण्डा और उनादी (अनुस्वार) आदि व्याकरण के सिद्धान्त और क्रियाओं के मूलरूप सिखायें जाते थे। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में 'कासिका वृत्ति' जो पाणिनी का व्याकरण है उसे पाँच वर्ष के समय में सामान्य विद्यार्थियों को पूरा करना होता था। व्याकरण का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए विद्यार्थियों को चौरिनी (पांतज्जलि का महाभाष्य) भंतृहरि की व्याख्या 'वाक्य पदीय' और पेयिना' जैसे व्याकरण ग्रन्थों का अध्ययन करना पड़ता था तभी उनका व्याकरण ज्ञान

1. H. T. W. - 2, Page 164 to 165
2. वायु पुराण– अध्याय 1, पृ० 61 से 70, नैषद चरित्र – अध्याय 1.4 – 14/18 विद्याए।

सम्पूर्ण समझा जाता था। 'ईजिग' का कथन है कि 'कासिका वृत्ति' के अध्ययन के उपरान्त विद्यार्थी हेतु विद्या (तर्कशास्त्र) और अभिधर्म (पराविद्या) आदि का अध्ययन करना पड़ता था। इनके अतिरिक्त सन्यासी विनय सूत्र और शास्त्रों का सम्पूर्ण अध्ययन करते थे।

उच्च स्तरीय शिक्षा के लिए मगध में नालन्दा और काठियावाड में बल्लभी विश्वविद्यालयों में बुद्ध धर्म के अठारह महाविद्यालयों का पाठ्यक्रम वेद, हेतु विद्या, शब्द विद्या, चिकित्सा विद्या, अथर्वविद्या, सांख्य दर्शन आदि का भी अध्ययन किया जाता था। मनु के अनुसार इसी युग में वैश्यों का रत्न, मोती, मूंगा, धातुएँ, वस्त्र, सुगन्ध आदि को परखने की भी शिक्षा दी जाती थी। भूमि संरक्षण उसकी उर्वराशक्ति व्यवसाय, लाभ और हानि, पशुपालन, वेतन आदि की समस्याएँ भी निराकरण करने के लिए शिक्षा दी जाती थी। ईसा की चौथी शताब्दी में दिव्यावदान नामक ग्रन्थ में बुद्ध के जीवन काल की कथाएँ उल्लिखित हैं। जिनमें यह संकेत मिलता है कि वैश्य समाज को कौन–कौन से विषय पढ़ाये जाते थे इनमें लेखन, गणित, सिक्के जमा और खर्च, ऋण आदि की समस्याओं का निराकरण किया जाता है।[1] इस युग में राजकीय 'प्रवरसेन', हर्ष, महेन्द्र वर्मन, यशीर्षक और मृच्छ कटिका का रहस्यवादी लेखक शूद्रक भी शामिल है।

बुद्ध विस्तार

बुद्ध काल के ग्रन्थों में सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था को व्याख्यायित किया गया है। 'महायज्ञ' अध्याय पांच के पद संख्या चार में उल्लिखित है कि 'उपाध्याय' को दस वर्ष और आचार्य को छः वर्ष का सन्यासत्व अनुभव होना चाहिए तभी 'कर्माचार्य' कहला सकता था। ब्राह्मण काल में जिन शिक्षा संस्थाओं को गुरूकुल कहा जाता था, उसे बुद्ध काल में बिहार कहते थे जिससे भ्रातृत्व भाव ओर प्रजातान्त्रिक स्वरूप स्पष्ट होता था। 'बुद्ध बिहार' एक संघ की भाँति कार्यकरते थे, वे कृषि, पशुपालन और अन्य संसाधनों से बिहार का कार्यचलाते थे। बिहारों में विद्यार्थियों की संख्या बहुत अधिक होती थी तथा व्यक्तिगत रूप से अध्ययन करते और साधना करते थे उन्हें किसी एक सन्यासी के संरक्षण में विभाजित करके रखा जाता था।

जितना बड़ा विद्यालय होता था उसी के अनुसार उनमें सन्यासी होते थे जो 'धम्म' की व्याख्या करते थे।

---

1. दिव्यावदान – 26, पृष्ठ 99 से 100 तक।

जातक कक्षाएं और शिक्षा

जातक ग्रन्थों ने शिक्षा का स्वरूप व्यापक रूप से सुरूचि पूर्ण शैली में उल्लिखित है जिसमें जातक संख्या 252 में बनारस के राजा ब्रह्म दत्त की कहानी कही गयी है। 'ब्रह्मदत्त' ने अपने पुत्रों को 'तक्षशिला' में अध्ययन करने के लिए 1000 गुहाएं देकर तथा चन्दन की लकड़ी देकर भेजा था जहाँ उससे यह अपेक्षा की गयी थी कि वह सम्पूर्ण शिक्षा प्राप्त कर वापिस लौटे। इस गुहा शुल्क से उस राजपुत्र की शिक्षा पूरी की गयी। समस्त जातक कथाओं में ऐसा उल्लेख मिलता है कि विद्यार्थी एक सहस्र मुद्राएं देकर बनारस और 'राजग्रह' से तक्षशिला जाकर अध्ययन करते थे। सभी जातियों के विद्यार्थी वहाँ अध्ययन करते, जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय विभिन्न राज्यों के राजकुमार प्रष्ठियों के पुत्र यहाँ तक कि मछुवारों के पुत्र भी वहाँ अध्ययन करते थे। किन्तु चण्डाल पुत्रों का प्रवेश वर्जित तथा 'तक्षशिला' में अन्य विद्याओं के साथ जादूटोना विषकन्याओं का पालन, धर्नुविद्या, विज्ञान, त्रिवेद और अठारह कलाएं सिखायी जाती थी। विद्यार्थियों को आश्रम में ही चावल, गन्ना, दूध, दही आदि का भोजन प्राप्त होता था। विद्यालय के प्रधानाचार्य की सहायता वहाँ के शिक्षक और उच्च श्रेणी के शिक्षार्थी करते थे। 'तक्षशिला' में विद्यार्थियों को उठाने के लिए 'कुक्कुर साला' थी जो विद्यार्थियों को प्रातःकाल उठा देते थे और 'तित्रिरी नाम की चिड़ियाँ थी जिनकी सहायता से विद्यार्थी मंत्र याद करते थे।

'तक्षशिला' ऐसा अध्ययन केन्द्र था जहाँ पर सुदूर यूनान से भी विद्यार्थी पढ़ने आते थे। 'तक्षशिला' में ऐसे विशेष विद्यालय थे जहाँ कानून, चिकित्सा और 'सैन्य विज्ञान' की विशेष शिक्षा दी जाती थी। ज्योतिपाल की कहानी तक्षशिला के विश्वविद्यालय में बहुत अधिक प्रसिद्ध है, जहाँ ज्योतिपाल को उसके गुरूने अपनी तलवार, धनुषवाण तथा हीरा देकर उससे यह अपेक्षा की थी कि वह उस विद्यालय के पाँच सौ विद्यार्थियों को उसके स्थान पर शिक्षा देने के कार्य को सम्पन्न करें क्योंकि वह वृद्धावस्था में सेवामुक्त होना चाहता था।

'तक्षशिला' में वहीं के बहुत से स्नातक शिक्षक होकर बस गये। अस्सी करोड़ की सम्पत्ति वाले एक ब्राह्मण के पुत्र को बनारस में ही शिक्षित किया गया। बनारस उस समय संगीत का सर्वश्रेष्ठ शिक्षा केन्द्र था।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि प्राचीन भारतीय शिक्षा ने नीतिगत रूप

से विद्यार्थियों और नागरिकों के सर्वांगीण विकास का उद्देश्य शिक्षा द्वारा पूरा होता था। बहु–विषयी तथा बहुआयामी शिक्षा पद्धति में गुरूकुल से लेकर 'तक्षशिला' 'बल्लभी' और 'नालन्दा' जैसे विश्वविद्यालयों तक उच्च शिक्षा की व्यवस्था थी। जिसे आज की शिक्षा पद्धति की तुलना में भी श्रेष्ठ कहा जा सकता है। नागार्जुनी कोण्डा में भौतिकी विज्ञान और रसायन विज्ञान जैसे विषयों की नाभकीय तथा आणुविक अध्ययनों से भूगोल से खगोल तक का वैज्ञानिक ज्ञान प्रदान करना उस शिक्षा नीति में सम्मिलित था।

बौद्ध कालीन शिक्षा में भी इसी भारतीय शिक्षा प्रणाली का अनुसरण किया गया। नामों की भिन्नता से यह सम्भव है कि आज के विद्यार्थियों को कुछ भ्रम प्रतीत हो किन्तु मूलरूप से विज्ञान, कला, चिकित्सा, तर्क और नीतिशास्त्र का विकास बौद्ध युग में ही हुआ। ज्योतिष और छद्म विज्ञान (Black Magic) का प्रचलन 'हीनयान' सम्प्रदाय से विकसित हुयी जिसकी परिवृत्ति तन्त्र विज्ञान में हुयी किन्तु शिक्षा के क्षेत्र में बौद्ध काल में जनसामान्य को भी शिक्षा सुलभ थी तथा उसके लिए शुल्क आदि की भी व्यवस्था की गयी थी। उक्त विवरण इस विचार को परिपुष्ट करता है। कि शिक्षा का आधार बौद्धिक, आध्यात्मिक और नैतिक रूप से विकास की ओर अग्रसर करता था। यद्यपि बौद्धों और ब्राह्मणों में राजनीतिक संघर्ष निरन्तर होते रहे, किन्तु शिक्षा की दृष्टि से उनकी एक रूपता भंग नहीं हुयी।

मुस्लिम शिक्षा

भारत वर्ष में मुसलमानों के आक्रमण पश्चिम दिशा से निरन्तर होते रहे हैं। जिसके फलस्वरूप राजस्थान, गुजराज, उत्तर भारत आदि निरन्तर युद्ध में संलग्न रहें। 55व वर्ष के शासन काल में मुसलमानों ने जिस शिक्षा प्रणाली का सूत्रपात किया उसे मध्यकालीन मुस्लिम शिक्षा प्रणाली कहा जा सकता है। यह ऐसी शिक्षा प्रणाली थी जिसे विदेशों से लाकर भारत में प्रत्यारोपण करने का प्रयास किया गया था। ब्राह्मणीय शिक्षा प्रणाली से इसका सम्पर्क नहीं के बराबर था क्योंकि अनुदार शासकों से जो समाज और राजनीति विकसित हुयी उसकी कटट्रता से शिक्षा भी नहीं बची और शिक्षा के उद्देश्य महत्वपूर्ण नहीं रह गये थे। यद्यपि मुहम्मद साहब ने विद्याधन को धन अथवा रक्त दान से भी अधिक श्रेष्ठ माना था।

मुस्लिम शिक्षा का उद्देश्य

मुस्लिम शिक्षा का मुख्य उद्देश्य इस्लाम धर्म का प्रचार करना था। डाव युसुफ हुसैन

ने लिखा है कि "मुस्लिम शिक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्ति धर्म की पृष्ठ भूमि में ही बोलते और विचार करते थे।"

मुस्लिम शिक्षा धार्मिक प्रचार के लिए मकतब और मदरसों में कुरान की आयतें रटवाते थे और इन विद्यालयों में साहित्य, इतिहास, दर्शन आदि की कोई शिक्षा व्यवस्था नहीं थी।

मुसलमान शासकों ने इस्लाम धर्म और संस्कृति के प्रचार–प्रसार के लिए हिन्दुओं की विविधता पूर्ण संस्कृति को नष्ट कर एक रूपता वाली कट्टर पंथी संस्कृति का प्रचार करने का प्रयास किया वस्तुतः भारत में मुस्लिम राज्य धर्मराज्य था जिसका अस्तित्व सिद्धान्त रूप में धर्म की आवश्यकताओं को उचित ठहराता था।

मकतब और मदरसे प्रायः मस्ज़िदों से सम्बद्ध थे जहाँ सामूहिक नमाज पढ़ी जाती थी जिससे धर्म की कट्टरता प्रगट होती है। मुहम्मद साहब ने धार्मिक शिक्षा के द्वारा चरित्र निर्माण की दिशा प्रदान की थी, किन्तु व्यवहारिक रूप में उसका परिपालन नहीं हुआ और चरित्र के स्थान पर सम्पत्ति का संचार उनका उद्देश्य बन गया।

इस्लामी शिक्षा का एक उद्देश्य और भी था कि समाज में हिन्दु जातियों को मुसलमान बनाकर अपनी संस्कृति और सभ्यता के रंग में उन्हें मिलाया जाय। यहाँ तक कि हिन्दुओं के ऐसे नाम रखे गये जो हिन्दु और मुस्लिम सभ्यता के सम्मिलित प्रतीत होते थे। जैसे इकबाल नारायण, माताबख्श आदि इस प्रकार मुसलमानों ने हिन्दु संस्कृति को मिटाने की निरन्तर चेष्टा की है।

मुस्लिम काल की शिक्षा व्यवस्था

मुस्लिम काल की शिक्षा व्यवस्था को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. प्रारम्भिक शिक्षा
2. उच्च शिक्षा

प्रारम्भिक शिक्षा

मुस्लिम काल में प्रारम्भिक शिक्षा के प्रमुख केन्द्र मकतब थे। जो मस्जिदों से सम्बद्ध थी। इनके अतिरिक्त करवानगाहों और दरगाहों में भी शिक्षा संस्था के रूप में प्राथमिक शिक्षा प्रदान की जाती थी। कुछ पढ़े–लिखे व्यक्ति अपने निवास स्थानों पर भी प्राथमिक शिक्षा प्रदान करते थे। जिस प्रकार हिन्दू शिक्षण पद्धति में विद्यारम्भ या उपनयन संस्कार होते थे

उसी प्रकार मुसलमानों की प्राथमिक शिक्षा में 'विशमिल्ला खानी' से प्राथमिक शिक्षा प्रारम्भ की जाती थी। ये रस्म बालक के चार वर्ष चार माह चार दिन पूरे होने पर की जाती थी। उस समय 'मौलवी' कुरान की आयते पढ़कर बच्चों से सभी सम्बन्धियों के समक्ष कहलाते थे यदि बालक उन आयतों का उच्चारण नहीं कर पाता था तो मात्र विशमिल्ला कहलवाकर इस रस्म को पूरा किया जाता था। इसी लिए इस रस्म का नाम 'विशमिल्ला खानी' है।

पाठ्यक्रम के सन्दर्भ में बच्चों को साधारणतः पढ़ना–लिखना और सामान्य अंकगणित का ज्ञान कराया जाता था। कुरान की आयतें बिना अर्थ जाने हुये भी कंठस्थ करायी जाती थी। किन्तु व्यवहारिक रूप से उन्हें पत्र लेखन, अजीनवीशी आदि ऐसे विषय भी सिखाये जाते थे जो उनके जीवन में उपयोगी हो सकें।

बच्चों का नैतिक और चारित्रिक विकास करने के लिए शेख सादी की पुस्तकें "गुलस्ता और वीरता" पढ़ायी जाती थी अन्य क्षेत्रों में 'लैला मजनू", युसुफ–जुलेखा, सिकन्दर नामा, उमर खैयाम की रूवाईयाँ आदि भी काव्य की दृष्टि से पढ़ायी जाती थी।

विद्यार्थी तख्तियों का प्रयोग करते थे और उन पर मुल्तसी मिट्टी पोतकर काली रोशनाई से कलम से लिखते थे। इनकी लिपि दाहिनी से बाँयी ओर लिखी जाती थी। संक्षेप में यह कह सकते हैं कि हिन्दु शिक्षण पद्धति से मुसलमान शिक्षण पद्धति ठीक विपरीत थी केवल एक ही बिन्दु पर दोनों शिक्षण पद्धतियाँ समान थीं जिनमें मन्त्रों अथवा आयतों को कंठस्थ कराया जाता था।

उच्च शिक्षा

उच्च शिक्षण संस्थाएं मदरसे कहलाती थी, मकतब से मदरसे में प्रवेश करते समय कोई धार्मिक अनुष्ठान नहीं किया जाता था। भारत में मुसलमान शासन काल में उच्च शिक्षा हेतु आगरा, अजमेर, लाहौर, दिल्ली, सुल्तान, लखनऊ, मुर्सिदाबाद आदि शहरों में स्थित थे। अन्य देशों में बूशहर, बंसरा, बगदाद, बुखारा आदि शहरों में भी उच्च शिक्षा दी जाती थी। उच्च शिक्षा दस से बारह वर्ष की अवधि तक प्रदान की जाती थी। जिसमें धार्मिक शिक्षा के अर्न्तगत सम्पूर्ण कुरान शरीफ को कंठस्थ करना अनिवार्य था। इसके साथ ही कुरान की आयतों का अर्थ आलोचनात्मक अध्ययन, सूफी सिद्धान्त, इस्लामी इतिहास और कानून इस उच्च शिक्षा के अर्न्तगत पढ़ाया जाता था।

व्यवहारिक शिक्षा के क्षेत्र में अरबी और फारसी की भाषाओं का साहित्य, व्याकरण, जमीन की नाप, जुगराफिया और युनस्ती चिकित्सा पद्धति प्रमुख रूप से पढ़ायी जाती थी। इन सभी विषयों का एक ही मदरसे में न पढ़ाकर अलग–अलग मदरसों में भी पढ़ाया जाता था। दिल्ली के मदरसों में संगीत, लखनऊ में नृत्य, स्यालकोट में गणित और ज्योतिष, तथा रामपुर में अर्थशास्त्र के अध्ययन की विशेष व्यवस्था थी। शिक्षण विधि के क्षेत्र में प्रायः वक्तव्यों द्वारा शिक्षा दी जाती थी तथापि चित्रकला, चिकित्सा और अन्य व्यवसायिक विषयों को व्यवहारिक रूप से भी पढ़ाया जाता था। शिक्षा का माध्यम फारसी भाषा थी उसे ही शासकों ने राज भाषा का पद दिया था। अध्ययन स्तर का परीक्षण आज की भाँति लिखित परीक्षा द्वारा नहीं होता था अपितु शिक्षक ही विद्यार्थी के शिक्षा स्तर को प्रमाणित करते थे। विद्यार्थियों की शिक्षा के उपरान्त मिलने वाली उपाधियाँ भी भिन्न नामों से जानी जाती थी। साहित्य में पारंगत विद्यार्थी को काबिल, धर्मशास्त्र में पारंगत छात्र को 'आलिम' और तर्कशास्त्र तथा दर्शन के विद्यार्थी को 'फाज़िल' की उपाधि से नवारा जाता था।

मुस्लिम काल में स्त्री शिक्षा

मुस्लिम काल में स्त्रियों की शिक्षा प्रायः नहीं के बराबर थी स्त्रियाँ पर्दे में रहती थीं और उन्हें मकतब अथवा मदरसों में शिक्षा ग्रहण करने की इजाजत नहीं थी। फिर भी राजपुत्रियाँ शिक्षित की जाती थी। रजिया सुल्तान अपनी विद्वता के लिए विख्यात थी। चाँद सुल्ताना को तुर्की, अरबी, फारसी, मराठी भाषाओं का उत्तम अभ्यास था। बाबर की पुत्री गुल वदन बेगम ने 'हुमायुनामा' की रचना की जो इतिहास प्रसिद्ध ग्रन्थ है। जहाँगीर की पत्नी नूरजहाँ और औरंगजेब की बेटी जेबुननिशा विदुषी महिलाएं थी। किन्तु समाज की अन्य सामान्य महिलाओं की सीने, पिरोने, काढ़ने, बुनने आदि में महारथ हासिल थी। लखनऊ की चिकन कश्मीर की कसीदाकारी और खाद्य सामग्री बनाने में उनका कोई सानी नहीं था।

मुस्लिम काल में व्यावसायिक शिक्षा

व्यवहारिक शिक्षा के रूप में भी मुसलमान समाज मशीन के कामों में ज्यादा कुशल कारीगर सिद्ध हुआ था। लड़कियों को नृत्य, संगीत, सिलाई, बुनाई और पाक विद्या का प्रशिक्षण दिया जाता था जबकि पुरूष समाज को काष्ठकारी, लुहारी, सुनारी, वस्त्र बनाने की कला, जूते बनाना, मखमल तैयार करने का प्रशिक्षण दिया जाता था। आज भी मुसलमान

जातियाँ परम्परागत रूप से इन्हीं व्यवसायों में दक्ष हैं। मुसलमान पुरूष प्रायः सैनिक के रूप में भी वेतन भोगी कार्य करते रहे हैं। यद्यपि मुसलमान शासकों द्वारा कोई सैन्य प्रशिक्षण शाला नहीं थी तथापि कुशल योद्धाओं द्वारा व्यक्तिगत रूप से मुसलमान सैनिकों को सैन्य प्रशिक्षण दिया जाता था। चिकित्सा के क्षेत्र में युनानी चिकित्सा पद्यति द्वारा चिकित्सा ज्ञान दिया जाता था साथ ही संस्कृत के चिकित्सा ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद कर अनेक ग्रन्थों की रचना की गयी। आगरा और रामपुर में चिकित्सा पद्यति का विकास विशेष रूप से किया गया ।

हस्तकलाओं की शिक्षा में दरी–कालीन, गलीचे, जरी और कामदार वस्तुओं का निर्माण। लकड़ी और पीतल के बर्तनों पर नक्काशी आदि में से अनेक हस्तशिल्प थे जिसमें मुसलमान कारीगर अतुलनीय और दक्ष थे। मुस्लिम शिक्षा का प्रदेय यही है कि इस युग में ललित कलाओं का पर्याप्त विकास हुआ है। जिनमें भवन निर्माण कला, चित्रकला, वास्तुकला दस्तकारी की कला में उनकी विशेष योग्यता लोक प्रसिद्ध है। इस युग में धर्म की शिक्षा का कट्टर पंथ से पालन कराना सबसे बड़ा दोष प्रतीत होता है। साथ ही महिला शिक्षा के प्रति उदासीनता ने भारतीय समाज को बहुत पीछे धकेल दिया है आज भी मुस्लिम समाज में स्त्री शिक्षा को विशेष महत्व नहीं दिया जाता तथापि शिक्षित मुसलमान अपने परिवार को शिक्षा के महत्व को समझकर लड़कियों को उच्च शिक्षा की ओर प्रेरित कर रहे हैं।

भारत में यूरोपीय मिशनरियों द्वारा शिक्षा का विकास

भारत वर्ष में यूरोपीय मिशनरियाँ सन् 1500 से आना प्रारम्भ हो गयी थी। जो व्यापार की दृष्टि से भारत में आयी और सबसे पहले उन्होंने शिक्षा और चिकित्सा के क्षेत्र में कार्य करना प्रारम्भ किया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी सन् 1600 में डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी 1602 और फ्रेंच ईस्ट इण्डिया कम्पनी 1664 में भारत में आयी और इस प्रकार 1700 वीं शताब्दी में भारत में विदेशी कम्पनियों का व्यापारिक प्रचार बढ़ता गया। इन कम्पनियों ने शिक्षा संस्थाओं के माध्यम से भारतीय जन मानस से सम्पर्क स्थापित किया तथा धार्मिक सिद्धान्तों का आदान–प्रदान भी होता रहा। नुरूल्ला और नायक ने अपनी पुस्तक 'A History of Education in India' में स्पष्ट लिखा है कि मिशनरियों को भारत में आधुनिक शिक्षा पद्धति में प्रर्वतक होने का सम्मान मिला है।[1]

1. A History of Education in India - N Walla & Nayak, Page - 16

मिशनरियों के शिक्षा कार्य

डच, डेन, फ्रांसीसी और पुर्तगाली मिशनरियों ने 'श्री रामपुर' में छापाखाना खोलकर 'इंजील' का अनुवाद कराया। उनके द्वारा स्थापित विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा अनिवार्य थी और विद्यार्थियों को निःशुल्क भोजन, वस्त्र और पुस्तकों की भी व्यवस्था की जाती थी। पुर्तगाली ईसाइयों ने गोवा, दमन, ड्यू, लंका, हुगली, कोचीन और चटगाँव में विद्यालय स्थापित किये और उच्च शिक्षा के लिए कालेजों का भी निर्माण कराया। उन्होंने मुसलमान निवासियों का आश्रय लेकर एक ओर हिन्दू धर्म को आडम्बर और मिथ्या विश्वास से परिपूर्ण बताया तो दूसरी ओर इस्लाम की भी बुराई करने से नहीं चूके।

अंग्रेजी मिशनियों ने 'श्रीरामपुर' को अपनी ईसाई धर्म शिक्षा का केन्द्र बनाया और चालर्स ग्रांट ने ग्रेट ब्रिटेन में ऐशियाई प्रजाजनों की सामाजिक स्थिति पर विचार शीर्षक से भारतीयों की भर्तसना करने का रास्ता खोजा। वे कभी भी भारतवासियों को वास्तविक शिक्षा नहीं देना चाहते थे क्योंकि उनका अनुभव था कि अमेरिका में वस्तुनिष्ठ अंग्रेजी शिक्षा से इनको अपना उपनिवेश छोड़ना पड़ा।

अंग्रेजी कम्पनियों .ने सन् 1765 से व्यापार, धर्मप्रचार और राज्य स्थापना की ओर प्रयास करना शुरू किया। 1765 में उनकी नीति थी कि भारतवासियों को केवल प्राथमिक स्तर की ही शिक्षा दी जाय, किन्तु 1781 में उन्होंने कलकत्ता 'मदरसा' स्थापित किया जिससे कि मुसलमान उनके पक्षधर बन जाय। 1791 में बनारस में कलकत्ता मदरसा के अनुरूप बनारस संस्कृत कॉलेज की स्थापना की गयी और इन दोनों ही शिक्षा संस्थानों में अंग्रेजों की कानून व्यवस्था की सहायता करने के लिए नवयुवकों को शिक्षित किया जाता था।

सन् 1800 में लार्ड विलियम ने फोर्ट विलियम कालेज की कलकत्ता में स्थापना की जिसमें असैनिक कर्मचारियों को भारतीय भाषाओं और हिन्दू–मुसलमान कानूनों तथा भारतीय इतिहास की शिक्षा प्रदान की जाती थी। इस शिक्षा संस्थान में ईश्वर चन्द्र विद्या सागर और गिल क्राइस्ट जैसे विद्वान मनीषी शिक्षा प्रदान करते थे। सन् 1818 में बम्बई प्रेसीडेन्सी बनाकर 1821 में पूना संस्कृत कालेज की स्थापना की। इसी समय 1813 का 'आज्ञा पत्र भी प्रचारित किया गया। जिससे भारतीयों की शिक्षा को ईस्ट इण्डिया कम्पनी का दायित्व बताया गया। किन्तु धारा 43वीं विवादास्पद होने के कारण 'लार्ड मैकाले' ने एक

नया घोषणा पत्र जारी किया। जिसके द्वारा अंग्रेजी शिक्षा को अन्य भाषाओं के द्वारा शिक्षा देने के लिये अधिक उपयोगी बताया गया तथा अंग्रेजी, शासकों की भाषा के रूप में प्रस्तुत की गयी। उसमें इसका भी उल्लेख किया गया कि भारतीय अपने रक्त से भले ही भारतीय हों किन्तु उनके विचार और नैतिकता, भावना और विद्वता अंग्रेजी द्वारा ही विकसित की जा सकती है। 1835 में लार्ड विलियम बैटिंक ने मैकाले की शिक्षानीति का समर्थन किया और एक नया सिद्धान्त दिया कि शिक्षा अपनी स्तर से जन सामान्य तक शनैः–शनैः पहुंचायी जाय जिससे भारतीय उच्च वर्ग सदा अंग्रेजी शासकों का समर्थक बना रहे। इस सिद्धान्त को 'निस्पन्दन सिद्धान्त' (Filtration theory) कहते हैं।

1854 में बुड्स का आज्ञापत्र (Wood Dispatch) प्रचारित हुआ जिसे जेम्स ने 'मैग्नाकार्टा ऑफ एजूकेशन' की संज्ञा दी। इस आज्ञा पत्र के सुझावों और सिफारशों के द्वारा क्रमागत प्राथमिक शिक्षा में विश्वविद्यालयी शिक्षा तक पाँच स्तर बनाये गये जो प्राथमिक विद्यालय, मिडिल स्कूल, हाई स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय स्तर में जाने जाते हैं। इसी आज्ञा पत्र में विद्यालयों को सहायता अनुदान प्रणाली से सम्बोधित किया गया और शिक्षकों के प्रशिक्षण की भी व्यवस्था की गयी। मुसलमानों की शिक्षा के लिए पृथक प्रबन्ध हुये तथा स्त्री शिक्षा और व्यवसायिक शिक्षा को विकास गामी बनाने का प्रावधान किया गया। व्यवसायों और नौकरियों से सम्बद्ध चयन् प्रक्रिया में उन्हीं व्यक्तियों की वरीयता दी जाती थी जो उच्च अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त होते थे। इस घोषणा पत्र से एक ओर भारतीय शिक्षित भी होते थे तो दूसरी ओर उन्हें अंग्रेजी शासन की नौकर शाही में रखा जाता था।

वुड के घोषणा पत्र के उपरान्त भारतीय शिक्षा पद्धति में क्रांतिकारी परिवर्तन दिखायी देते हैं। जिसमें 'हण्टर कमीशन' का अपना एक विशेष स्थान है। हण्टर आयोग में प्राथमिक, माध्यमिक, कॉलेज शिक्षा के साथ–साथ विशिष्ट शिक्षा का भी प्राविधान किया गया इस विशिष्ट शिक्षा में मुसलमानों के लिए मिडिल स्कूल और हाईस्कूल की शिक्षा भी सम्मिलित थी तथा स्त्री शिक्षा के लिए भी द्वार खोले गये। 1882 से 19व2 तक छात्रों की संख्या लगभग 36 लाख हो गयी और विद्यालयों की संख्या लगभग 1 लाख थी।

लार्ड कर्जन ने अंग्रेजी शिक्षा में कुछ गुणात्मक सुधार करने का प्रयास किया जिसके लिए 19व1 में शिमला में एक नया सम्मेलन किया गया। उसकी संस्तुतियों के अनुरूप विश्व

विद्यालयी शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने की अनिवार्यता पर बल दिया गया। 19व4 में विश्वविद्यालय अधिनियम बनाया गया यह भारतीय उच्च शिक्षा का पहला अधिनियम था। जिससे ऐसा प्रतीत होने लगा था कि भारत में शिक्षा का स्तर निरन्तर प्रगतिशील होगा। भारतीय विश्व विद्यालय आयोग और विश्व विद्यालय अधिनियम भारतीय शिक्षा के उन्नयन कारक थे। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन और 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से पुनः राष्ट्रीय शिक्षा की माँग बढ़ती गयी। जिसमें राष्ट्रीय चरित्र का विकास, मात्र भूमि के लिए प्रेम, और अंग्रेजी आदर्शों की समाप्ति पर आयर लैण्ड की विदुषी एनीबेसेन्ट ने भारतीय शिक्षा के उन्नयन के लिंए अथक प्रयास किया जिसमें भारतीय भाषाओं, भारतीय व्यवसाय और अंग्रेजी ज्ञान पर विशेष बल दिया गया।

अंग्रेज राजा जोर्ज पंचम ने अपने वक्तव्य में कहा कि वे अपने राज्य में स्कूल और कॉलेजों का जाल देखना चाहते हैं तदनुसार भारत में भी अनेक शिक्षा संस्थाएं स्थापित हो गयी। 1917 से 1919 तक कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग की स्थापना हुयी जिससे स्नातकोत्तर शिक्षा के विकास के आयाम खुलते गये इसमें सुझाव दिया गया था कि स्नातक पाठ्यक्रम तीन वर्ष का किया जाय और छात्रों की शारीरिक शिक्षा भी प्रदान की जाय। 1916 से 192व तक 7 विश्वविद्यालयों की स्थापना की गयी। मैसूर 1916, पटना 1917, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय 1917 उस्मानिया 1918, ढ़ाका 1919, लखनऊ और अलीगढ़ विश्वविद्यालय 192व में स्थापित किये गये।

इतना सब होने के बाद भी 1929 में 'हर्टाग समिति' ने द्वैध शासन पद्धति के अन्तर्गत भारत सरकार अधिनियम पारित कर शिक्षा में अपव्यय और अवरोधन को मिटाने की चेष्टा की गयी। इस समिति के सुझाव थे कि शिक्षकों के लिए अभिनवम् पाठ्यक्रम की योजना लागू की जाय। जिससे कि शिक्षक विकसित शिक्षा पद्धतियों को अद्यतन जान सके। विश्वविद्यालयों में मात्र उत्तीर्ण करने वाली शिक्षा के स्थान पर विशेष पाठ्यक्रम लागू कर आनर्स स्तर को प्रारम्भ किया जाय।

वुड–एवड रिपोर्ट 1937 में प्रचलित हुयी जिसके अनुसार व्यवसायिक शिक्षा को भी शिक्षा पद्धति में सम्मिलित किया गया 1937 की अवधि तक प्राथमिक स्तर पर लगभग 1 करोड़ विद्यार्थी थे। माध्यमिक स्तर पर यह संख्या लगभग 23 लाख और विश्वविद्यालय स्तर

पर लगभग डेढ़ लाख थी। 1919 के 'द्वैड शासन' प्रणाली के अन्तर्गत प्रदेशों को कतिपय सुविधाएं प्रदान की गयी। और कुछ नये विश्वविद्यालय स्थापित किये गये जिनमें ट्रावन कोर 1937, उत्कल 1943, सागर 1946 और राजपूताना विश्वविद्यालय 1947 में स्थापित हुयी। किन्तु इस समस्त शिक्षाविदों में जिनमें रायबर्न का नाम विशेष उल्लेखनीय है ने बुनियादी शिक्षा को विशेष महत्व दिया है। महात्मा गांधी के अभ्युदय से स्वतन्त्रता आन्दोलन में बुनियादी शिक्षा भी एक ऐसा विषय था जिससे स्वतन्त्रता प्रेमी अंग्रेजी शिक्षा पद्धति का विरोध करते हैं। 1944 में शिक्षा विकास की एक नयी योजना प्रस्तावित की गयी जिसका प्रवर्तन गवर्नर जनरल के सलाहकार सार्जण्ट ने किया था। द्वितीय महायुद्ध स्तर पर बेसिक शिक्षा की अनिवार्यता बतायी गयी जिसमें 6 से 14 वर्ष की अवस्था के बालकों को निःशुल्क शिक्षा दिये जाने की संस्तुति थी। हाई स्कूल शिक्षा का तृतीय स्तर था जिसमें 11 से 17 वर्ष के वय वर्ग में सामान्य शिक्षा के साथ—साथ व्यवसायिक शिक्षा काष्ठ कला, धातु कला, वाणिज्य और तकनीकी शिक्षा का प्राविधान था।

चौथे स्तर पर विश्वविद्यालयी शिक्षा में तीन वर्ष की स्नातक शिक्षा का सुझाव दिया गया था। साथ ही यह भी प्रस्तावित किया गया था कि शिक्षकों का भी प्रशिक्षण अनिवार्य रूप से किया जाय ताकि वे विद्यार्थियों को उचित ढंग से शिक्षा प्रदान कर सकें। इसी के साथ गांधी जी की बेसिक शिक्षा को बुनियादी पाठ्यक्रम की तरह समायोजित करना ही आवश्यक समझा गया। गांधी जी ने 'बर्धा योजना' के नाम से बेसिक शिक्षा का सूत्रपात किया जिसमें विद्यार्थियों को प्रारम्भिक स्तर तक उनकी रूचि के अनुरूप चित्रकला, मृदकला, बागवानी सामान्य गणित और अन्य आवश्यक विषयों को अनिवार्य रूप से सम्मिलित किया जाना था। इसके विशेष प्रशिक्षण के लिए गांधी जी ने डाव 'इबादुर रहमान खां' को इस आशय से इग्लैण्ड भेजा कि वे ब्रिटेन में बुनियादी पाठ्यक्रम का अध्ययन करें और भारतीय स्थितियों में ऐसे पाठ्यक्रम की संरचना करें जिससे विद्यार्थियों का प्रारम्भिक स्तर पर ही अपने शैक्षिक विकास का उन्नयन कर सके।

उत्तर प्रदेश में इस योजना को प्रदेश के समस्त प्राथमिक विद्यालयों में लागू कर दिया गया था किन्तु यह योजना बहुत अधिक समय तक न चल सकी और कालान्तर में निःशेष हो गयी।

भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त शिक्षा की अवधारणा

द्वितीय विश्व महायुद्ध की परिसमाप्ति के उपरान्त अंग्रेजी शासन भारत में क्षीण होने लगा था। और अंग्रेजी शासकों को भी यह विश्वास हो चला था कि वे बहुत दिनों तक भारत पर शासन नहीं कर सकते। दूसरी ओर राष्ट्रवादी सत्ताएं भारत को किसी भी मूल्य पर स्वतंत्र किये जाने के लिए कटिबद्ध थी। किन्तु शिक्षा के क्षेत्र में अंग्रेजी शासन उदार था। क्योंकि वे शिक्षा और धर्म प्रचार के लिए सह–आशयी थे। इसलिए 1944 में सार्जण्ट कमीशन की एक योजना प्रस्तावित की गयी जो सार्जण्ट रिपोर्ट के नाम से जानी जाती है। सम्भवतः इसमें जो स्मृति पत्र प्रस्तुत किया गया उसमें युद्धोत्तर शिक्षा विकास की योजन प्रमुख थी। इस योजना के कतिपय सुझावों में पूर्व प्राथमिक शिक्षा और बेसिक शिक्षा का विशेष महत्व दिया गया था।

पूर्व प्राथमिक शिक्षा से तात्पर्य ऐसे विद्यालयों से था जिन्हें हम आज शिशु–मन्दिर अथवा नर्सरी विद्यालयों के नाम से जानते हैं। उसमें ऐसे विद्यालयों में उपस्थिति का कोई बन्धन नहीं था।

बेसिक शिक्षा को भी दो भागों में विभाजित किया गया था

1. जूनियर बेसिक शिंक्षा
2. सीनियर बेसिक शिक्षा

जो एक से चार और पांच से सात कक्षाओं तक चलती थी। अंग्रेजी भाषा शिक्षण के लिए सीनियर बेसिक विद्यालयों में प्राविधान किा गया था। हाई स्कूल की शिक्षा के लिए केवल 2व : छात्रों को प्रवेश देने का विधान था। ग्यारह वर्ष की अवस्था से कम बालकों को प्रवेश दिया जाना निसिद्ध था। इन विद्यालयों में 50% विद्यार्थी शुल्क भी देते थे।

हाई स्कूल शिक्षा में साहित्यिक और तकनीकी वर्ग भी बनाये गये और इस प्रकार शिक्षा को साहित्य विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में विभाजित किया गया।

विश्वविद्यालय की शिक्षा पूर्ण कालिक विद्यालयों और अल्पकालिक विद्यालयों में योजित की गयी किन्तु इंसका विशेष लाभ सामने नहीं आया।

उपर्युक्त शिक्षा व्यवस्था में जो न्यूनताएं थी उन्हें ध्यान में रखकर स्वतंत्र भारत में

समय—समय पर ऐसे आयोगों की स्थापना हुयी जो देश की राष्ट्रीयता की मुख्य धारा में शिक्षा प्रदान कर देश का विकास करें। इन आयोगों में प्रमुख रूप से डा० राधाकृष्णन के नेतृत्व में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग, मुदालियर की अध्यक्षता में माध्यमिक शिक्षा आयोग, और डा० डी.एस. कोठारी की अध्यक्षता में सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था हेतु शिक्षा आयोग की अवधारण की गयी। देश के भिन्न—भिन्न राज्यों में विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों और अन्य विद्यालयों की अपेक्षाओं के अनुसार शिक्षा प्रदान की गयी, किन्तु किसी भी आयोग की संस्तुतियाँ पूर्ण रूप से अपनायी नहीं जा सकी।

जिन अनेक प्रकार की शिक्षा व्यवस्थाओं की कल्पना की गयी उनमें आयोगों तथा समितियों की योजनाएं औपचारिक अनौपचारिक शिक्षा की व्यवस्थाएं सतत् शिक्षा, प्रौढ शिक्षा, दूरस्थ शिक्षा जैसे चिन्तन तो किये गये किन्तु उनका कार्यान्वयन सम्भव नहीं हो सका। इन आयागों के प्रस्तावों में बार—बार यह उल्लेख किया गया कि प्रत्येक पांच वर्ष बाद शिक्षा नीतियों का पुर्नविवेचन किया जाय किन्तु ऐसा कोई मूल्यांकन कभी नहीं किया गया।

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग में शिक्षा और शिक्षकों के स्तर को विकसित करने के अनेक सुझाव दिये गये परास्नातक वर्ग में अनुसन्धान कार्य के लिए भी प्राविधान किया गया और राष्ट्र भाषा हिन्दी को एक अनिवार्य माध्यम बनाये जाने की चर्चा की गयी। हिन्दी को देवनागरी लिपि में ही लिखे जाने पर अधिक बल दिया गया इस प्रकार शिक्षा की माध्यम भाषाएं—

1. प्रादेशिक भाषाएं
2. हिन्दी
3. वैकल्पिक अंग्रेजी भाषा

शिक्षण के लिए स्वीकार की गयी। राजनीतिक दृष्टि से तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने 15 वर्ष तक राजकीय कार्यों के संचालन में अंग्रेजी के प्रयोग का विकल्प खुला छोड़ दिया। जिसके फलस्वरूप स्वतन्त्र भारत के 50 वर्षों की समाप्ति पर भी हिन्दी राजभाषा होते हुये भी कार्य भाषा नहीं बन सकी।

माध्यमिक शिक्षा आयोग के गठित होते ही यह अपेक्षा थी कि शिक्षा व्यवस्था में देश की अपेक्षाओं के अनुरूप पाठ्यक्रमों का निर्धारण होगा। परन्तु शिक्षा की व्यवस्था लगभग

वैसी ही बनी रही जिसे लार्ड मैकाले ने प्रायोजित किया था।

माध्यमिक शिक्षा व्यवस्था में साहित्यक और मानव विज्ञान, विज्ञान, वाणिज्य, कृषि, गृहविज्ञान और ललित कलाओं के क्षेत्र के विकसित किये गये, किन्तु उपलब्धि की दृष्टि से इनकी समुचित व्यवस्था नही की जा सकी।

सामाजिक एवं राजनीतिक स्थितियों के निरन्तर परिवर्तन से अध्यापकों को मिलने वाला वेतन अपेक्षाकृत अन्य व्यवसायों के बहुत कम था अतः शिक्षा के प्रति अभिरूचि कम होती गयी। शिक्षण–प्रशिक्षण का कार्य उत्तर प्रदेश शासन ने पहले सरकारी अध्यापकों को और सेवारत रहकर शासकीय सहायता प्राप्त विद्यालयों के शिक्षकों को दिया गया। एक स्थिति ऐसी भी उत्तर प्रदेश में देखी गयी जब माध्यमिक विद्यालयों में विज्ञान विषय के प्रशिक्षित स्नातक अनुपलब्ध थे। शासन द्वारा यह अनुभव किया गया कि विज्ञान अध्यापकों को तीन माह का गहन प्रशिक्षण देकर उन्हें प्रशिक्षित स्नातक वेतन मान दिया जाय।

इन सब शिक्षा स्वरूपों को देखकर उनकी उपलब्धियों और कियान्वयन से सन्तोष प्राप्त न कर 1964 में डाव डी.एस. कोठारी की अध्यक्षता में सम्पूर्ण शिक्षा पर विचार करने के लिए एक आयोग की स्थापना की गयी जिसे 'कोठारी कमीशन' कहा गया।

3. *राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों का प्रतिपादन, प्रायोजन और उपादेयता*

राजीव गांधी के प्रधान मंत्रित्व काल में डाव करण सिंह द्वारा वर्ष 1986 में " शिक्षा की चुनौती " शीर्षक एक दस्तावेज़ प्रस्तुत किया गया जिसमें भारतीय शिक्षा नीति के समग्र रूप प्राथमिक, माध्यमिक और विश्वविद्यालयी पर विभिन्न विश्वविद्यालयों में सेमीनार आयोजित किये गये और यह अपेक्षा की गयी कि इन सेमीनारों के जो निष्कर्ष हैं उनकी उदादेयता को देखते हुए 1986 की संरचना की गयी। बुन्देल खण्ड विश्वविद्यालय में भी इसी प्रकार का एक आयोजन कुलपति की अध्यक्षता में चार भागों में आयोजित किया गया, जिसमें प्रोव प्रेम नारायण मेहरोत्रा ने अपना विशेष योगदान दिया और इस सेमीनार के समन्यवयक डाव जे. एल. कञ्चन ने इसकी आख्या भारत सरकार के पास प्रेषित की। इसी प्रकार से अन्य विशेष विद्यालयों द्वारा भी 1986 की शिक्षा नीति के प्रायोजन और प्रस्तुति पर विचार किया गया

होगा। भारत सरकार ने यह मन्तव्य प्रगट किया था कि विश्वविद्यालयों से प्राप्त आख्याओं के आधार पर ही नयी शिक्षा नीति का स्वरूप संयोजित किया जाएगा। नयी शिक्षा नीति में इन दिशाओं का भी उपयोग किया गया है।

उत्तर प्रदेश में संस्तुतियों का क्रियान्वयन

उत्तर प्रदेश में भारत सरकार के शिक्षा मंत्री श्री केवसीव पन्त ने 1985 में सभी विश्वविद्यालयों में नई शिक्षा नीति एक चुनौती के परिप्रेक्ष्य में विचारार्थ, विद्वानों की गोष्ठियाँ करवायीं, जिसमें यह स्पष्ट निर्देश था, कि इस नयी शिक्षा नीति के मसौदे पर प्रत्येक विश्वविद्यालय अपना प्रस्ताव जिसमें विचार, समस्याएं, संशोधन और भावी योजनाएं उल्लिखित हों, केन्द्रीय सरकार को इस आशय से प्रेषित करें कि सम्पूर्ण देश में शिक्षा की एकरूपता निरन्तर बनी रहें। राष्ट्र व्यापी विचार विनिमय के उपरान्त जो भी सुझाव भारत सरकार को प्राप्त होंगे उनसे नयी शिक्षा नीति के स्वरूप निर्धारण में सहायता मिल सकेगी, इस दृष्टि से उत्तर प्रदेश के सभी विश्वविद्यालयों और स्वशासी शिक्षा संस्थानों में गोष्ठियाँ आयोजित की गयी, बुन्देल खण्ड विश्वविद्यालय में भी इसी उद्देश्य से एक चार दिवसीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। जिसमें बनारस गांधी शिक्षा संस्थान के चिन्तक, मनीषी डाव प्रेम नारायण मलहोत्रा ने संगोष्ठी के उद्घाटन अवसर पर अपने विचार व्यक्त करते हुये कहा था कि नयी शिक्षा नीति इस कम्प्यूटर विकास के युग में एक मात्र ऐसा विकल्प है जिसमें वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा से भारत का आर्थिक विकास सम्भव है। दूसरी ओर जन आन्दोलन के स्तर पर नयी शिक्षा नीति में जन शिक्षा विलयम द्वारा औपचारिक व अनौपचारिक शिक्षा में संम्मिलित शिक्षा कृति से अशिक्षा और निरक्षरता दूर करने का प्रयास किया जायेगा। प्रौढ़ शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, स्त्री शिक्षा और ऐसे ही अनेक सामाजिक संदर्भों में शिक्षा के विकास से समाज कल्याण की भावना बलवती होगी।

उत्तर प्रदेश के प्रायः सभी विश्वविद्यालयों में इसी प्रकार की गोष्ठियाँ आयोजित की गयी थी। बुन्देल खण्ड विश्वविद्यालय के कुलपति श्री पीवकेव शुक्ल ने नयी शिक्षा नीति की सम्भावनाओं के वैज्ञानिक पक्ष पर प्रकाश डालते हुये यह स्पष्ट किया कि वैज्ञानिक विकास से शिक्षा का बहुमुखी विकास सम्भव है तथा प्रत्येक महाविद्यालय और राष्ट्रीय सेवा की इकाईयों को ग्रामीण शिक्षा की ओर उन्मुख कर विकास कार्य किया जाय। कमजोर आय

वर्ग वाले व्यक्ति जनजाति, अनुसूचित जाति तथा अन्य पिछड़ी जातियों के लिए भी प्रेरणा दायक कार्य किये जायें। इस चार दिवसीय की कार्यशाला की संस्तुतियों को भारत सरकार को प्रेषित किया गया और यह कामना की गयी कि उत्तर प्रदेश में 36% साक्षरता को आगामी 5 वर्ष की अवधि में पर्याप्त बढ़ा दिया जाय और झांसी जनपद में 100% की साक्षरता का लक्ष्य पूरा किया जाय। इस निमित्त विश्वविद्यालय द्वारा संचालित 90 प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों की सर्जना की गयी उन केन्द्रों द्वारा प्रत्येक ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा का प्रचार–प्रसार और निरक्षरता उन्मूलन के लिए निरन्तर प्रयास किया गया। अन्य विश्वविद्यालयों में भी विश्वविद्यालय को केन्द्र मानकर अनौपचारिक शिक्षा को प्रचारित किया गया। पूर्व प्राथमिक, प्राथमिक शिक्षाओं के संदर्भ में आंगनबाड़ी द्वारा जो भी कार्य किये गये उनके परिणाम अधिक प्रभावी प्रतीत नहीं हुये तथापि इस दिशा में प्रयास निरन्तर किया जाता रहा।

उत्तर प्रदेश में नयी शिक्षा नीति के इस प्रस्तावित कार्यक्रम पर प्रशासकीय स्तर और विश्वविद्यालय स्तर से जो भी कार्य हुये वे अधिक महत्वपूर्ण और उत्साह जनक नहीं थे। पोस्टर लगाना, रैलियाँ निकालना अर्थात् नुक्कड़ सभाएं और नाटक करना साक्षरता के प्रभावी माध्यम थे किन्तु इन्हें मात्र जन जागरण ही कहा जा सकता है। नीति का सफल क्रियान्वन नहीं। इस दृष्टि से यह शोध प्रबंन्ध प्रस्तुत किया जा रहा है कि नयी शिक्षा नीति की क्या नीतिगत उपलब्धियाँ हैं। और इसकी सीमाएं क्या है। इस अध्ययन में आने वाली जो समस्याएं हैं उनका विश्लेषण और मूल्यांकन कर सम्भव दिशाओं की ओर भी निर्देश करना है। जिससे इस नीति के क्रियान्वयन में सहायता मिल सके और जिस आदर्श लक्ष्य की प्राप्ति का उद्देश्य निर्धारित किया गया है। उसे पूरा किया जा सके।

बेसिक शिक्षा

स्वतन्त्रता के उपरान्त उत्तर प्रदेश में बेसिक शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में निरन्तर विचार विमर्श किया जाता रहा है जिसमें बुनियादी शिक्षा पर बल देते हुए उत्तर प्रदेश में बेसिक शिक्षा परिषद का गठन किया जाना अनिवार्य समझा गया। इसे मूर्त रूप प्रदान करने के लिए दिनांक 25.07.1972 बेसिक शिक्षा परिषद का गठन किया गया। इस परिषद में निम्नलिखित पदेन सदस्य और नामित सदस्य बेसिक शिक्षा निदेशक के नेतृत्व में सम्मिलित किए गए–

1. बेसिक शिक्षा निदेशक – पदेन अध्यक्ष

2. प्रशासकीय अधिकारी – तीन पदेन सदस्य

3. जिला पालिका के दो सदस्य – नामित सदस्य

4. नगर पालिका के दो सदस्य – नामित सदस्य

5. शिक्षाविद् सदस्य दो – शिक्षा शास्त्री

6. सचिव, माध्यमिक शिक्षा परिषद – पदेन सदस्य

7. सचिव, प्राथमिक शिक्षा परिषद – पदेन सदस्य

इस प्रकार बेसिक शिक्षा परिषद में 12 सदस्य थे।[1] सचिव, माध्यमिक और प्राथमिक शिक्षा परिषद उत्तर प्रदेश को 1975 में हुए एक संशोधन अधिनियम के अन्तर्गत उक्त परिषद का सदस्य बनाया गया है।

उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा अधिनियम 1972 में तत्सम्बंधी अध्यादेश को अधिनियम के रूप में राज्य विधान में स्वीकृति प्रदान करने के बाद जो अधिनियम बना उसे " उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा अधिनियम " कहा गया। इस अधिनियम का क्षेत्र उत्तर प्रदेश में बेसिक शिक्षा परिषद के गठन को एक व्यापक रूप प्रदान करना था जिसमें प्राथमिक शिक्षा संस्थाओं, नार्मल–स्कूल और अन्य बुनियादी शिक्षा के प्रशिक्षण विद्यालयों का प्रशासन सम्मिलित था। इस अधिनियम को 1975 व 1977 में संशोधित कर और अधिक व्यापक बना दिया गया।

बेसिक शिक्षा को परिभाषित करते समय यह ध्यान रखा गया कि यह शिक्षा केवल आठवीं कक्षा तक के विद्यार्थियों के लिए उन स्वतंत्र विद्यालयों में लागू होगी जो जिला परिषद, नगर पालिका अथवा अन्य स्वायत्त सेवी संस्थान और नागरिक प्रबन्धकों द्वारा चलाये जा रहे हैं तथा केवल आठवीं कक्षा तक है। हाई स्कूलों अथवा इण्टर कॉलेजों में जो कक्षा छह से चल रहे हैं, उनका सम्बर्द्धन और प्रबन्धन दोनों ही माध्यमिक शिक्षा परिषद के परिनियमों के अन्तर्गत रहेगा। उत्तर प्रदेश के प्रत्येक जनपद में एक जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी अवश्य नियुक्त होगा। इस प्रकार उत्तर प्रदेश में वर्षों पुराने चले आ रहे विकेन्द्रित शिक्षा व्यवस्था को उत्तर प्रदेश शासन के अन्तर्गत केन्द्रित कर दिया गया।

उत्तर प्रदेश में शिक्षा व्यवस्था बंगाल सरकार से 1840 में हस्तान्तरित कर दी गई थी। तहसील स्तर के विद्यालय जो थामसन द्वारा 1850 में और क्षेत्रीय स्तर पर हल्काबाड़ी

---

1. Education in Uttar Pradesh - B.S. Sial - Page 5, Maya Prakashn, Lucknow.

विद्यालय एलेक्जेन्डर (मथुरा का जिलाधिकारी) द्वारा 1851 में आठ जिलों में मूल रूप से स्थापित की गई थी जिसे 1856 उत्तर प्रदेश के प्रत्येक जिले में स्थापित कर दिया गया था। शिक्षा का यह प्रसार 1854 में पारित 'चार्ल्स वुड', जो 'बुड्स डिस्पैच' के नाम से जाना जाता है, द्वारा किया गया। 1871 में इन विद्यालयों को स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं (Local Self Institution) को दे दिया गया। 1883–85 जब लार्ड रिपन ने स्थानीय स्वायत्त सरकार (Local Self Government) अधिनियम के साथ समस्त प्राथमिक शिक्षा संस्थायें स्थानीय प्रशासन के अर्न्तगत आ गई। लार्ड कर्जन ने 1902 और 1914 में जो शासन द्वारा स्वीकृत हुआ उसमें कुछ विद्यालयों को स्वायत्त संस्थाओं से मुक्त, सीधा उत्तर प्रदेश सरकार के नियंत्रण में रखा गया जिन्हें 'मॉडल स्कूल' नाम दिया गया।

खेर समिति 1937 की संस्तुतियों से शिक्षा एवं शिक्षकों के स्तर में सुधार के कतिपय सुझाव स्वीकृत किए गये। 1925 में इस शिक्षा परिषद का पुर्नगठन कर इस 'बोर्ड ऑफ वर्नाक्यूलर एजूकेशन' कहा गया। साथ ही साथ जिला परिषद और नगर पालिका इन प्राथमिक विद्यालयों को. संचालन करती रही।

आचार्य नरेन्द्र देव समिति 1938–39 ने संस्तुति की थी कि शिक्षा मंत्री की अध्यक्षता में बेसिक शिक्षा और माध्यमिक शिक्षा के दो सहायक बोर्ड और बनाए जाएं जो सलाहकार समिति के रूप में स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं का दिशा निर्देशन करें।

दिनांक 04.08.1939 को एक प्रस्ताव पारित कर आचार्य नरेन्द्र देव समिति ने यह स्वीकार किया कि जिला परिषद के बेसिक विद्यालयों ने ग्रामीण क्षेत्र में प्राथमिक शिक्षा के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान किया है। तदुपरान्त एक विद्वान शिक्षा शास्त्री एवं शिक्षा मंत्री डाव सम्पूर्णानन्द ने दस वर्षों में 22000 विद्यालय खोले जाने का संकल्प किया और तीन वर्षों में 13000 सरकारी प्राइमरी विद्यालय खोले जो स्थानीय संस्थाओं को सौप दिये गए।

उत्तर प्रदेश में ज़ब बुनियादी शिक्षा का श्री गणेश 1838 में किया गया तब अनेकानेक प्राथमिक कार्य किये जाने थे। जिन विद्यालयों में बेसिक शिक्षा नहीं दी जाती थी उनको बेसिक शिक्षा विद्यालय में परिवर्तित किया जाना था। पुर्नगठन और प्रशासन की प्रक्रिया में बेसिक प्रशिक्षण विद्यालय, प्रशिक्षण केन्द्र, शिक्षक और शिक्षणोत्तर कर्मचारियों के प्रशिक्षण के बिन्दु प्रमुख कारक थे। डा० सम्पूर्णानन्द के मंत्रित्व में बिना विशेष अनुदान एवं बिना प्रथक

निदेशालय के जिला/नगर और गांव-समितियों की सहायता से उत्तर प्रदेश में स्थानीय निकायों के सहयोग से शिक्षा के क्षेत्र में बेसिक शिक्षा की यह एक अनुपमेय सिद्धि रही।

इस प्रकार प्रस्तुत शोध में, समय-समय पर गठित शिक्षा आयोगों, शिक्षा समितियों व समीक्षा समितियों द्वारा जो संस्तुतियाँ प्रस्तुत की गयी हो। उनको उत्तर प्रदेश के शैक्षिक परिदृश्य में उनके क्रिया-वयन पर चिन्तन किया गया तथा उनकी विस्तृत विवेचना भी की गयी है।

शिक्षा नीति की उपादेयता

शिक्षा को व्यवस्था देने के लिए शासन जिन तथ्यों या सिद्धान्तों को स्थिर करता है उन्हें शिक्षा नीति कहते हैं। शैक्षिक नीति सामान्यतः संस्थाओं के शैक्षिक प्रशासन, प्रबन्ध व्यवस्था, वित्त के प्राविधान तथा प्राथमिकताओं के निर्धारण का निर्देश करती है। शिक्षा के उद्देश्य और आदर्श स्थूल रूप से उस समाज की आवश्यकताओं से व्यंजित होते हैं, जिनके लिए उनकी संकल्पना की जाती है। अन्ततोगत्वा इनका स्वरूप निर्धारण, आदेश देने वाले प्रशासन के स्वरूप द्वारा सुनिश्चित होता है। इन अवयवों में किसी प्रकार का अन्तर, शिक्षा के किन्हीं पक्षों पर बलान्तर से अनुगत होकर शैक्षिक नीति के विकास में प्रतिफलित होता है।

शिक्षा की नीति प्रायः निर्धारण होती है। शासकीय आदेशों और प्रस्तावों से, शिक्षा समितियों और आयोगों की अनुसंस्थाओं से, भारतीय संविधान में निरूपित शैक्षिक तत्वों और निदेशक सिद्धान्तों से, पंचवर्षीय योजनाओं में शिक्षा विकास हेतु दिग्दर्शित दिशाओं से, जिन्हें शासन स्वीकार कर ले। परन्तु राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 ऊपर से थोपी नहीं गयी है, बल्कि इसे शिक्षा के हर क्षेत्र में कार्य करने वाले शिक्षाविदों, पत्रकारों, संसद सदस्यों, विधायकों, डाक्टरों, इंजीनियरों, राजनेताओं, जनप्रतिनिधियों, वैज्ञानिकों, प्रबन्धकों, अभिभावकों तथा मजदूरों आदि के विचार विमर्श तथा उनसे प्राप्त सुझावों के आधार पर तैयार किया गया है। इस प्रकार शिक्षा की राष्ट्रीय नीति का तात्पर्य शिक्षा के उन सिद्धान्तों तथा नीतियों के निध ारिण से है, जिनके आधार पर समस्त राष्ट्र की गतिविधियों का संचालन होता है।

भारत के केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार परिषद समय-समय पर शिक्षा नीति सम्बन्धी सुझाव शासन को देती है। भारतीय शिक्षा नीति के इतिहास क्रम में अखिल भारतीय स्तर पर स्वतंत्रता के पश्चात् 1968 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति विषयक यह तीसरी व स्वतंत्रता के

उपरान्त पहली घोषणा थी, जिसमें सम्पूर्ण शिक्षा के सम्बन्ध में कतिपय महत्वपूर्ण संकल्प व्यक्त किये गये। लेकिन इन संकल्पों का सुचारू रूप से क्रियान्वयन नहीं हो सका अतएव जनता शासन के कार्यकाल में शैक्षिक परिवर्तनों के विषय में सम्पूर्ण देश में एक अनास्था का वायुमण्डल फैला हुआ था। अतएव जनता शासन ने एक नयी शिक्षा नीति फरवरी 1979 में घोषित की, लेकिन जनंता सरकार का शासन काल बहुत ही कम रहा, जिसके फलस्वरूप यह शिक्षा नीति अपना स्वरूप धारण करते हुये क्रियान्वित नहीं की जा सकी अतः इस नीति का स्वमेव अन्त हो गया।

प्रधानमंत्री बनते ही श्री राजीव गांधी ने राष्ट्र के नाम अपने संदेश 5 जनवरी 1985 को एक ऐसी शिक्षा नीति बनाने का वचन दिया जो राष्ट्र को 21वीं सदी में प्रवेश के लिए वैज्ञानिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक दृष्टि से देश को तैयार कर सकें। यह नीति ही राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 अथवा नयी शिक्षा नीति कहलायी। यह राष्ट्रीय शिक्षा नीति समाजवादी समाज की दिशा में एक उत्तम कदम कहा गया। अगले आने वाले वर्षों में यह महाधिकार पत्र सिद्ध होगा ऐसी आशा तथा अपेक्षा की गयी। इस दस्तावेज में जो भारतीय शासन द्वारा प्रकाशित किया गया है लगभग 1व,वव‍व शब्द हैं जो 29 पृष्ठों पर फैले हुये हैं तथा इसमें 157 धाराएं हैं। 21वीं शताब्दी की चुनौतियों को दृष्टिगत रखते हुये हर धारा को मानव संसाधन विकास के साथ संयुक्त किया गया है। इसके क्रियान्वयन हेतु 23 कार्य दल बनाये गये हैं।

मानव संशाधन विकास मन्त्रालय द्वारा नवम्बर 1986 में "प्रोग्राम ऑफ एक्शन" नामक एक दस्तावेज जारी किया गया है। जिसके माध्यम से इस नीति के क्रियान्वयन पर प्रकाश डाला गया है।

कांग्रेस शासन समाप्त होते ही जनता दल की सरकार ने शासन संभाला और उसमें 7 मई 1990 को राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर नये सिरे से विचार कर रहे संसद में एक समीक्षा समिति की घोषणा की, जिसकी अध्यक्षता का कार्य आचार्य राममूर्ति को सौंपा गया। आचार्य राममूर्ति समिति ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में 12 परिवर्तन बिन्दु सुझाव इस प्रकार वर्तमान में 1986 की 1990में संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति हमारे समक्ष हैं। हमारे देश में, प्रदेश में तथा उसके अनेक संभागों में इसका क्या क्रियान्वयन हुआ यह शोध का विषय है। जब तक हम

व्यवहारिक दृष्टि से इसके क्रियान्वयन की समीक्षा शोध द्वारा पूर्ण नहीं करते तब तक इसकी प्रभावोत्पादकता को नहीं जाना जा सकता। यह राष्ट्रीय शिक्षा नीति शिक्षा के सम्पूर्ण क्षेत्र तथा विभिन्न आयामों को दृष्टिगत करते हुये 21वीं सदी में उसकी उपयोगिता को देखते हुये परिवर्तित, संशोधित एवं परिभाषित की गयी है। अतः इसका परिपालन आवश्यक तथा समीचीन होगा।

4. *समस्या कथन*

शिक्षा के चहुमुखी विकास हेतु व शिक्षा के विभिन्न स्तरों में उत्तरोत्तर वृद्धि हेतु समय समय पर विभिन्न शिक्षा आयोगों का गठन किया गया तथा उन आयोगों ने अपनी नीतियॉ निर्धारित कर उनके कियान्वयन हेतु संस्तुतियॉ प्रस्तुत की हैं अतः शिक्षा की उत्तरोत्तर वृद्धि हेतु यह आवश्यक समझा गया कि गठित शिक्षा आयोगों द्वारा जों शिक्षा नीतियॉ प्रस्तुत की गयी हैं उन्हें उत्तर प्रदेश में कहॉ तक क्रियान्वित किया गया है तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के सापेक्ष क्या सुधार किया जाना आपेक्षित रहा ? शैक्षिक क्षेत्र में स्वतंत्रता के पूर्व व स्वतंत्रता के पश्चात ऐसी आवश्यकता महसूस की जाती रही है कि शिक्षा के चहुमुखी विकास हेतु आवश्यकता अनुसार कमीशन एवं कमेटीयॉ गठित की जायें।

शोधकर्त्री द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में समय समय पर गठित शिक्षा आयोंगो की समाख्या कर उनके द्वारा प्रस्तावित शिक्षा नीतियों को पूर्वोक्त दशक में गठित नयी शिक्षा नीति जिसे राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 कहा गया, द्वारा सुझाये गये बिन्दुओं से तुलना करने का प्रयास करते हुए निम्नलिखित समस्या. का चयन किया गया :–

''उत्तर प्रदेश में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद गठित आयोगों द्वारा प्रतिपादित नीतियों तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 का तुलनात्मक अध्ययन''

समस्या का परिभाषीकरण

शोध विषय में प्रयुक्त शब्दों को निम्नअर्थो में प्रयुक्त किया गया है :-

उत्तर प्रदेश

उत्तर प्रदेश से तात्पर्य उत्तर प्रदेश राज्य से है जिसकी सीमाएं भूगोल और राजनीति के अनुसार निर्धारित है। उत्तर प्रदेश में शिक्षा का विषय संवर्ती सूची में होने के कारण उत्तर प्रदेश शिक्षा मंत्रालय और शिक्षा विभाग द्वारा नियंत्रित है। उत्तर प्रदेश की शिक्षा प्राथमिक,

माध्यमिक और विश्वविद्यालयी स्तर से प्रशासित होती है। और प्रत्येक स्तर का एक शिक्षा निदेशक और शिक्षा सचिव सर्वोच्च अधिकारी होते हैं।

उत्तर प्रदेश जो भारत के उत्तरी अक्षांशों 30°50' (मिर्जापुर) व पूर्व में 70°04' (मुज्जफरनगर) 0 84°38' (बलिया) देशान्तर रेखाओं के बीच अवस्थित है तथा 12 जनवरी 1950 को भारतीय संविधांन के अनुसार उत्तर प्रदेश कहलाया। इसकी जनसंख्या 1991 की जनगणना[1] के अनुसार 13,91,12,287 है जिसमें 7,40,36,957 पुरूष तथा 6,50,75,330 महिलाएं हैं। जनसंख्या का घनत्व प्रतिव्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर है तथा साक्षरता का प्रतिशत 41.60 है। उत्तर प्रदेश में साक्षर पुरूषों का प्रतिशत 55.73 है तथा साक्षर महिलाओं का प्रतिशत 25. 31 है। उत्तर प्रदेश में स्त्री पुरूष अनुपात प्रति हजार पुरूषों पर 879 स्त्रियाँ हैं। अखिल भारतीय सर्वेक्षण 1996 के अनुसार[2] राज्य में कुल 68 जनपद तथा 901 विकास खण्ड हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद गठित आयोग

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद गठित आयोग से तात्पर्य है कि भारत सरकार द्वारा स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद समय–समय पर जितने भी शिक्षा आयोगों अथवा समितियों का गठन किया गया व उनके नीति निर्धारण, नीतिगत परिवर्तन, नीतिगत संवर्धन से है। प्रस्तुत शोध में शिक्षा के क्षेत्र में गठित आयोग विश्व विद्यालयी शिक्षा (राधाकृष्णन कमीशन) माध्यमिक शिक्षा आयोग (मुदालियर कमीशन) बेसिक शिक्षा (कोठारी कमीशन) की नीतियों तथा उनके क्रियान्वयन का अध्ययन, उत्तर प्रदेश के विशेष संदर्भ में किया जाएगा।

प्रतिपादित नीतियॉ

प्रतिपादित नीतियों से तात्पर्य उन नीतियों से है जो शिक्षा आयोंगो द्वारा समय की आवश्यकता अनुसार प्रतिपादित की गयी हैं व स्वतंत्रता पश्चात गठित आयोंगो द्वारा जो नीतियॉ शिक्षा के चहुमुखी विकास हेतु सुझायीं गयी हैं,उनसे है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति से तात्पर्य

राष्ट्रीय शिक्षा नीति से तात्पर्य उन शिक्षा नीतियों से है जिसे राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा की आवश्यकता अनुसार गठित किया गया है। प्रमुख राष्ट्रीय शिक्षा नीतियॉ 1904, 1913, 1968, 1979 व 1986 को लिया गया है।

---

1. सूचना एवं जनसर्म्पक विभाग द्वारा प्रकाशित "उत्तर प्रदेश वार्षिकी" – 1999, पृ0 107, 108, 109
2. सूचना एवं जनसर्म्पक विभाग द्वारा प्रकाशित "उत्तर प्रदेश वार्षिकी" – 1999, पृ0 112

यहाँ पर प्रयुक्त 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति' से तात्पर्य 1986 में राष्ट्रीय स्तर पर जो नीति लागू की गयी, उससे है।

तुलनात्मक अध्ययन

तुलनात्मक अध्ययन से तात्पर्य है कि गठित शिक्षा आयोगों को 1986 की शिक्षानीति के तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन किया जायगा। 1986 की नयी शिक्षा नीति में अनौपचारिक शिक्षा, सतत शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा तथा सम्पूर्ण साक्षरता अभियान (टी.एल.सी.) के द्वारा सम्पूर्ण देश को साक्षर और शिक्षित बनाया जाय जिसमें औपचारिक शिक्षा की अनिवार्यता नहीं 1 इंदिरा गाँधी मुक्त विश्वविद्यालय इसी परिकल्पना का उच्च शिक्षा संबंधी अभिषण प्रयास है। दूरस्थ शिक्षा भी इसी दिशा में ऐसा प्रयास है। जिससे स्थानीय अवलम्बन के साथ दूर–दूर तक पत्राचार के माध्यम से शिक्षा के प्रचार–प्रसार किया जा सके।

समस्या का परिसीमन

स्वतन्त्र भारत में शिक्षा के नीति निर्धारण, संवर्धन और संशोधन से संदर्भित समय–समय पर राष्ट्रीय विकास के निमित्त शिक्षा की महत्व दिया जाता रहा है इस राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में उत्तर प्रदेश ऐसा राज्य है, जहाँ शिक्षा की नीतियों का अनुगमन अपेक्षाकृत शीघ्र किया जाता रहा है और उत्तर प्रदेश अन्य राज्यों की अपेक्षा अधिक जागरूक और शिक्षा प्रसार में अंग्रेजी राज्य रहा है। वर्तमान युग में शिक्षा का आधुनिकीकरण मात्र सैद्धान्तिक, चिन्तन प्रधान अथवा दार्शनिक ज्ञान का क्षेत्र नहीं रह गया है। अपितु औद्योगिक और अधिक विकास के साथ–साथ वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा नितान्त अनिवार्य समझी जाने लगी है। इन्हीं के आधार पर शैक्षणिक मूल्यों का नियोजन क्रियान्वयन और उन्नयन सम्भव है। ताकि हमारा देश आर्थिक दु:श्चिन्ताओं से मुक्त एक विकासशील समाज की रचना करने में सक्षम और समर्थ हो सके। शिक्षा के समग्र विकास के लिए 1948 में विभिन्न आयोगों का गठन और समीक्षा समितियों की स्थापना की गयी, जिससे कि भारतीय शिक्षा पद्यति और राष्ट्रीयता के अनुकूल उपलब्धियाँ प्राप्त हो सकें और सम्पूर्ण भारत विशेषकर उत्तर प्रदेश, अंग्रेजी प्रशासकों द्वारा प्रतिपादित शिक्षा पद्धतियों और नीतियों को निरन्तर न बनाये रखा जाए। लार्ड मैकाले की शिक्षा पद्धति प्राथमिक, माध्यमिक अथवा विश्व विद्यालयी स्तर पर राष्ट्र के लिए उपयोगी नहीं थी। क्योंकि उसमें न तो राष्ट्रीयता की कोई भावना और ना ही कोई विकास की दिशाएं

प्रतीत होती थी। यह अवश्य था कि स्वतन्त्र भारत में अपने ही देश की सीमाओं में उपलब्धि, विचार, चिन्तन, वैज्ञानिक उपकरण, तकनीकी विधियाँ विकसित की जाएं, और उन्हीं संसाधनों से देश की समृद्ध तथा उन्नतिशील बनाया जाए। इसी के अनुकूल पूर्व प्रधानमंत्री स्व0 राजीव गांधी ने भी 21वीं सदी में भारत की नयी परिकल्पनाओं को साकार स्वरूप देने का प्रयास किया था। 1986 तक समस्त शिक्षा नीतियों का अध्ययन और अवलोकन करने के उपरान्त 'शिक्षा की चुनौती' शीर्षक से एक नीतिगत विवेचन प्रस्तुत किया गया, जिसमें सम्पूर्ण देश के मनीषियों को आमंत्रित कर नये सुझाव और विकास की दिशाएं आमंत्रित की गयी और हमारे बुन्देल खण्ड विश्वविद्यालय में भी एक कार्यशाला द्वारा विचारों का संयोजन प्रस्तावित कर शासन को प्रेषित किया गया। इसलिए भी इन समस्त आयोगों और समितियों की संस्तुतियों को शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में उत्तर प्रदेश में महत्व पूर्ण समझा गया। क्योंकि उत्तर प्रदेश में ही इसका संयोजन किया गया था। इस विषय पर शोध करना सर्वथा समीचीन है और शिक्षा के क्षेत्र में इसकी महती आवश्यकता भी है।

कोठारी आयोग में 1966 में सम्पूर्ण भारत की शिक्षा में आमूल परिवर्तन करने की संस्तुति की इसके अर्न्तगत पूर्व प्राथमिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालयी, विज्ञान और तकनीकी, स्त्री शिक्षा तथा सहशिक्षा आदि के उन्नयन के साथ–साथ शिक्षकों के उच्चस्तरीय प्रयास नवीनीकृत शिक्षा प्रशिक्षण, वेतन मात्र और सेवा सुरक्षा आदि की व्यवस्था भी की गयी। इस आयोग की संस्तुतियों में जन सहयोग की भी अपेक्षा की गयी, ताकि शिक्षा के विकास में लोकतांत्रिक भागीदारी भी सुनिश्चित हो। व्यवसायिक शिक्षा के क्षेत्र में 11 से 16 वर्ष 17 – 18 वर्ष के वर्ग में लगभग एक तिहाई विद्यार्थियों को व्यवसायिक प्रशिक्षण की आवश्यकता पर बल दिया गया। इस आयोग ने 10 + 2 स्तर को उच्चतर माध्यमिक स्तर और त्रिवर्षीय स्नातक पाठ्यक्रम की प्रबल संस्तुति की ताकि शिक्षण के व्यवसाय के लिए 1 वर्ष का प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम रखकर अशिक्षा को दूर करने की संस्तुति की गयी। इस प्रकार अध्यापकों के वेतन सुधार से शिक्षण मे शिक्षित वर्ग की अभिरूचि बढ़ने की अपेक्षा की गयी और ऐसा अनुमान किया गया कि 70 लाख व्यक्तियों से 1985 तक शिक्षित वर्ग की संख्या बढ़कर 170 लाख हो सकेगी और इंस शिक्षा का व्यय 60 करोड़ से बढ़कर 470 करोड़ होकर राष्ट्रीय

आय का 2.9प्रतिशत से बढ़कर 6प्रतिशत सम्भावित होगा। इसका स्पष्ट उल्लेख कोठारी आयोग ने 1966 में अपनी आख्या में दिया है।[1]

शिक्षा राज्य का विषय होने के कारण इस आख्या को सांसदों की एक समिति को सौपा गया ताकि वे इसे दोनों सदनों में विचारार्थ रख सकें और तब मंत्री परिषद में इस पर विचार–विमर्श किया जाय। जिसका परिणाम यह हुआ कि 1968 में प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा नीति को स्वतंत्र भारत में घोषित किया गया।[2] किन्तु दुःख का विषय है कि जैसे–जैसे कोठारी आयोग की यह आख्या सांसदों और मंत्री परिषद के बीच विचार विमर्श के लिए हस्तांतरित होती गयी, वैसे–वैसे इसका महत्व घटता चला गया। इससे यह लाभ अवश्य हुआ कि जनता सरकार के शासन में 1979 में शिक्षा पर पुर्नविचार किया गया तथा नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति का बीजांकुर हुआ।

1986 की नई शिक्षा नीति के ठीक 1वव वर्ष पूर्व 1886 में प्रथम बार अंग्रेजी शासन काल में जब प्रत्येक 5 वर्ष में शिक्षा नीति पर पुर्नविचार का दृष्टिकोण रखा गया, ठीक वही दृष्टिकोण इस नयी शिक्षा नीति में भी अपनाया गया। नयी शिक्षा नीति में ग्रामोदय विश्वविद्यालयों का जो संकल्प किया गया, वह नवीन विचार नहीं था, बल्कि इसे 1948 में 'राधाकृष्णन आयोग' ने भी प्रस्तावित किया था। उसी विचार को इस नयी शिक्षा नीति को यथावत् स्वीकार कर लिया गया। इसी प्रकार आदर्श विद्यालय की परिकल्पना 1854 में की गयी थी, जब प्रत्येक गांव व प्रत्येक जिले में एक वर्नाकुलर विद्यालय की स्थापना का निश्चिय किया गया था। कोठारी आयोग ने भी नई–शिक्षा नीति को एक विचार दिया, जिसमें भारतीय शिक्षा पद्धति का नियोजन सम्मिलित था। ऐसे विद्यालय जैसे हिन्दू कालेज, संस्कृत कालेज, आगरा कालेज, दिल्ली कालेज और प्रेसीडेन्सी कालेज जो 1953 में हिन्दू कालेज के प्रमुख विभागों से निकलकर स्वायत्त शासी कालेज बन गये थे, ऐसे ही विद्यालयों को नयी शिक्षा नीति में इस विचार के साथ रखा गया कि अधिकांश विद्यालय यदि स्वायत्तशासी हो जाये तो शिक्षा के क्षेत्र में एक क्रांतिकारी परिवर्तन सम्भव हो सकता है। इस नयी शिक्षा नीति का प्रारूप अगस्त 1985 तक तैयार होकर राजनीतिज्ञों शिक्षा विदों, प्रशासकों, समाज सेवी संस्थाओं और सम्पूर्ण भारत में विहत जनों के समक्ष विचारार्थ रखा गया, जिसे केवसीव पन्त ने नयी शिक्षा नीति एक नीतिगत विवेचन के रूप में प्रस्तुत किया। तदुपरान्त मई 1986 में यह नयी शिक्षा नीति कहलायी।

1. Educational & National Development - 1966
2. Education Commition and after J. P. Nahak, Page 39 to 44

नयी शिक्षा नीति 1986 के अध्ययन से किन्तु यह पता लगता है कि यह शिक्षा नीति की अपेक्षा राजनीति से अधिक प्रेरित है। यह विषय केवल भारत वर्ष में ही नही, अपितु संसार के प्रत्येक देश में शिक्षा के प्रति एक अनिश्चितता बनी हुयी प्रतीत होती थी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के तीन दशकों के अन्दर ही भारत वर्ष में शिक्षा का प्रसार बिना किसी योजना के तेजी से बढ़ता गया, जो उच्च शिक्षा के क्षेत्र में सैद्धान्तिक अधिक था, व्यवहारिक कम। उदाहरण के लिए 1947 में जब भारत स्वतंत्र हुआ तब मात्र 19 विश्वविद्यालय, 277 महाविद्यालय , 199 माध्यमिक विद्यालय और 140 व्यवसायिक व तकनीकी कालेज थे। इसकी तुलना में 1974 में 100 विश्वविद्यालय और 4000 महाविद्यालय की गणना की गयी तथा इन विद्यालयों में 2. 5 लाख विद्यार्थियों की संख्या बढ़कर 34 लाख हो गयी।[1] इस समस्त बढ़ती हुयी शिक्षा का परिणाम यह निकला कि वर्ष 1974 में 41 लाख 74 हजार स्नातक बेरोजगार हो गये।[2] इस बेरोजगारी के परिणाम स्वरूप समाज में शिक्षा का स्तर निरन्तर गिरता चला गया और एक बड़े पैमाने पर असंगठित शिक्षित बेरोजगारी से समाज निरन्तर बुराईयाँ फैलती चली गयी। जिसने सुसंगठित योजनाबद्ध नागरिक शिक्षा समुदाय को भी प्रभावित किया।[3]

1986 की शिक्षा नीति के उपरान्त इस शिक्षित बेरोजगारी की समस्या और सामाजिक अनिश्चितता से निपटने के लिएएक कार्यक्रम बनाया गया, जिसे 'प्रोग्राम ऑफ एक्शन' कहते हैं, जिसको यदि नहीं अपनाया गया तो फिर से एक बार शिक्षा के सुधार का अवसर सदा के लिए समाप्त हो जाएगा, जो न केवल राष्ट्रीय अहित होगा, अपितु हमारे जीवन के लिए घातक सिद्ध होगा।[4] इस नयी शिक्षा नीति को समान रूप से केन्द्र और राज्यों में क्रियान्वित करने में निरन्तर कठिनाइ बढ़ती गयी, क्योंकि इस नीति को केन्द्र में कांग्रेस के प्रधान मंत्री राजीव गांधी ने प्रस्तुत किया था जबकि 1985–86 की कालावधि में गैर कांग्रेसी सरकारें राज्यों में स्थापित हो रही थी अतएव इनकी एकरूपता को निरन्तर बना रहना सम्भव नहीं प्रतीत होता था।

शिक्षा के विषय में निरन्तर बढ़ती हुयी उदासीनता के प्रति केन्द्रीय शिक्षा मंत्री के आवाहन पर आवैत की गयी सभा में पंडित जवाहर लाल नेहरू ने यह घोषणा की थी कि जब–जब शिक्षा के सम्बन्ध में कोई विचार–विमर्श समिति का आयोजन किया जाता है।

1. J. P. Nayak or S. Narulla - " A History of Education in India"
2. Registrar of D.G.E. and T. - New Delhi - 1974
3. S. C.Ghos - Indian Nationalist - Page 22
4. "प्रोग्राम ऑफ एक्शन" – मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, पृ० IV

तब–तब शिक्षाविद् और सदस्य गण किंचित संसाधनों के साथ परम्परागत शिक्षा नीति को अपनाने का ही पक्ष लेते हैं। किन्तु स्वतन्त्र भारत में अब ऐसा होना अनुचित है क्योंकि देश में अनेक परिवर्तन हो चुके हैं अतः शिक्षा को भी उन्हीं के अनुरूप बदलाना चाहिए तथा शिक्षा के सम्पूर्ण आधार में क्रांतिकारी परिवर्तन होना आवश्यक है।[1] नयी शिक्षा नीति इस क्रांतिकारी दिशा एक महत्वपूर्ण परिवर्तन है।

नई शिक्षा नीति को 12 भागों में विभाजित किया गया है। जिसमें पहले 2 भागों में राष्ट्रीय शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में विचार किया गया है तथा बिना किसी जाति, वर्ण, रंग–भेद के समाज के सभी वर्गों को शिक्षा की मुख्य धारा में लाने का प्रयास किया गया है। समाज के अनुसूचित जाति, पिछड़ा वर्ग और लिंग भेद के बिना सभी को शिक्षा का समान अवसर दिया जाना शिक्षा का मुख्य भाग है। माध्यमिक शिक्षा तक 12 वर्ष और तदुपरान्त स्नातक स्तर पर 3 वर्ष का शिक्षा कार्यक्र इस नई शिक्षा नीति में प्रस्तावित है। इस 12 वर्ष के कार्यक्रम में प्रथम 10 वर्ष को प्राथमिक, उत्तर प्राथमिक तथा 2 वर्ष पूर्व माध्यमिक अर्थात् 10वीं कक्षा तक नियोजित किया गया है। अर्थात् शिक्षा को समस्त कार्यक्रम 10 + 2 + 3 के रूप में माध्यमिक से स्नातक स्तर तक नियोजित किये जाने की परिकल्पना है।

नई शिक्षा नीति में शिक्षा के समान अवसर देने के प्राविधान के अर्न्तगत महिलाओं को शिक्षित करना, अनुसूचित जाति, जन जाति, विकलांगों, अल्प संख्यकों जो शिक्षा के क्षेत्र में अन्यथा पिछड़े हुये हो अथवा ग्रामीण क्षेत्रों में रह रहे हैं। पहाड़ी क्षेत्रों में अथवा रेगिस्तानी क्षेत्र में निवास करते हैं, उन सबके विषय में समस्त देश वासियों को यह प्रतिज्ञा करनी होगी कि 15 से 35 वय वर्ग में कोई भी व्यक्ति निरक्षर न रहे। इस प्रकार नयी शिक्षा नीति एक ऐसी योजना है। जिसमें प्रौढ़ शिक्षा राष्ट्रीय कार्यक्रमों के साथ संयोजित होकर देश के विकास में सहायक सिद्ध हो सके। इसके लिए प्रारम्भिक शिक्षा में निम्न बिन्दु महत्वपूर्ण है–

1. 14 वर्ष की अवस्था तक सबको शिक्षा के लिए नामांकित करना और उन्हें शिक्षा प्रदान करना।
2. शिक्षा में गुणात्मक सुधार करना।
3. 1990 तक अनौपचारिक शिक्षा 11 वर्ष की वय वर्ग में सभी को शिक्षा प्रदान करना।
4. 5 वर्ष उपरान्त 14 वर्ष के वय वर्ग तक सभी बच्चों को आवश्यक रूप से अनिवार्य शिक्षा प्रदान करना।

---

1. S. Gopal - Selected Works of Jawahar Lal Nehru, Vol - V - Page - 407

5. माध्यमिक स्तर तक प्रतिभावान छात्रों को आगे बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन देना और उन्हें व्यवसायिकत शिक्षा की ओर उन्मुख करना।

6. यह व्यवसायिक शिक्षा 8वीं क़क्षा के अर्न्तगत प्रदेय होगी।

7. इसका मुख्य उद्देश्य माध्यमिक शिक्षा तक व्यवसायोन्मुख विद्यार्थियों की 1वः अभिवृद्धि और माध्यमिक शिक्षा प्राप्त विद्यार्थियों की 25 प्रतिशत अभिवृद्धि 1995 तक सुनिश्चित करना।

किन्तु इन सबसे भी अधिक महत्वपूर्ण है कि 15व विश्वविद्यालयों और 5ववव महाविद्यालयों को निरन्तर ह्मस होने से सुरक्षित रखना। इसके साथ ही सम्बद्ध महाविद्यालयों को स्वायत्तशासी महाविद्यालयों में परिवर्तित करना इन नई शिक्षा नीति का विशेष उद्देश्य भी है। मुक्त विश्व विद्यालय, ग्रामोदय विश्व विद्यालय, तकनीकी और प्रबन्धन सम्बन्धी पाठ्क्रम इस नई शिक्षा नीति के प्रमुख उद्देश्यों में निहित हैं। इसके साथ ही उपाधियों को व्यवसाय से न जोड़कर केवल प्रवीण व्यक्तियों को ही व्यवसायिक प्रशिक्षण देना ताकि समाज की औद्योगिक इकाईयों में कुशल प्रशिक्षित हस्तशिल्पी कार्य कर सके और उपाधि प्राप्त विद्यार्थी केवल स्नातक होने के कारण ही न लिये जायें।[1]

प्रस्तुत शोध सम्पूर्ण भारत पर की जा सकती थी परन्तु समय सीमा व आर्थिक परिस्थिति को देखते हुए इसे उत्तर प्रदेश तक ही सीमित रखा गया है। अतएव आयोगों तथा नीतियों का प्रभाव केवल उत्तर प्रदेश तक ही देखा जायेगा।

5. *शोध उद्देश्य*

प्रस्तुत शोध के निम्नांकित उद्देश्य हैं :–

1. उत्तर प्रदेश में स्वतंत्रता के पश्चात गठित शिक्षा आयोगों द्वारा प्रतिपादित शिक्षा नीतियों का 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति से तुलनात्मक अध्ययन करना है।

2. विश्वविद्यालय, माध्यमिक तथा प्राथमिक स्तर की शिक्षा के उन्नयन हेतु गठित शिक्षा आयोगों की सॅस्तुतियों का विवेचन करना है।

3. उच्च, माध्यमिक व प्राथमिक स्तर की शिक्षा व्यवस्था हेतु गठित शिक्षा आयोगों समितियों व उनके द्वारा प्रस्तुत नीतियों का विवेचन एवं उनके कियान्वयन पर प्रकाश डालना।

4. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की नीति का विवेचन एवं आयोगों द्वारा प्रतिपादित नीतियों से तुलना के पश्चात शेष नीतियों पर सुझाव प्रस्तुत करना।

---

1. नयी शिक्षा नीति – 1986, पृष्ठ – 10

5. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के क्रियान्वयन अवरोधों को दूर करने के उपाय सुझाना।

उपर्युक्त उद्देश्यों से प्रेरित होकर यह शोध प्रबन्ध प्रस्तावित किया गया है। जिससे शोध की अपेक्षा पूर्ण होने में मुझे विश्वास है अभी तक जितने भी ग्रन्थ प्रकाशित हुये हैं वे या तो अपूर्ण है या वे राष्ट्रीय अपेक्षाओं को पूरा नहीं करते। इस दृष्टि से यह शोध प्रबंध अधिक संगत और समीचीन है।

6. *उत्तर प्रदेश की शैक्षिक विशेषताएं*

विन्धय एवं हिमांचल के अंचल में स्थित उवप्रव प्राचीन काल से भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का विकास स्थल रहा है मर्यादा पुरूषोत्तम राम और योगिराज की आलौकिक लीलाओं की पुण्य–भूमि भी यही प्रदेश रहा है। महावीर स्वामी का अहिंसा परमोधर्मः का सिद्धान्त यही पुष्पित और पल्लिवित हुआ है। कवि शिरोमणि बाल्मीकी व गोस्वामी तुलसीदास भी जन्मभूमि होने का श्रेय भी इसे प्राप्त है। यह भारत भू–खण्ड का विशालतम राज्य है।

उत्तर प्रदेश की आबादी प्राचीन काल से ही जन–सुकल रही है। प्रत्येक साम्राज्य का जिसने भारत भूमि पर शासन किया है। उत्तर प्रदेश प्रमुख स्थान रहा है। प्रायः सभी विदेशी आक्रमणकारी इसी की ओर उन्मुख रहे हैं। मुस्लिम आक्रमणों ने दिल्ली या आगरा को ही अपने मध्य युग में राजधानी बनाया था। क्योंकि यहीं से दक्षिण और पूर्व के मार्ग पर नियंत्रण रखा जा सकता था।

उत्तर प्रदेश का योगदान राष्ट्रीय आन्दोलनों में अत्यन्त ही महत्वपूर्ण रहा है। सीव वाईव चिन्तामणि, तेजबहादुर सप्रु, मदनमोहन मालवीय, मोतीलाल नेहरू, रफी अहमद किदवई, आचार्य नरेन्द्र देव, सम्पूर्णानन्द तथा पुरूषोत्तम दास टंडन आदि इस राज्य की महानतम विभूमियां हैं। इस राज्य को स्वतन्त्रता के बाद पांच प्रधानमंत्री देने का गौरव प्राप्त है। 18वीं शताब्दी के अन्त में 1897 में जब पूरे भारत पर ब्रिटिश साम्राज्य छा गया था, बंगाल सिविल सर्विसेज के एक अंग्रेज प्रशासक श्री कुर्क ने उस समय के उत्तर पूर्वी प्रदेश (1902 से पहले उवप्रव का नाम) के बारे में इसके महत्व को प्रतिपादित करते हुये लिखा था।[1]

---

1. विलियम कुर्क " दि नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज ऑफ इण्डिया दियर हिस्ट्री एथोलॉजी एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन" लंदन – 1897, पृष्ठ 2 से 3

ब्रिटिश साम्राज्य के किसी प्रान्त का उतना महत्व नहीं है। जितना कि उवप्रव का। यह भारत का अत्यन्त उपजाऊ व विविधता युक्त उद्यान है। जिसका अधिकांश भाग उत्कृष्ट सिंचाई के साधनों के कारण अक़ाल के खतरों से सुरक्षित है। यहाँ के निवासियों के कुछ प्रमुख व उत्कृष्ट उद्योग धंधे भी प्रचलित हैं। सड़कों, रेलों आदि यातायात के साधनों के कारण यह आन्तरिक संचार साधनों से युक्त है। अपनी सीमाओं के अर्न्तगत उसका पश्चिमी सीमांत प्रदेश हिन्दू प्रजाति की निवास स्थली रहा है। और यही इसकी धार्मिक, कानूनी व सामाजिक व्यवस्था का संगठन हुआ है। यहाँ पर ही बौद्ध धर्म ने हिन्दू धर्म की अपदस्थ किया और फिर स्वयं पुराने धर्म के समक्ष दब गया।

आज उ०प्र० की स्थिति जनसंख्या तथा इतिहास सभी के कारण एक विशेष स्थान रखती है। उवप्रव आज जो कुछ है उसकी जो उपलब्धियाँ या समस्याएं हैं वह इसके भूगोल तथा इतिहास का परिणाम है। उ०प्र० की विद्यार्जन तथा पठन–पाठन की परम्परा अत्यन्त प्राचीन व क्रमबद्ध है। बनारस, प्रयाग, कन्नौज व मथुरा शताब्दियों से संस्कृत ज्ञान के प्रख्यात केन्द्र रहे हैं। मध्य युग में देवबद्ध और जौनपुर फारसी तथा अरबी शिक्षा के प्रख्यात केन्द्र रहे हैं। उनकी जौनपुर फारसी तथा अरबी शिक्षा के प्रख्यात केन्द्र रहे हैं। उनकी प्रसिद्धि अभी तक बनी हुयी है। शासन ने 1988 में जौनपुर में एक विश्वविद्यालय स्थापित किया है। उवप्रव की प्रारम्भिक शिक्षा कभी उपेक्षित नहीं रही। पाठशाला और मकतब जनसाधारण की शिक्षा में लगे रहे। इन शिक्षा–संस्थाओं का विकास स्थानीय समुदायों के संरक्षण में 19वीं शताब्दी तक होता रहा है। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में देश के अन्य भागों की भाँति उवप्रव में भी अंग्रेजी पद्धति पर वर्तमान शिक्षा प्रणाली का समावेश हुआ है।

वास्तविकता में उवप्रव में वर्तमान शिक्षा का प्रारम्भ सन् 1818 ई० से माना जाना चाहिए। जब राजा जय नारायण घोषाल की उदारता से बनारसी में प्रथम अंग्रेजी स्कूल की स्थापना हुयी। इसके पश्चात् अन्य शिक्षा संस्था खुली।

उवप्रव पहला राज्य था, जिसने सर्वप्रथम प्राइमरी शिक्षा के सम्बन्ध में कर लगाना प्रारम्भ किया और हल्का नदी स्कूलों की स्थापना की। इन स्कूलों के खुलने से स्वदेशी स्कूल

प्रायः बिल्कुल लुप्त हो गये। इसी बीच हंटर आयोग की संस्तुतियों के अनुसार प्राइमरी शिक्षा का कार्य स्थानीय निकायों को हस्तांतरित कर दिया गया। इससे प्राइमरी शिक्षा पहले की अपेक्षा तीव्र गति से फैली। ब्रिटिश सरकार के 19व4 के संकल्प ने इस गति को अधिक तीव्रता प्रदान की। सन् 1921 में द्वैध शासन की स्थापना से शिक्षा एक हस्तांतरित विषय बन गयी। सन् 1926 में District Board Primary Education Act पारित किया गया और 25 ग्रामीण क्षेत्रों में अनिवार्य प्राइमरी शिक्षा का शुभारम्भ किया गया। सैडलर कमीशन की एक महत्वपूर्ण संस्तुति के अनुसार 1921 के अधिनियम द्वारा हाई स्कूल और इण्टरमीडिएट की शिक्षा के लिए एक परिषद की स्थापना की गयी और इसे डिग्री स्तर के नीचे की लोक परीक्षाओं के संचालन का दायित्व सौंपा गया। इस प्रकार इण्टरमीडिएट शिक्षा को विश्वविद्यालय शिक्षा से प्रथक स्कूली शिक्षा का एक अंग बना दिया गया।

प्रान्तीय स्वायत्ता के साथ सन् 1937 में प्रदेश की शिक्षा व्यवस्था ने एक नये जीवन का अनुभव किया। यह शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में नयी योजनाओं के समावेश का विशिष्ट वर्ष था। किन्तु जिन योजनाओं का सूत्रपात किया वे 1939 में कांग्रेस मंत्री मण्डल के त्याग पत्र दे देने के कारण आगे न बढ़ सकी। यह स्थिति 1947 तक बनी रही और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद ही इस ओर पुनः आवश्यक कदम उठाये गये।

प्रजातांत्रिक शासन पद्धति में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जनता के शिक्षित होने से जहाँ एक ओर प्रजातंत्र को दृढ़ आधार मिला, वहीं दूसरी ओर लोगों को शिक्षित होने से अपने दायित्व को निर्वाह करने का सामर्थ्य भी प्राप्त हुआ। इस दृष्टिकोण से शिक्षा को प्रदेश के नियोजित विकास में प्रमुख स्थान दिया गया है। भारतीय संविधान के नीति निदेशक तत्वों में 6 से 14 वर्ष के बालक – बालिकाओं को सार्वभौम, निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराना मुख्य लक्ष्य रखा गया। इस लक्ष्य की पूर्ति हेतु शिक्षा सुविधाओं का द्रुत गति से विस्तार एवं प्रसार किया गया। प्राथमिक विद्यालयों के पाठ्क्रम पाठ्यपुस्तकों, शिक्षण–प्रशिक्षण, शिक्षण–विधियों तथा शिक्षकों की सामाजिक आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ और उनके उन्नयन हेतु वेतन वृद्धि आदि सभी पक्षों पर व्यापक सुधार किये गये। प्रदेश में बेसिक शिक्षा

परिषद की स्थापना की गयी। विभिन्न समितियाँ नियुक्त की गयीं, जिनकी अनुसंशाओं पर समय–समय पर व्यापक सुधार किये गये तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 और 1986 की संस्तुतियों को लागू करते हुए व्यापक सुधार हुए।

उत्तर प्रदेश की राजभाषा हिन्दी है और हिन्दी साहित्य के भण्डार को भरने में यहाँ के अनेक विद्वानों और प्रतिभाओं का योगदान रहा है। यहाँ अनेक ऐतिहासिक इमारतें तथा स्थान है। विश्वविख्यात आगरा का ताजमहल और राष्ट्रीय कार्बेट पार्क जंगली जानवरों के संरक्षण के लिए प्रसिद्ध है। खनिज पदार्थों वस्त्र, चमड़ा तथा अन्य उद्योगों के लिए प्रदेश में कई स्थान प्रसिद्ध है।

खनिज सम्पदा, उद्योग आदि में प्रगति करने पर भी यहाँ की जनता अधिकांश गरीब हैं। रूढ़िवादिता और अंधविश्वास के कारण वह शिक्षा में प्रगति नहीं नहीं कर पायी है। शिक्षा जगत की व्यवस्था के अनुरूप एवं कार्य सम्पादन की सुविधा की दृष्टिकोण से प्रदेश को 12 मण्डलों में विभाजित कर दिया गया है। शासन ने जुलाई 1989 से एक नया मण्डल चित्रकूट स्थापित किया है। प्रदेश के हर मण्डल में शिक्षा निदेशक कार्यालय मण्डलीय बालिका विद्यालया निरीक्षिका का कार्यालय स्थापित है। बेसिक शिक्षा के क्षेत्र में एक सहायक शिक्षा निदेशक का कार्यालय 1984 से स्थापित किया जा चुका है। उच्च शिक्षा के लिए भी कुछ मण्डलों में मण्डलीय कार्यालय स्थापित किये गये हैं। जनपदीय स्तर पर शैक्षिक नियन्त्रण के लिए प्रत्येक जिले में एक–एक जिला विद्यालय निरीक्षक तथा बेसिक शिक्षा हेतु बेसिक शिक्षा अधिकारी के कार्यालयों की व्यवस्था है।

प्रदेश स्तर पर शिक्षा व्यवस्था के संचालन हेतु बेसिक, माध्यमिक, उच्च तथा प्रौढ़ शिक्षा निदेशालय स्थापित है। इसके अतिरिक्त राज्य शिक्षा संस्थान, पत्राचार शिक्षा संस्थान, मनोविज्ञान शाला तथा राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद कार्यरत है। प्रदेश की जनसंख्या वर्ष 1981 की जनगणना के अनुसार है। 1981 से 1991 के दशक में अखिल भारतीय स्तर पर इसमें प्रतिशत की वृद्धि हुयी है। इसका तुलनात्मक विवरण निम्न सारणियों से स्पष्ट है।

सारणी 1

जनसंख्या की दस वर्षीय वृद्धि (1901—1991)

मिलियल में (दस लाख में)

वर्ष	जनसंख्या	उत्तर प्रदेश जनसंख्या की प्रतिशत वृद्धि	भारत वर्ष जनसंख्या की प्रतिशत वृद्धि
1901	48.63	—	238.40 —
1911	48.15	— 0.97	252.09 +5.75
1921	46.67	—3.08	251.32 —0.31
1931	49.78	+6.66	278.98 +11.00
1941	56.54	13.57	318.66 +14.22
1951	63.22	11.82	361.09 +13.31
1961	73.75	16.66	439.23 +21.51
1971	88.34	19.78	548.16 +24.80
1981	110.89	25.52	668.14 +25.5
1991			

स्रोतः

1. उत्तर प्रदेश की आर्थिक समीक्षा, उवप्रव राज्य की नियोजन संस्थान।
2. उत्तर प्रदेश वार्षिक 1986—87, लखनऊ, सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, 1988—89

सारणी 2

घनत्व प्रतिवर्ग किलोमीटर

वर्ष	उत्तर प्रदेश(घनत्व)	भारत(घनत्व)
1921	159	82
1931	169	90
1941	192	103
1951	215	117
1961	251	134
1971	300	178
1891	377	216
1991		

स्रोतः

1. "उत्तर प्रदेश" 1985–86 लखनऊ, सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, 1987–88

सारणी 3

उत्तर प्रदेश में साक्षरता का प्रतिशत

वर्ष	प्रतिशत
1951	10.8
1961	17.5
1971	21.4
1981	21.6
1986	21.6
1991	27.2

स्रोतः

पंचम अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण 1987–88 (संक्षिप्त आख्या) उवप्रव शिक्षा–विभाग।

प्राप्त आकड़ों के अनुसार विश्व का हर छठा व्यक्ति भारतीय है। और भारत में हर

छठा व्यक्ति उत्तर प्रदेश का है। शैक्षिक नियोजन एवं प्रशासन की दृष्टि से उत्तर प्रदेश की जनसंख्या का घनत्व अपनी विशेषता रखता है। जनसंख्या के बाहुल्य एवं साधनों के बीच सतत् सामंजस्य की आवश्यकता परिलक्षित होती है। 1991 की जनगणना के अनुसार प्रदेश की कुल जनसंख्या का 58.4% प्रतिशत भाग अशिक्षित था। यहां सिर्फ 25.31% महिलायें ही शिक्षित हैं। शिक्षा एक विशाल उपक्रम है। यह प्रदेश प्रगैतिहासिक काल से साहित्य एवं संस्कृति का प्रेरणा स्रोत रहते हुये तथा अपने आर्थिक संकट का बोझा ढ़ोते हुये भारत की सभ्यता का विकास करता आ रहा है।

उत्तर प्रदेश में साधनों की कमी के कारण शिक्षा की स्थिति दयनीय होती जा रही है। यद्यपि स्कूलों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि है, लेकिन जिस गति के साथ स्कूलों की संख्या बढ़ायी गयी है, उस गति से सरकार स्कूलों की सुविधाएं नहीं उपलब्ध करा पा रही है।

7. शोध विधि

ऐतिहासिक शोध विधि

ज्ञान के किसी क्षेत्र में किये गये शोधात्मक अनुसंधानों में अनुसंधान के विविध सुव्यवस्थित सोपानों का अनुसरण किया जाता है। किन्तु प्रयोजनों व उपागमनों के आधार पर अनुसंधानात्मक अध्ययनों में स्पष्ट व विस्तृत विभेद किया जा सकता है।

प्रस्तुत शोध में अनुसंधान की ऐतिहासिक विधि का प्रयोग किया जाएगा। इतिहास के किसी भी ज्ञान के क्षेत्र में अतीत की घटनाओं का वर्णन होता है, जो सम्पूर्ण सत्य के लिए विषय के अध्ययन का ऐतिहासिक उपागमन उसी विषय के अतीत का वर्णन करने के प्रयास की ओर संकेत करता है, जिसके प्रकाश में वर्तमान समस्याओं के निराकरण के लिए समाधान प्रस्तुत किये जाते हैं। कौल ने इसे शोध की वह विधि बतलाया है जिसमें भूतकालीन तथ्यों का अन्वेषण एवं वर्णन किया जाता है।

यह शोध की वह विधि है जिसमें ऐतिहासिक महत्व के तथ्यों तथा प्रदत्तों को ढूंढ कर एकत्र किया जाता है। और वर्गीकरण करके उनकी व्याख्या तथा आलोचना की जाती है। अन्ततः उसके आधार पर कुछ मान्य निष्कर्ष निकाले जाते हैं। इस प्रकार इसमें अतीत की घटनाओं का किसी विशिष्ट दृष्टिकोण से अध्ययन किया जाता है और संग्रहित सामग्री की विश्लेषणात्मक व्याख्या की जाती है। शिक्षा परिभाषा कोष[1] में ऐतिहासिक अनुसंधान की अग्रांकित परिभाषा प्रस्तुत की गयी है–

---

1. "शिक्षा परिभाषा कोष"– नई दिल्ली, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, भारत सरकार, शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्रालय–1977, पृष्ठ 59

"ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण तथ्यों का अन्वेषण करने, उनका अभिकरण रखने तथा उनकी व्याख्या करने की वह प्रक्रिया, जिसमें सम्बन्धित आधार सामग्री को एकत्रित करने उसे समग्र रूप में रखने और आलोचनात्मक विन्यास करने के उपरान्त उसकी व्याख्या की जाती है, ऐतिहासिक शोध विधि कहलाती है।"

करलिंगर के अनुसार [1]–

"ऐतिहासिक शोध अतीत की घटनाओं, विकास क्रमों तथा अनुभवों का वह सूक्ष्मात्मक अन्वेषण होता है, जिसमें अतीत से सम्बन्धित सूचनाओं के सम्बन्धों तथा प्राप्त संतुलित विवेचना की वैधता का सावधानी पूर्ण परीक्षण सम्मिलित रहता है"

ऐतिहासिक शोध के उद्‌देश्यः

ऐतिहासिक शोध का उद्‌देश्य अतीत की घटनाओं का विवरण प्रस्तुत करना नहीं है, बल्कि उन विचारधाराओं के क्रमिक विकास का विश्लेषण करना है, जो इतिहास के विभिन्न कालों में उदित तथा विकसित हुए हैं। ऐतिहासिक अनुसंधान कर्ता अतीत की पृष्ठभूमि में विचार धाराओं की व्याख्या करता है तथा वर्तमान समय की आवश्यकताओं के संदर्भ में उनका मूल्यांकन करता है। इस प्रकार सरकारी तथा गैर सरकारी क्षेत्र में नीति निर्धारण के मार्ग–दर्शन में वह ऐतिहासिक अनुसंधान के तथ्यों से विशेष सहायता व सुविधा प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक अनुसंधान द्वारा प्राप्त विभिन्न तथ्य नीति निर्धारकों को अतीत की त्रुटियों के प्रति सतर्क रखते हैं तथा भविष्य के लिए भी कुशल प्रशासक सदैव अतीत के अभिलेखों व पूर्ण अनुभवों के आधार पर ही नीति निर्धारण, सामाजिक परिवर्तन व शैक्षिक नियोजन के कार्यक्रमों के सम्पन्न करने की सोचता है तथा उसमें वर्तमान की समस्याओं का समाधान ढूढ़ता है।

ऐतिहासिक विधि के सोपान

ऐतिहासिक विधि के प्रमुख पाँच सोपान होते हैं–

1. प्रदत्तों का प्राथमिक और गौण स्रोतों से संकलन।
2. संकलित प्रदत्तों की वाह्य एवं आन्तरिक आलोचना।
3. प्रदत्तों की विश्लेषण, वर्गीकरण तथा सारणीयन।
4. प्रदत्तों की व्याख्या एवं विवेचन।
5. समस्याओं तथा निष्कर्षों का पठनीय रूप से प्रस्तुतिकरण।

1. F.N. Karlinger, "Foundation of Behaviourical Research" Newyork, Halt, Rinehart & Vistion 1964, Page 698

8. प्रदत्त संग्रह

प्रस्तुत शोध में अध्ययन करने हेतु ऐतिहासिक तथ्यों तथा प्रदत्तों का संग्रह प्रायः निम्न स्रोतों से किया जाएगा।

प्राथमिक स्रोत

प्राथमिक स्रोत वे स्रोत होते हैं जो हमें सीधी व स्पष्ट जानकारी देते हैं इनका सम्बन्ध मूल व मौलिक साधनों से होता है जिनके अन्तर्गत किसी एक विशिष्ट ऐतिहासिक घटना से सम्बन्धित ठोस प्रमाण प्रारम्भिक व प्रत्यक्ष सामग्री के रूप में सम्मिलित रहते हैं इस तथ्य का स्पष्ट विवेचन करते हुये करलिंगर[1] ने लिखा है कि प्राथमिक स्रोत एक ऐतिहासिक प्रदत्त का मूल भण्डार होता है। यह किसी एक महत्वपूर्ण अवसर का मौलिक अभिलेख होता है या एक प्रत्यक्षदर्शी द्वारा एक घटना का विवरण होता है या फिर एक छाया चिन्ह अथवा किसी संगठन की बैठक का विस्तृत विवरण आदि होता है''

गोल्फो[2] ने भी उपर्युक्त तथ्य को स्वीकार करते हुये स्पष्ट किया कि ''प्राथमिक स्रोत किसी घटना से सम्बन्धित प्रथम साक्षी व सामग्री होते हैं'' यह दो प्रकार के होते हैं–

1. ज्ञात रूप से संचरित सूचनाएं।
2. अवशेषों के रूप में अज्ञात प्रमाण।

प्रस्तुत शोध मे प्राथमिक स्रोत के रूप में उत्तर प्रदेश सरकार, केन्द्र सरकार, शिक्षा विभाग तथा शिक्षा मन्त्रालय द्वारा प्रकाशित अग्रांकित साहित्य का प्रयोग किया गया है :–

उत्तर प्रदेश शासन द्वारा

प्रस्तुत शोध में उत्तर प्रदेश शासन द्वारा प्रकाशित निम्न सामग्री प्राथमिक स्रोत के रूप में प्रयुक्त की गयी है :–

जनरल रिर्पोट आन पब्लिक इन्सट्रक्शन्स, एनुअल रिर्पोट आन दी प्रोग्रेस आफ एजुकेशन, रिपोर्ट आन दी प्राइमरी एण्ड सेकेन्डरी एजुकेशन रिआर्गनाइजेशन कमेटी (1939), रिआर्गनाइजेशन आफ एजुकेशन इन दि यूनाइटेड प्राविन्स प्राइमरी एण्ड सेकेण्डरी (1947), रिर्पोट आफ दि इण्टरमीडिएट एजुकेशन कमेटी (1927), रिर्पोट आफ दि सेकेण्डरी एजुकेशन

1. F. N. Karlinger - पूर्वोक्ति Page 699
2. Armand J. Galfo - "Interprating Educational Research" Lowa Compeny Publisher, 1978 Thrid Edition - Page 14

कमेटी (1961), रिर्पोट आफ दि सेकेण्डरी एजुकेशन रिआर्गनाइजेशन कमेटी (1953), शिक्षा की प्रगति, यूवपीव एजुकेशन एक्ट 1921, 1973, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग उत्तर प्रदेश द्वारा प्रकाशित – उत्तर प्रदेश वार्षिकी 1999 तक के अंक।

भारत सरकार द्वारा

प्रस्तुत शोध में भारत सरकार द्वारा प्रकाशित निम्न सामग्री प्राथमिक स्रोत के रूप में प्रयुक्त की गयी है–

इण्डियन ईयर बुक आफ एजुकेशन, (सेकेण्डरी एजुकेशन) एजुकेशन इन इण्डिया, एजुकेशन स्टेटिस्टिक्स, एजुकेशन कमीशन (1964–66), राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968, शिक्षा की चुनौती 1985, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986, आर्चाय राममूर्ति कमेटी रिपोर्ट 199व, भारतीय संविधान आदि के प्रतिवेदन उपयोग में लाये जायेंगे।

गौण स्रोत

यदि किसी घटना के प्रत्यक्ष प्रमाण के स्थान पर एक व्यक्ति द्वारा उस घटना का किया गया वर्णन हमें प्राप्त होता है तो वह गौण स्रौत कहलाएगा। ये किसी ऐतिहासिक घटना अथवा स्थिति से अपनी मूल स्रोतों से एक या अधिक चरण हटे हुये होते हैं। इनमें मौलिक प्रमाण का वस्तुतः अभाव रहता है, क्योंकि ये किसी व्यक्ति द्वारा लिखित सूचनाएं होती हैं। और यह स्वाभाविक है कि प्रत्यक्ष घटना और हमारे बीच जितनी अधिक दूरी होगी वास्तविक तथ्यों के परिवर्तन में उतनी ही अधिक संभावना होगी।

करलिंगर के शब्दों में "एक गौण स्रौत एक वास्तविक इतिहास से एक या अधिक पद दूर ले जाने वाला ऐतिहासिक घटना या परिस्थिति का एक लेखा–जोखा या अभिलेख है"

विश्वकोश, ऐतिहासिक पुस्तकें तथा अन्य ग्रन्थ गौण स्रौत के उदारण हैं। प्रस्तुत शोध में गौण स्रोत के रूप में भार्गव, मिश्रा, चौबे, प्रकाश, गीता देवी आदि के शोध ग्रन्थों का अध्ययन किया गया है।

गोण स्रौत के रूप में भारत सरकार तथा उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रकाशित शिक्षा पत्रिकायें, शैक्षिक अनुसंधान पर प्रकाशित पुस्तके, मोनो ग्राफ्स तथा जनरल्स उपयोग में लाये जायेंगे।

9. वाह्य एवं अन्तः साक्ष्य आलोचना

ऐतिहासिक अनुसंधान की प्रकृति के कारण ऐतिहासिक अनुसंधान कर्ता को अपने अध्ययन हेतु प्रदत्तों के संकलन करने हेतु दूसरों के ज्ञात और अज्ञात प्रमाणों पर निर्भर रहना पड़ता है। अतएव इसके लिए आवश्यक होता है कि वह सावधानी पूर्वक उनका विश्लेषण करके उनकी वैधता व विश्वसनीयता ज्ञात करके और निरर्थर अथवा भ्रान्तिपूर्ण तथ्यों का सार्थक तत्वों से विभेद कर लें। इस प्रकार ऐतिहासिक प्रमाणों को प्राप्त करने के लिए जो मूल्यांकन की प्रक्रिया अपनायी जाती है। उसे ऐतिहासिक आलोचना कहते हैं।

वाह्य आलोचना

इसमें स्रोत के ग्रन्थ या आलेख के असली, वास्तविक और मौलिक होने की जाँच इस रूप में की जाती है कि वह कहीं कूट रचना, जाली दस्तावेज, कृतिम या नकली ग्रन्थ तो नहीं है। इसमें प्रलेखों के लेखक और काल की सत्यता स्थापित करने हेतु भाषा, हस्तलेखन, अक्षर विन्यास आदि का गहन परीक्षण तथा प्रकाशक की विश्वसनीयता आदि प्रमाणित की जाती है।

प्रस्तुत शोध में भारत सरकार द्वारा प्रकाशित शिक्षा नीतियों तथा आयोगों के प्रतिवेदन ही प्रमाणिक स्वीकार किये जायेगे।

अन्तः साक्ष्य आलोचना

स्रोत की वासतिवकता निश्चित कर लेने के पश्चात! हम उसके विषय–सामग्री की समालोचना कर यह पता लगाने का प्रयत्न करते हैं कि वह कितनी सही है ? कभी–कभी स्रोत वास्तविक होते हुये भी उसकी लिखित सामग्री में कई अशुद्धियाँ हो सकती हैं। स्रोत की विषय वस्तु के विश्लेषण द्वारा हम उसकी यथार्थता के ज्ञात करने के प्रक्रम को आन्तरिक आलोचना कहते हैं।

एक लेखक पर्याप्त सक्षम, ईमानदार व पक्षपात हीन हो सकता है। किन्तु सम्भव है उसके लेखन का उद्देश्य किसी तथ्य को खंडित या मंडित करना रहा हो। यह भी हो सकता है कि घटना के काफी समय बाद उसने उसका वर्णन किया हो। जिससे उसमें बहुत से तथ्यों का समावेश न हो सका हो। आलेख में विरोधी या असंगत कथन हो। शाब्दिक अर्थ वही न हो, जो इसका वास्वतिक अर्थ है। इन सब प्रकार की त्रुटियों पर विचार कर पुष्ट

सामग्री को ग्रहण करना होता है।

जिन सरकारी रिपोर्ट का उस शोध में प्रयोग किया गया है, उसमे ऐसी असंगतियाँ बहुत कम है। कुछ अंश ठीक से मुद्रित नहीं हुये हैं, तो उनका समाधान दूसरे भाग के अंकों या दूसरे वर्ष के शोध में। इस प्रकार जिन ग्रन्थों, प्रतिवेदनों तथा रिपोर्ट से इस शोध में सामग्री ली गयी है। वह प्राथमिक तथा मौलिक है गौण स्रोतों का प्रयोग करते समय यह देखा लिया गया है कि उसमें वर्जित तथ्यों, सूचनाओं तथा आँकड़ों आदि में विरोधाभास नहीं है।

10. *शोध प्रबन्ध की योजनाः*

भारतवर्ष की शिक्षा पद्यति में आदर्श और यथार्थ का विचित्र समन्वय है। परम्परागत शिक्षा में नैतिकता व मानवीय मूल्य समाज की सरंचना में प्रमुख थे। साथ ही व्यवसायिक और वैज्ञानिक प्रयोग व्यवहार की दृष्टि से होते रहे। किन्तु शिक्षा के प्रचार प्रसार में उनका योगदान अपेक्षाकृत कम था। समाज की परिवर्तित अवस्थाओं में पृथक–पृथक शासनकाल में विभिन्न नीतियॉ बनती रहीं जो शासन को समृद्ध करती थीं।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से शिक्षा में परिवर्तन अभूतपूर्व ढंग से होते रहे और स्वतंत्रता के उपरान्त शिक्षा का दृष्टिकोण विभिन्न समाजों में हुआ। इसी दृष्टि से शोध प्रबंध की पृष्ठभूमि में एतिहासिक शिक्षा पद्यति को स्वीकारते हुए वर्तमान शिक्षा नीति के विषय में चिन्तन करना अभीष्ट था। स्वतंत्रता के उपरान्त उत्तर प्रदेश में शिक्षा के स्वरूप पर भारत सरकार द्वारा गठित आयोगों और उनसे प्रतिपादित नीतियों एवं उनके कियान्वयन से जो प्रभाव पड़ा है उसको दृष्टिगत करते हुए यह शोध प्रबंध प्रस्तुत किया जा रहा है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की अधिकारिक नीति है, जिसकी विभिन्न आयोगों द्वारा प्रतिपादित नीतियों से तुलना की गयी है।

प्रस्तुत शोध अध्ययन में 6 अध्याय हैं।

प्रथम अध्याय के अन्तर्गत समस्या तथा उसकी शोध विधि पर प्रकाश डाला गया है।

द्वितीय अध्याय में समस्या से सम्बन्धित साहित्य का गहनतम अध्ययन करते हुये समस्या से सम्बन्धित देश, विदेश तथा प्रदेश में सम्पन्न शोधों की जानकारी प्राप्त की गयी तथा प्राप्त सामग्री का सूक्ष्म विवेचन तथा प्रस्तुत शोध से तुलना की गयी है।

तीसरे अध्याय में भारतीय शासन की स्वतन्त्रता के पूर्व तथा स्वतन्त्रता के बाद घोषित शिक्षा नीतियों पर भारतीय शिक्षा पर विहंगम दृष्टिकोण डालते हुये उनका दर्णन किया गया, तथा 1990 में आचार्य राममूर्ति समिति द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट की समीक्षा करने का प्रयास किया गया।

चतुर्थ अध्याय में शिक्षा नीति निर्माण करने के आधार स्तम्भ भारतीय शिक्षा आयोगों पर विहंगम दृष्टि डालते हुये शिक्षा नीति निर्माण की आवश्यकता पर प्रकाश डाला गया है।

पांचवे अध्याय में 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं स्वतंत्रता पश्चात गठित आयोगों की संस्तुतियों/नीतियों को शिक्षा के विभिन्न स्तर (उच्च, माध्यमिक, प्राथमिक) पर तुलनात्मक अध्ययन करते हुए उत्तर प्रदेश में गठित शिक्षा अधिनियमों पर प्रकाश डाला गया है।

छठे अध्याय में विभिन्न आयोगों तथा नीतियों के क्रियान्वयन से उत्पन्न समस्याओं तथा उनके समाधान के लिए सुझाव प्रस्तुत किये गये तथा प्रस्तुत शोध का शिक्षा जगत में योगदान क्या होगा इस पर प्रकाश डाला गया है, साथ ही समस्या से सम्बन्धित भावी शोध कार्य हेतु सुझाव प्रस्तुत किये गये हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के परिशिष्ट में संदर्भ ग्रन्थ सूची सलंग्न किया गया है।

द्वितीय अध्याय

समस्या से सम्बद्ध साहित्य

सम्बन्धित साहित्य का अर्थ

शोध विषय से सम्बन्धि साहित्य जिसमें विषय के किसी पक्ष अथवा सम्पूर्ण विषय पर विचार व्यक्त किये गये हों, सम्बद्ध साहित्य कहलाता है।

समस्या से सम्बन्धित सम्पूर्ण साहित्य का पुनरावलोकन अनुसंधान का प्राथमिक आधार है। तथा अनुसंधान के गुणात्मक स्तर के निर्धारण में एक महत्वपूर्ण कारक है। सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षण के बिना अनुसंधान कार्य करना श्रम और समय को नष्ट करना है।

सम्बन्धित साहित्य द्वारा अनुसंधानकर्ता को अपनी समस्या से सम्बन्धित किये गये पूर्व कार्यों पर विस्तृत सर्वेक्षण करने का अवसर मिलता है। जिससे उसे सम्बन्धित क्षेत्र में नयी विज्ञप्ति उत्पन्न करने, निष्कर्षों की वैधता प्रदान करनेए अनावश्यक पुनरावृत्ति का परिहार करने तथा तुलनात्मक आंकड़े उपलब्ध कराने में सहायता मिलती है। समस्या को परिभाषित तथा परिसीमित करने में मदद मिलती है। प्रदत्तों का विश्लेषण तथा व्याख्या करके निष्कर्षों तक पहुंचा जा सकता है। इन निष्कर्षों से सम्बन्धित अनुसंधानों के निष्कर्षों से तुलना की जा सकती है, जिससे उनकी प्रमाणिकता में वृद्धि हो जाती है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि सम्बन्धित साहित्य के आधार पर ही उस क्षेत्र में भविष्य में किये जाने वाले कार्य की नींव डाली जा सकती है।

सम्बन्धित साहित्य से तात्पर्य अनुसंधान की समस्य से सम्बन्धित उन सभी प्रकार के ग्रन्थों, ज्ञानकोषों, प्रकाशित तथा अप्रकाशित शोध प्रबन्धों, शोध प्रपत्रों तथा पत्र पत्रिकाओं आदि से है। जिसके अध्ययन से अनुसंधानकर्ता को अपनी समस्या के चयन, शोध उद्देश्य, अनुसंधान कार्य की रूपरेखा तैयार करने एवं कार्य को आगे बढ़ाने में सहायता मिलती है।

ब्रूस. डब्ल्यू. टैकमैन[1] ने पुनरीक्षण के निम्नलिखित उद्देश्य बतलाते हैं–

1. महत्वपूर्ण दरों को खोजना।
2. जो जो चुका है, उससे जो करने की आवश्यकता है उसे पृथक करना।
3. शोध कार्य का स्वरूप बनाने के लिए प्राप्त अध्ययनों का संकलन करना।
4. समस्या का अर्थ इसकी उपयुक्तता, समस्या से इसका सम्बन्ध और प्राप्त अध्ययनों में इसके अन्तर निर्धारित करना।

---

1. ब्रुश. डब्ल्यू. टैकमैन, " कन्डक्टिंग एजूकेशनल रिसर्च" न्यूयार्क हरकोर्ट ब्रेस जोने वोविच, 1972

सम्बन्धित साहित्य सर्वेक्षण का कार्यक्षेत्र

सम्बन्धित साहित्य सर्वेक्षण के निम्नलिखित महत्वपूर्ण कार्यक्षेत्र हैं—

1. सम्बन्धित साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस समस्या के किन पक्षों पर पहले ही अनुसन्धान कार्य किया जा चुका है तथा अनुसन्धान के लिए चयन किये गये क्षेत्र में कितना और किस–किस प्रकार का कार्य हो चुका है।
2. समस्या के परिसीमन, संकल्पनाओं के स्पष्टीकरण में सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन सहायक होता है।
3. शोध कार्य के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण आवश्यक होता है।
4. शोध सामग्री एकत्र करने के उपयुक्त साधनों, उपकरणों, विधियों एवं परीक्षाओं को खोलने में भी सहायता करता है।
5. शोध सामग्री का विश्लेषण एवं उसकी व्याख्या करने की अनेक विधियाँ हैं। समस्या से सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन करने से यह जानकारी होती है कि किन–किन विधियों का प्रयोग पहले शोधकर्ताओं ने किया है। शोध की सामग्री का विश्लेषण करने के लिए किस विधि का प्रयोग करना उचित होगा।
6. किये गये अनुसन्धानों की सफलता तथा उसकी उपयोगिता के सम्बन्ध में पूर्वानुमान होता है।
7. प्राप्त निष्कर्षों के विश्लेषण के लिए सूझ पैदा करता है। और समर्थन के लिए आधार प्रस्तुत कर अनुसन्धान कर्ता में आत्म विश्वास विकसित करता है।
8. साहित्य के सर्वेक्षण से ही यह ज्ञात होता है कि कौन से पक्ष ऐसे हैं जो शोध कार्य हेतु अभी तक अछूते रह गये हैं।

सम्बद्ध साहित्य के अध्ययन की उपादेयता

अध्ययन कार्य में सम्बद्ध साहित्य के सर्वेक्षण की निम्न उपादेयता है—

1. ज्ञान के क्षेत्र में विस्तार के लिए आवश्यक है कि अनुसन्धान को यह ज्ञात हो कि ज्ञान की वर्तमान सीमा कहाँ पर है? वर्तमान ज्ञान ी जानकारी सम्बन्धित साहित्य के गहन अध्ययन से हो सकती है।
2. सम्बन्ध साहित्य अब तक उस क्षेत्र में हो चुके कार्य की सूचना देता है।

3. सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण न करने से यह सम्भावना रहती है कि जो अनुसन्धान कार्य पहले अन्य अनुसन्धान कर्ताओं द्वारा किया जा चुका है। वह पुनः किया जा सकता है। अनेक बार एक ही क्षेत्र में कई अनुसन्धान कार्य होते हैं जो समय, श्रम और धन के अपव्यय मात्र हैं सम्बद्ध साहित्य के अध्ययन से अनावश्यक पुनरावृत्ति की भूल से बचत होती है।
4. सम्बन्ध साहित्य समस्या के चयन, विश्लेषण एवं कथन में सहायक होता है।
5. समस्या के चयन में सम्बद्ध साहित्य सूझ पैदा करता है।
6. अनुसन्धान कर्ता के समय की बचत करता है।
7. सम्बन्धित साहित्य समस्या के सीमांकन में सहायक होता है।
8. अध्ययन के क्षेत्र को सीमित करने एवं उसमें लगने वाले श्रम की बचत करत है।
8. पूर्व के अनुसन्धान कर्ताओं ने जिस विधि का उपयोग किया है और जो परिणाम प्राप्त किये हैं उनकी परस्पर तुलना कर नयी विधि के उपयोग की सूझ उत्पन्न होती है।
10. कुछ ऐसे अनुसन्धान कार्य जो पूर्व में किये गये हैं, में प्राप्त निष्कर्षों से प्रस्तावित शोध में प्राप्त निष्कर्ष का संत्यापन हो सकता है।
11. अनुसन्धान कर्ता के आत्म विश्वास को बढ़ाता है।
12. पूर्व में किये गये अनुसन्धानों के अध्ययन से अन्य सम्बन्धित नवीन समस्याओं का पता लगता है और अनुसन्धान कंर्ता अपने अनुसन्धान के प्रतिवेदन के अन्त में सुझाव के रूप में नवीन समस्याओं को प्रस्तुत कर सकता है।

उपरोक्त क्रम में **अरी डोनेल्ड तथा अन्य**[1] ने सम्बन्धित साहित्य की निम्न उपादेयता बतलायी है।

1. सम्बन्धित शोध कार्य का ज्ञान अन्वेषकों को अपने क्षेत्र की सीमाओं को परिभाषित करने में समर्थ बनाता है।
2. सम्बन्धित क्षेत्र में सिद्धान्त का ज्ञान शोधकर्ता को अपने प्रश्नों के परिप्रेक्ष्य में समर्थ बनाता है।
3. सम्बन्धित शोध में अध्ययन द्वारा शोधकर्ता को यह सीखने का अवसर प्राप्त होता है कि कौन सा उपकरण तथा कार्य–विधि लाभदायक सिद्ध हुये हैं और कम से कम आशाजनक।

---
1. डोनेल्ड अरी तथा अन्य " इन्ट्रोडंक्शन टू रिसर्च इन एजूकेशन" न्यूयार्क।

4. सम्बन्धित शोध द्वारा पूर्ण खोज विगत अध्ययनों के अजान पुनरावृति से वंचित रखता है।
5. सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन शोधकर्ता को एक अच्छी स्थिति में रख देता है। जिससे यह स्वयं के परिणामों के महत्व को समझ सकें।

सम्बन्ध साहित्य के अध्ययन के उद्दश्यों तथा उपयोगिता को ध्यान में रखते हुये इस अध्ययन में प्रस्तुत समस्या से सम्बन्धित ऐसे साहित्य का विशद विवेचन किया है, जो विभिन्न विश्वविद्यालयों, संस्थाओं, व्यक्तियों तथा शिक्षाविदों द्वारा अनुसंधान करके प्राप्त किया गया है।

सम्बन्धित साहित्य की उपादेयता को पाश्चात्य मनीषियों ने निम्नांकित प्रकार से व्यक्त किया है–

"किसी भी क्षेत्र का साहित्य उस आधार शिला के समन है जिस पर सम्पूर्ण भावी कार्य आधारित होता है। यदि सम्बन्ति साहित्य के सर्वेक्षण द्वारा इस नींव को दृढ़ नहीं कर लेते तो हमारे कार्य को प्रभाव हीन एवं महत्वहीन होने की सम्भावना है अथवा यह पुनरावृत्ति भी हो सकती है।"

जार्ज० डब्ल्यू० आर०

" मुद्रित साहित्य के अपार भण्डार की कुंजी अर्थ पूर्ण समस्या और विश्लेषणी परिकल्पना के स्रोत का द्वार खोल देती है तथा समस्या के परिभाषीकरण अध्ययन के विधि के चुनाव तथा प्राप्त सामग्री के तुलनात्मक विश्लेषण में सहायता करती है। वास्तव में रचनात्मक मौलिकता तथा चिन्तन के विकास हेतु विस्तृत एवं गम्भीर अध्ययन आवश्यक है।"

चार्टर बी० बुड०

प्रस्तुत शोध कार्य से सम्बन्धित शोध प्रक्रियाएं/अध्ययन

प्रस्तुत शोध समस्या से सम्बन्धित किये गये शोध कार्यों की जानकारी के लिए श्री एम0 बी0 बुच द्वारा सम्पादित. एजूकेशनल सर्वे भाग 1 से लेकर भाग 5 तक का अध्ययन शोधकर्ता द्वारा किया गया है। जिससे स्पष्ट हुआ था कि भारत वर्ष के अन्य शिक्षा मनीषियों के चाहे वे सक्रिय राजनीति में संलग्न रहे हों या उससे अलग होकर शिक्षा सम्बन्धी कार्य किया हो अपितु स्वतन्त्रता के पश्चात् शिक्षा समय–समय पर शिक्षा आयोगों का गठन एवं उनकी संस्तुतियों से वर्तमान परिप्रेक्ष्य में लागू किये जाने के प्रयास किये जाते रहे है। समय

परिवर्तन के साथ सरकारें परिवर्तित होती रहीं और शिक्षा नीतियों को समय की मांग के अनुसार निर्धारित किया गया, इसी क्रम में नयी शिक्षा नीति 1886 की घोषणा की गयी।

प्रस्तुत शोध कार्य में शोध कर्ता का ये प्रयास रहा है कि अखिल भारतीय स्तर पर शिक्षा आयोगों एवं समितियों व उनको प्रतिपादित नीतियों के परिप्रेक्ष्य में जो शोध कार्य पूर्व में किये गये हैं। उनका संक्षिप्त विवरण यहाँ पर प्रस्तुत किया जा रहा है। यहाँ पर उत्तर प्रदेश के विशेष संदर्भ में शिक्षा के विभिन्न स्तरों प्राथमिक, माध्यमिक एवं विश्वविद्यालयी शिक्षा के उन्नयन हेतु जो–जो शोध कार्य पूर्व में हुए हैं जिससे प्रस्तुत शोध कार्य के अध्ययन की सीमा का आंकलन किया जा सके।

एजूकेशनल सर्वे भाग 1 से 5 तक के अवलोकन से शोधकर्ता को ये स्पष्ट हुआ कि प्रस्तुत शोध समस्या पर विदेशों में कोई कार्य नहीं हुआ है।

यहाँ पर प्रस्तुत शोध से सम्बन्धित पूर्व में हुए अध्ययनों को निम्न संदर्भों में देखा जाएगा–

भारत में

कमलम्मा जी ने केरल प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा के इतिहास और समस्याओं पर अध्ययन सन् 1868 में प्रस्तुत किया।

इस अध्ययन का मूल उद्देश्य केरल प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा की प्रमुख समस्याओं का अध्ययन करना है।

इस शोध कार्य का स्रोत के आंकड़ें इतिहास के परिप्रेक्ष्य में सरकारी प्रतिवेदन, प्रदेशीय मैनुअल, गजट और मालवलम के साहित्य से प्राप्त है। मालावार के कुछ लोकगीतों का भी इसमें विश्लेषण किया गया है। समस्या के अध्ययन में तालिका जो माध्यम बना करके प्रयोग किया गया है जिसे प्रदेश के 40 स्कूलों में निम्न प्राथमिक विद्यालयों को प्रतिदर्श के रूप में लिया गया है। इन आंकड़ों को साक्षत्कार, निरीक्षण और अन्य विधियों से परिपूर्ण किया गया है। यह अध्ययन प्राथमिक शिक्षा की कक्षा 1 से 4 तक के विद्यार्थियों तक सीमित है। इस शोध अध्ययन से यह ज्ञान हुआ है कि–

1. 6 से 11 वर्ष के वय वर्ग में केरल राज्य के विद्यार्थी 100 प्रतिशत रूप से विद्यालय में प्रवेश लेते हैं। जो 1875 तक लक्ष्य पूर्ति के लिए सर्वथा उपर्युक्त है जबकि 14 वर्ष की अवस्था तक के सभी विद्यार्थियों के लिए शिक्षा निःशुल्क और अनिवार्य होना चाहिए।

2. केरल राज्य के शिक्षा नियमों के अर्न्तगत, राजकीय अध्ययन के लिए निर्वाचित राजकीय विद्यालयों में उपर्युक्त चाहर दीवारी सीमाएं नहीं थी।

3. खेल के मैदान, स्वच्छता व्यवस्था, पीने के पानी आदि की सुविधाएं भी असन्तोष जनक थी।

4. लगभग सभी स्कूलों में विशेष अध्यापकों की आपूर्ति भी असन्तोष जनक थी।

5. बहुत कम अध्यापकों को सेवा काल में रहते हुए पुर्नबोध प्रशिक्षण प्राप्त नहीं था।

6. व्यवहारिक कठिनाइयों के होते हुए भी प्रदेश के स्कूलों में दोपहर के भोजन कार्यक्रम में विद्यार्थियों की संख्या आश्चर्य जनक रूप से अधिक थी।

7. यद्यपि प्राथमिक शिक्षा में व्यय सहायता के बढ़ते होने पर भी प्रधान अध्यापक व्यय संसाधनों को कम करने की दृष्टि से दो पाली में विद्यालय चलाने का विरोध करते हैं।

8. अधिकांश प्रधानाध्यापक प्राथमिक कक्षाओं में चलाये जा रहे पाठ्यक्रम को नहीं चाहते हैं।

9. विद्यार्थियों की बढ़ती हुयी संख्या और व्यवस्थित संसाधनों की कमी के कारण वर्तमान पाठ्यक्रम के चलाना अत्यधिक कठिन प्रतीत होता है।

10. सहायक शिक्षा अधिकारी द्वारा प्रधानाध्यापक द्वारा प्रायः किये गये निरीक्षण को बहुत अधिक महत्व दिया गया है।

11. सरकार एक ही कक्षा में विद्यार्थियों के बने रहने की समस्या को सुलझाने मे सफल रही है।

12. विद्यार्थियों की यह स्थिरता अपेक्षाकृत कक्षा 1 व 2 में अधिक है। जिसका मूल कारण कम उम्र में विद्यार्थियों को कक्षा 1 में प्रवेश देना पाया गया है।

13. प्रधानाध्यापक प्रायः विद्यालय प्रशासन में भागीदारी नहीं करना चाहते हैं इन समस्याओं का निराकरण करने के लिए नये संशोधन खोजने होंगे। अध्यापक और विद्यार्थी का अनुपात घटाया जाना चाहिए तथा अधिक महिला अध्यापकों की नियुक्ति की जानी चाहिए।

14. अध्यापकों के पुर्नबोध प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। प्रधानाध्यापकों के अधिकार क्षेत्र से दोपहर के भोजन का कार्य क्रम स्थानान्तरित किया जाना चाहिए।

विद्यालय के भवनों निर्माण अथवा अस्थायी भवनों पर नये छप्पर डालने का कार्य स्थानीय संस्थाओं की सहायता से किया जाना चाहिए। सहायक शिक्षा अधिकारियों का कार्यभार कम किया जाना चाहिए ताकि वे अपने द्वारा नियन्त्रत विद्यालयों का अधिक से अधि ाक नियन्त्रण कर सकें।

प्रधानाध्यापकों और सहायक शिक्षा अधिकारियों के लिए उत्तम निरीक्षण के लिए पुर्नबोध निरीक्षण किया जाना चाहिए। अधूरे प्राथमिक विद्यालयों को समाप्त कर दिया जाना चाहिए ताकि उनमें विद्यार्थियों की स्थिरता समाप्त हो सके।

''प्रस्तुत शोध से सम्बन्धित विदेशों में कोई कार्य नहीं किया गया है।''

उत्तर प्रदेश में

श्री डी0डी0 तिवारी ने उत्तर प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा पर अपना शोध कार्य 1864 में इलाहाबाद यूनिर्वसिटि में प्रस्तुत किया।

इस प्रस्तुत शोध कार्यश के विषय अगांकित हैं–

'' उत्तर प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा की वर्तमान स्थिति के विकास, प्रशासन और संगठन का आलोचनात्मक अध्ययन'' समस्या के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किये गये अध्ययन से निम्न **निष्कर्ष** प्राप्त हुये हैं।

1. व्यवस्था और नियंत्रण की दृष्टि से प्राथमिक विद्यालयों को पूर्ण रूप से सरकारी जिला परिषदीय निकाय द्वारा संचालित व्यक्ति अथवा संस्थाओं द्वारा व्यवस्थित चार भागों में विभाजित किया गया है इसके अतिरिक्त अध्ययन से यह भी पता चला कि भौगोलिक और जलवायु की दृष्टि से परिवर्तनीय अथवा अस्थायी प्राथमिक विद्यालय भी चलते हैं।
2. इन विद्यालयों के अध्यापकों का आर्थिक स्तर विदेशों में इसी स्तर के अध्यापकों की अपेक्षा अधिक निर्बल है।
3. अध्यापकों का वेतन अपेक्षाकृत कम हो।
4. प्राइमरी शिक्षा की प्रगति सरकार की नीतियों और विभागीय विद्यालयों के खुलने से निरन्तर क्षीण पायी गयी है।
5. विद्यालयों की कई समस्यायें दृष्टिगोचर हुयी, जिसके कारण नामांकन कम पाया गया। इन समस्याओं में गरीबी विद्यालयों का अनुपयुक्त समय, स्थान की दूरी, कक्षाओं की कमी, अभिभावकों की उदासीनता, श्रमिक बच्चे, धार्मिक कारण, कुशल अध्यापकों की कमी, एकल अध्यापकीय विद्यालय, बच्चों का वर्ष पर्यन्त प्रवेश, पाठ्यक्रम की अनुपयुक्ता, निष्प्रभावी निरीक्षण, बालिकाओं के लिए विद्यालय और अध्यापकों की कमी तथा बालक और बालिकाओं के पाठ्यक्रम की एकरूपता का अभाव प्राथमिक स्तर विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में पाया गया।

6. ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यालय खोलने, जनता के सहयोग से भवन निर्माण करने आदि के कार्यों में शिथिलता का पाया जाना तथा सरकार पर समानता के आधार पर वित्तीय सहायता प्राप्त करने के लिए निर्भर रहना भी पाया गया।
7. निरीक्षण कार्य की शिथिलता व्यवसायिक निपुणता की कमी, स्थानीय निकायों की उदासीनता, निरीक्षण अधिकारियों की विशेष योग्यता का अभाव भी पाया गया।
8. जिला परिषद, क्षेत्रीय समिति और गांव सभा द्वारा वित्तीय केन्द्रीयकरण भी पाया गया, जिसके कारण शिक्षा के विकास मे अवरोध सामने आते गये।
9. शिक्षक शिक्षा के कार्यक्रम को विकसित किया जाए और उन्हें उत्तम अध्यापक बनाने के लिए समस्त सुविधाएं उपलब्ध करायी जाय।
10. वित्तीय कठिनाइयों के कारण अनिवार्य शिक्षा की ओर कम ध्यान दिया गया तथा बालिका शिक्षा के प्रति सामाजिक पक्षपात से समस्याएं और बढ़ती गयी अतः बालिका विद्यालय प्रथक किये जाने चाहिए।

श्री हरदेव सिंह विरही ने सन् 1880 में भारत में राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों का कार्यान्वयन पर अपना शोध कार्य पंजाब विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किया।

यह शोध निम्न समस्या पर किया गया–

समस्या

"भारत की शिक्षा नीतियों का प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा, व्यवसायिक और तकनीकी शिक्षा तथा स्त्री और प्रौढ़ शिक्षा के विशेष सन्दर्भों में किऐ गये प्रयोगों और सर्वेक्षणों का क्रियान्वयन तथा बिश्लेषण"

प्रस्तुत शोध के निम्न उद्देश्य थे–

उद्देश्य

1. विभिन्न आयोगों और समितियों द्वारा किए गए पुनरावलोकन को दृष्टिगत रखते हुए शिक्षा के विकास क्रम को ज्ञात करना।
2. 1854 ई0 से, विशेषकर 1854, 1804, 1813, 1868 1878 और 1886 ई0 की प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च, व्यवसायिक, तकनीकी, स्त्री और प्रौढ़ शिक्षा विषयक भारतीय शिक्षा नीतियाँ, उनके प्रयोग और पर्यवेक्षणों का गुणात्मक और परिणाम मूलक प्रभाव जानना

और राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों के प्रभावात्मक क्रियान्वयन हेतु सुझाव प्रस्तुत करना। तथ्य संकलन हेतु प्राथमिक स्रोतों में भारत सरकार द्वारा प्रकाशित वार्षिक, पंचवर्षीय, दसवार्षिक शिक्षा–दस्तावेज सम्मिलित है। जहाँ मूल स्रोतों का अभाव होगा वहाँ अन्य स्रोतों से सहायता ली जाएगी।

मुख्य उपलब्धियाँ / निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध के निम्न निष्कर्ष हैं–

1. सन् 1813 ई0 के ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीय भाषाओं के विकास सम्बन्धी नीतिगत निर्णय को भारत में प्रथम शिक्षा नीति माना जा सकता है।
2. सन् 1813 में ब्रिटिश सरकार ने प्राच्य भाषाओं के विकास के निमित एक लाख रूपया अनुदानित करने का निर्णय किया। किन्तु अंग्रेजों और प्राच्य विद्वानों में मतभेद होने के कारण लगभग बीस वर्षों तक चार्टर एक्ट 1813 के अन्र्तगत इसे व्यवहारिक रूप से प्रयोग नहीं किया जा सका।
3. सन् 1835 में मैकाले के मिनिट (प्रतिवेदन) से यह विवाद समाप्त हो गया। यह निर्णय किया गया कि वह एक लाख रूपया अंग्रेजी भाषा के प्रचार–प्रसार और विकास में व्यय किया जाएगा। लार्ड विलियम वैटिक ने अपने शासकीय (सरकारी) प्रस्ताव दिनांक 7 मार्च 1835 द्वारा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जिसे शिक्षा का द्वितीय नीतिगत प्रस्ताव कहा जा सकता है।
4. सन् 1854 में "वुड डिस्पैच" को विस्तृत राष्ट्रीय नीति का प्रारम्भ कहा जा सकता है जिससे भारत में वर्तमान शिक्षा व्यवस्था का सूत्रपात कहा जा सकता है।
5. 1804 की शिक्षा नीति भारतीय शिक्षा के इतिहास में एक मील का पत्थर है जिसके उपरान्त 4 और शिक्षा नीतियां 1813, 1868, 1878 और 1886 अस्तित्व में आई।

(ए०के०1842)

उत्तर प्रदेश में

यहाँ पर समस्या से सम्बन्धित शोध कार्य जो विभिन्न शोधार्थियों द्वारा समय की आवश्यकता अनुसार समय–समय पर प्रस्तुत किये गये, उनका विवेचन एवं निष्कर्ष प्रस्तुत किये जायेगे।

"उत्तर प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा के वैश्वीकरण के अनौपचारिक शिक्षा के संदर्भ में मूल्यांकन परक अध्ययन–

आभा शर्मा ने 1872 में अपना शोध कार्य लखनऊ यूनिर्वसिटि में प्रस्तुत किया।

समस्या

"उत्तर प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा के वैश्वीकरण के औपचारिक शिक्षा के संदर्भ में मूल्याकन/परक अध्ययन"

प्रस्तुत अध्ययन में अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम के समस्त आयामों का प्रयास करना है।

प्रस्तुत शोध समस्या के निम्न उद्देश्य थे–

उद्देश्य

1. उत्तर प्रदेश में अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों की कार्य–प्रणाली का मूल्यांकन करना है जिसमें प्रशासकीय, वित्तीय, अनुदेशक और शिक्षक के मन्तव्य, समस्याओं, दुर्वसताओं और उपलब्धियों और के विषय में जानने का प्रयास करना।
2. अनुदेशकों में उनके कार्य से उत्पन्न संतोष प्रशासकीय कर्मचारियों की सुरूचि और कार्यक्रम के प्रति सामाजिको की प्रतिक्रिया के विषय में जानने क प्रयास है।

प्रस्तुत शोध अध्ययन में निम्न आंकड़ें प्रयुक्त किये गये–

तीन जनपदों के 150 अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों के मूल्यांकन हेतु अनिश्चय क्रम से चुना गया जिनमें से एक में अनुसूचित जाति और जनजाति का उच्च प्रतिशत जो शिक्षा में पिछड़ा हुआ और एक जनपद उच्च प्रतिशत स्तरीय साक्षर था। इसमें 9 से 14 दय वर्ग के शिक्षार्थी थे। इनके आंकड़े प्रश्नों और व्यवसायिक रूप से केन्द्रों का निरीक्षण करते समय एकत्र किए गए ये आंकड़े विभिन्न सन्दर्भों में आकलन करने की आवर्ति से अनुमोदित है।

इस शोध कार्य की निम्न उपलब्ध्यिाँ/निष्कर्ष थे–

मुख्य उपलब्धियाँ

1. निदेशालय स्तर पर संयुक्त निदेशक के निरीक्षण में समस्त कार्य होता है किन्तु क्षेत्रीय और जिला स्तर पर निरीक्षण कार्य अनुपयुक्त पाया गया है।

2. 62 प्रतिशत केन्द्र शिक्षार्थियों की सुविधानुसार बनाए गए थे 20 प्रतिशत केन्द्र मात्र वही स्थान उपलब्ध होने पर बनें थे। और कुछ केन्द्र शिक्षा की दृष्टि से सुविधाजनक होने पर बनाए गए थे।

3. अध्ययन से ज्ञात हुआ कि 55 प्रतिशत केन्द्रों पर निर्धारित शिक्षा अवधि दो घन्टे की ही थी 8 प्रतिशत में यह अवधि अधिक थी और 4 प्रतिशत केन्द्रों में यह अवधि दो घण्टे से कम थी।

4. 20 प्रतिशत केन्द्रों पर भौतिक सुविधाएँ थी 33.3 प्रतिशत पर सन्तोष प्रद सुविधाएं और 40.67 प्रतिशत केन्द्र अनुपयुक्त स्थितियों में कार्य कर रहे थे। कुछ केन्द्र केवल खुले में ही कार्य करते हैं।

5. 76 केन्द्रों ने पीने के पानी की उपयुक्त व्यवस्था की थी जबकि 20.67 प्रतिशत केन्द्रों में लघु–दीर्घ शंका स्थल थे। 0.4 प्रतिशत केन्द्रों पर शिक्षार्थी जमीन पर बैठते हैं 50 प्रतिशत शिक्षार्थी केन्द्रों पर बिना पुस्तकों, लेखन सामग्री और अन्य शिक्षा सामग्री के पाए गए।

6. 65.67 अनुदेशक उन्हीं गाँवों के हैं ओर उनमें से 90 प्रतिशत अनुदेशकों ने केवल एक सप्ताह का प्रशिक्षण पाया है। वे अपने मानदेय से भी असन्तुष्ट थे।

7. 56 प्रतिशत प्रकरणों में निरीक्षक अपने अनुदेशकों की सहायता करते हैं 30.67 में उदासीन है और 7.33 प्रतिशत में बालक है।

8. केवल 40 प्रतिशत प्रकरणों में सामाजिक व्यक्ति सहायक है। अधिकांश उदासीन है। केवल 6.67 प्रतिशत बाधक पाए गए।

9. पाठ सीखने में 57.72 प्रतिशत पूर्ण रूप से सीखते हैं 30.45 प्रतिशत कुछ ही पाठ सीख पाए हैं 15.78 प्रतिशत बिल्कुल नहीं सीखते हैं।

10. अधिकांश छूटे गए शिक्षार्थी (Drop-out) एक–दो वर्षों के ही हैं। महिलाएं पुरूषों की अपेक्षा अधिक Drop-out वाली श्रेणी में हैं।

आर0 एस0 त्रिपाठी (1992) स्वतंत्रता के पश्चात् उत्तर प्रदेश में उच्च शिक्षा के विकास का आलोचनात्मक अध्ययन पी0 एच0 डी0 कानपुर विश्वविद्यालय

समस्या

स्वतंत्रता के उपरान्त उत्तर प्रदेश में उच्च शिक्षा में हुए विकास का अध्ययन एवं परीक्षण।

उद्देश्य

1. ऐसे तथ्यों और घटनाओं का अध्ययन जिन्होंने उत्तर प्रदेश में उच्च शिक्षा को प्रभावित किया है।
2. उच्च शिक्षा के उद्देश्यों से सम्बन्धित समस्याओं, पाठ्यक्रम, शिक्षा पद्धति, मूल्यांकन, अनुशासन, प्रयोगात्मक सुविधाएँ प्रशासन और सेवा योजन का अध्ययन करना।

शोध प्रविधि

ऐतिहासिक विषय होने के कारण ऐतिहासिक पद्धति का अनुसरण किया गया है।

मुख्य निष्कर्ष

1. उच्च शिक्षा का उद्देश्य आज की आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं है।
2. उच्च शिक्षा का पाठ्यक्रम नितान्त असंगत है।
3. सामान्यतः व्याख्यान पद्धति के शिक्षा के प्रति अध्यापक की गोष्ठी, संवाद, स्वाध्याय अथवा निर्दिष्ट कार्य करने की विधियों के कार्यान्वयन से अनभिज्ञ है।
4. उच्च शिक्षा में मूल्यंकान निकृष्ट कोटि का है। अधिकांश समय जन–परीक्षाओं में व्यतीत होता है। चरण बद्ध प्रणाली जो परीक्षण सुधार का अच्छा माध्यम है वह भी असफल एवं अनुपयोगी सिद्ध हुई है। शिक्षण कार्य भी निष्प्रभावी रहा है।
5. वर्तमान अनुशासन भी प्रशासन, शिक्षक अथवा छात्र स्तर पर निष्प्रभावी रहा है। अतः यह आवश्यक है कि अनुशासन के सिद्धान्त को आन्तरिक गुणों के आधार पर विकसित किया जाय न कि वाह्य आचरण पर।
6. भौतिक सुविधाएं अपर्याप्त है और जो भी है उन्हें भी प्रयोग नहीं किया जाता है।
7. उच्च शिक्षा मे प्रशासन की क्षीणता के कारण निरन्तर बना रहने वाला सरकारी हस्तक्षेप भी उच्च शिक्षा के स्तर के क्षण का कारण बनता जा रहा है।
8. उच्च शिक्षा और सेवा योजन की संगति न होने से शिक्षा और उसकी उपयोगिता में असन्तुलन स्पष्ट प्रतीत होता है।

वरदानी कृष्ण 1992 " राष्ट्रीय शिक्षा नीति के संदर्भ में शिक्षकों प्रशास्कों और अभिभावकां की प्रतिक्रियाओं का अध्ययन" पी–एच0डी0 आगरा विश्व–विद्यालय।

समस्या

"भारत सरकार द्वारा घोषित राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1886 की उपयोगिता पर समाज के विभिन्न समुदायों की प्रतिक्रिया के विश्लेषण का अध्ययन।"

उद्देश्य

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति मुख्य धाराओं पर शिक्षकों, प्रशासकों एवं अभिभावकों की प्रतिक्रिया का अध्ययन।
2. शिक्षकों, प्रशासकों एवं अभिभावकों की प्रतिक्रिया का तुलनात्मक अध्ययन करना तथा बहुआयामी परख पर उनकी सहमति और असहमतियों पर विचार करना।
3. 1847 के उपरान्त गठित आयोगों की संस्तुतियों और राष्ट्रीय शिक्षा नीति की संस्तुतियों की तुलनात्मक अध्ययन करना।
4. वर्तमान सामाजिक सन्दर्भों में राष्ट्रीय शिक्षा नीति का व्यवहारिकता का अध्ययन करना।

शोध प्रक्रिया

इस परीक्षण में 125 शिक्षक 50 प्रशासक और 125 अभिभावकों के तीन स्तरों पर कार्य किया गया शोधार्थी द्वारा 23 प्रमुख साधनों द्वारा प्रश्नावली प्रक्रिया से शोध किया गया। माध्यम और" परीक्षण आकड़ों के लिए प्रयोग किए गए।

मुख्य निष्कर्ष

1. विद्यालय के दोषपूर्ण कार्यक्रमों के सुधार होना।
2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अनुरूप स्त्री शिक्षा को सम्मिलित करना आवश्यक है।
3. अनुसूचित जाति, जनजाति और पिछड़ी जाति की शिक्षा महत्वपूर्ण आवश्यक और अपेक्षित है।
4. विकलांगों की शिक्षा के लिए पर्याप्त चिन्तन एवं प्रदत्तों का कार्य रूप में परिणित करना आवश्यक है।
5. प्रौढ़ शिक्षा और सतत् शिक्षा पर प्रयत्न करना आवश्यक है।
6. पूर्व प्राथमिक शिक्षा के प्रति समुचित प्रयत्न आवश्यक है।
7. राष्ट्रीय शिक्षा नीति में देश में आदर्श स्कूलों की स्थापना हो।
8. व्यवहारिक शिक्षा पर परिणाम मूलक गहन प्रयास करना व्यवहारिक, सरल और अपेक्षित है।

9. उच्च शिक्षा सावधानी पूर्वक प्रदान की जाए।
10. राष्ट्रीय शिक्षा नीति में मुख्य विद्यालय शिक्षा और दूरस्थ शिक्षा महत्वपूर्ण, व्ययवहारिक, सरल और अपेक्षित है।
11. तकनीकी और प्रबन्धन शिक्षा महत्वपूर्ण और अपेक्षित है।
12. नई प्रविधियाँ उत्तम शिक्षा के लिए अत्यन्त आवश्यकह हैं।
13. उपाधियों को कार्य से प्रथक करना आवश्यक है।
14. शारीरिक शिक्षा, खेल और सांस्कृतिक शिक्षा राष्ट्रीय शिक्षा नीति में सम्मिलित किए जाएँ।
15. परीक्षा एवं मूल्यांकन की विसंगतियां को दूर किया जाय एवं उत्तम शिक्षा परीक्षा प्रणाली लागू की जाय।
16. शिक्षण कार्यक्रम समुचित ढंग से लागू किया जाय।

अनुसन्धान की परिभाषा एवं प्रकार

शोधकार्य के लिए हिन्दी में चार शब्दों का प्रयोग मिलता है।
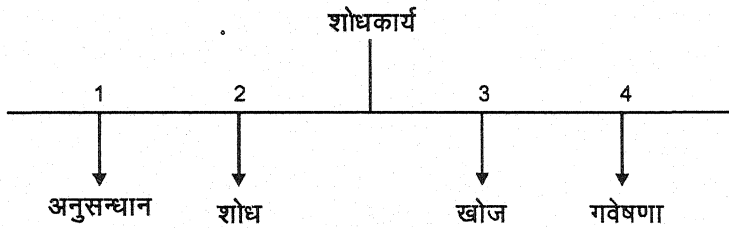
विश्वविद्यालयों में 'प्रबंध' के साथ 'शोध' शब्द का ही प्रयोग प्रचलित है– शोध प्रबन्ध, लघुशोध प्रबन्ध.। अंग्रेजी के Research (Re + search) का शब्दानुसार अनुसन्धान (अनु + संधान) ठीक लगता है।

किन्तु सम्भवत: सरलता की दृष्टि से शोध शब्द अधिक प्रचलित है 'खोज' शब्द किसी हस्तलिखित सामग्री, पाण्डुलिपि अथवा मौलिक कृति को प्रकाश में लाने के लिए प्रयुक्त होता है नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों के खोज का पचास वर्षीय विवरण (सं0 1800 से 1850 वि0 तक) प्रकाशित किया। आगे त्रैवार्षिक खोज विवरण प्रकाशित होते रहे हैं।

खोज शब्द खुज धातु से बना है। केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा की पत्रिका का नाम गवेषणा है। श्री रामचन्द्र वर्मा ने गवेषणा, अनुसंधान और शोध शब्दों को स्पष्ट करते हुए कहा है।[1]

"गवेषणा (गव + गौ + एषणा) का मूल अर्थ है। गौ या गौओ को पाने की इच्छा अथवा गौवा गौओं को ढूढ़ निकालना किसी बात या विषय की मूल स्थिति अथवा गूंठ रहस्य जानने के लिए कुछ अधिक समय तक चलती रहने वाली विचारपूर्ण जाँच या छानबीन ही गवेषणा है। वास्तविक तथ्य या शुद्ध रूप का पता लगाना ही इसका उद्देश्य होता है। शोध का मूल अर्थ होता है–शुद्ध या स्वच्छ करने की क्रिया या भाव।"

शोधार्थियों के मार्गदर्शन हेतु विद्वानों ने अनुसन्धान प्रक्रिया सम्बन्धी जो पुस्तकें लिखी हैं उनके नामों में 'अनुसन्धान' शब्द का प्रयोग किया गया है। जैसे अनुसन्धान नाम वाले ग्रन्थ अग्रांकित हैं–

1. शैक्षिक अनुसन्धान – एच0 सी0 सिन्हा
2. अनुसन्धान विधियाँ – एच0 के0 कपिल
3. अनुसन्धान परिणय – पारस नाथ राय
4. शैक्षिक अनुसन्धान का विधिशास्त्र – सच्चिदानन्द ढौढियाल और अरविन्द फाटक
5. शिक्षा अनुसन्धान – डा0 आर0 पी0 भटनागर
6. मनोवैज्ञानिक अनुसन्धान पद्धति – डा0 आदेश अग्रवाल, डा0 लाल वचन त्रिपाठी आदि।
7. शिक्षा अनुसन्धान – आर0 ए0 शर्मा
8. शैक्षिक अनुसन्धान के मूलतत्व – एस0 पी0 सुखिया, वी0 पी0 मलहोत्रा।
8. शैक्षिक अनुसन्धान – के0 पी0 पाण्डेय
10. शैक्षिक और मनोवैज्ञानिक अनुसन्धान के मूलाधार – डा0 गोविन्द त्रिपाठी

1. वर्मा राम चन्द्र – "शब्द साधना", पृष्ठ 145–146, इलाहाबाद, रचना प्रकाशन – 1971

परन्तु अग्रांकित अनुसन्धान प्रक्रिया के मार्गदर्शक ग्रन्थों के शीर्षक में 'शोध' शब्द का प्रयोग किया गया है–

1. शोध प्रविधि – डा0 विनय मोहन शर्मा
2. शोधतत्व और दृष्टि – रामेश्वर
3. शोध प्रविधि और प्रक्रिया – डा0 चन्द्रभान रावत
4. हिन्दी के शोध प्रबन्ध – डा0 उदय भान सिंह
5. हिन्दी शोधतत्व की रूपरेखा – डा0 मनमोहन सहगल
6. हिन्दी शोध संदर्भ – डा0 जोगेश कौर
7. नवीन शोध विज्ञान – डा0 तिलक सिंह

'अनुसन्धान' शब्द का प्रयोग अब ज्ञान की प्रत्येक शाखा के गहन अध्ययन के निमित्त होने लगा है। अनुसन्धान शब्द का प्रयोग किसी संशोधन या वस्तु की खोज के लिए नहीं किया जा रहा है। बल्कि यह उस क्रिया तथा प्रक्रिया का द्योतक है। जिसमें अनेक प्रकार के तथ्यों का एकत्रीकरण और अनेक आधारों पर व्यापक निष्कर्ष निकालना सम्मिलित है।

अनुसन्धान को अंग्रेजी मे **Research** कहा जाता है। 'रि' शब्द गहनता का द्योतक है जबकि 'सर्च' शब्द खोज का समानार्थी है। इस प्रकार रिसर्च का अर्थ हुआ प्रदत्तों की गहन खोज। दूसरे शब्दों में प्रदत्तों की तह में बैठकर कुछ निष्कर्ष निकालना, नये सिद्धान्तों की खोज करना और उन प्रदत्तों का स्पष्टीकरण करना 'रिसर्च' की प्रक्रिया के अर्न्तगत आता है। रिसर्च शब्द को विद्वानों ने अलग–अलग शब्दावलियों से परिभाषीत किया है।

"अनुसन्धान उन समस्याओं के अध्ययन की एक विधि है जिनका अपूर्ण अथवा पूर्ण समाधान तथ्यों के आधार पर ढूढ़ना है। अनुसन्धान के लिए तथ्य, लोगों के मतों के कथन, ऐतिहासिक तथ्य, लेख अथवा अभिलेख, परीक्षणों से प्राप्त फल, प्रश्नावली के उत्तर अथवा प्रयोगों से प्राप्त सामग्री हो सकती है।"

डब्ल्यू0 एस0 मनरो[1]

---

1. पारसनाथ राय – अनुसंधान परिचय, पृष्ठ 19 में संदर्भित, आगरा लक्ष्मी नारायण अग्रवाल संस्करण 1985

"अनुसन्धान किसी समस्या के अच्छे समाधान के लिए क्रमबद्ध, विशुद्ध चिन्तन एवं विशिष्ट उपकरणों के प्रयोग की एक विधि है।"

सी0 सी0 क्राफोर्ड[1]

"अनुसन्धान वस्तुओं, प्रत्ययों तथा संकेतों आदि को कुशलता पूर्वक व्यवस्थित करना है। जिसका उद्देश्य सामान्यीकरण द्वारा ज्ञान का विकास परिमार्जन या सत्यापन होता है, चाहे वह ज्ञान के व्यवहार में सहायक हो या कला में।"

सामाजिक विद्वानों के ज्ञानकोष के अनुसार[2]

डा0 मनमोहन सहगल[3] ने अनुसन्धान के स्वरूप को इस प्रकार निरूपित किया है–

''अनुसन्धान अथवा साहित्यिक शोध किसी भी साहित्कि विषय का ऐसा सर्वागींण सुव्यस्थित तथा वैज्ञानिक अनुशीलन होता है जिसमें शोधार्थी किसी विशिष्ट उद्देश्य को लक्ष्य करते हुये उपलब्ध तथ्यों का निरीक्षण, परीक्षण तथा समुचित व्याख्या करता है।"

डा0 तिलक सिन्हा[4] द्वारा शोध की व्याख्या निम्न प्रकार से दी गयी है–

"अपरिचित तथा अस्पष्ट ज्ञानक्षेत्र की ज्ञान तथा स्पष्ट करना, प्रकृति में व्याप्त अपार अव्यवस्थित तथा क्रमहीन ज्ञान राशि को व्यवस्थित तथा क्रमबद्ध करना तथा उपलब्ध ज्ञान को नवीन व्याख्या द्वारा नवीन दृष्टि प्रदान करना अथवा आधुनिक परिप्रेक्ष्य के सन्दर्भ में उपयोगी बनाना शोध है।"

अनुसन्धान के अंग्रेजी शब्द RESEARCH के प्रत्येक अक्षर से व्यक्त होने वाले प्रमुख बिन्दुओं को डा0 गोविन्द तिवारी ने अग्रांकित रूप से लिखा है–[5]

R-	(आर.) तार्किक ढंग से चिन्तन करना	–	रेशनल वे आफ थिंकिंग
E-	(ई.) अनुभव एवं परिश्रम के साथ कार्य करना	–	एक्सपर्ट एण्ड एक्जहास्टिव
S-	(एस.) समाधान की खोज करना	–	सर्च फार सल्यूराव
E-	(ई.) निश्चितता	–	एक्जेक्टनेश

1,2. डॉ0 गोविंद तिवारी – शैक्षिक एवं मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों के मूलाधार, पृ0 – 16 में संदर्भित, आगरा विनोद पुस्तक मंदिर संस्करण – 1985

3. डा0 मनमोहन सहगल – हिन्दी शोधत की रूपरेखा, जयपुर, पेचशीन प्रकशान

4. डा तिलक सिंह – नवीन शोध विज्ञान, पृ0 15, दिल्ली प्रकाशन, क्यू 22 नवीन शहादरा।

5. डॉ0 गोविन्द तिवरी – शैक्षिक एवं मनौवैज्ञानिक अनुसंधनों के मूलधार, पृ0 45 विनोद पुस्तक मंदिर आगरा, संस्करण – 1985

A-	(ए.) उपयुक्त प्रदत्तों का उचित विश्लेषण	–	एनालिटिकल एनालेसिस आफ एडेक्यूट डाटा
R-	(आर.) तथ्यों का सम्बन्ध	–	रिलेशनशिप ऑफ फेक्ट्स
C-	(सी.) सावधानीपूर्वक संकलन	–	केयरफुल रिकार्डिंग
	i. यथार्थ निरीक्षण	–	क्रिटीकल आवजरवेशन
	iii. रचनात्मक मनोवृत्ति	–	कन्सट्रक्टिव एटीट्यूड
	iii. उचित एवं संक्षिप्त सामान्यीकरण	–	कन्डेन्सेड एण्ड कम्पेक्टली स्टेटेड जनरलाइजेशन।
H.	(एच.) प्रदत्तों का विश्लेषण आदि में ईमानदारी के साथ कार्य करना	–	ओनेस्टी एण्ड हार्ड वर्क इन आल आस्पेफ्ट्स ऑफडॉटा।

इस प्रकार अनुसन्धान के मुख्य तत्व निम्नांकित है–

1. अव्यवस्थित एवं क्रमहीन प्रदत्तों को व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध करना।
2. समस्या से सम्बन्धित अज्ञात तथ्यों को ज्ञात करना तथा अस्पष्ट को स्पष्ट रूप देना।
3. व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक तथा मानक प्रक्रिया अपनाना।
4. सैद्धान्तिक या व्यवहारिक समस्याओं के समाधान हेतु प्रयास करना।
5. वर्तमान में ज्ञात तथ्यों का पुर्नविवेचन करना।
6. नवीन ज्ञान की वृद्धि करना।
7. नवीन तथ्य एवं सिद्धान्तों की खोज करना।
8. प्राप्त प्रदत्तों का आलोचनात्मक विश्लेषण।
8. सामान्य सिद्धान्तों की खोज एवं प्रमाणिक निष्कर्ष।
10. अनुसन्धान परिप्रेक्ष्य में शोधकार्य की उपयोगिता तथा भविष्य के लिए सुझाव।

अनुसन्धान के प्रमुख प्रकार

अनुसन्धान के मुख्यतः सात प्रकार हैं–

1. ऐतिहासिक अनुसन्धान
2. सर्वेक्षण अनुसन्धान
3. पद्धति परक अनुसन्धान
4. घटनोत्तर अनुसन्धान
5. प्रायोगिक अनुसन्धान
6. क्रियात्मक अनुसन्धान
7. दार्शनिक अनुसन्धान

ऐतिहासिक अनुसन्धान

इतिहास के किसी भी ज्ञान के क्षेत्र में अतीत की घटनाओं का एकीकृत वर्णन होता है। जो सम्पूर्ण सत्य के लिए विषय के अध्ययन का ऐतिहासक उपागमन उस विषय के अतीत का वर्णन करने के प्रयास की ओर संकेत करता है। जिसके प्रकाश में वर्तमान समस्याओं के निराकरण के लिए समाधान प्रस्तुत किये जाते हैं। कौल[1] ने इसे शोध की वह विधि बतलाया है, जिसमें भूतकालीन तथ्यों का अन्वेषण एवं वर्णन किया जाता है।

''यह शोध की वह विधि है जिसमें ऐतिहासिक महत्व के तथ्यों तथा प्रदत्तों को ढूढ़–ढूढ़कर एकत्र किया जाता है। और वर्गीकरण करके उनकी व्यख्या तथा आलोचना की जाती है अनततः उनके आधार पर कुछ मान्य निष्कर्ष निकाले जाते हैं। इस प्रकार इसमें अतीत की घटनाओं का किसीं विशिष्ट दृष्टिकाण से अध्ययन किया जाता है। और संग्रहित साम्रगी की विश्लेषणात्मक व्याख्या की जाती है।''

शिक्षा परिभाषा कोश[2] में ऐतिहासिक अनुसन्धान की अग्रांकित परिभाषा प्रस्तुत की गयी है–

---

1. लोकेश कौन – ''मैथोडोलाजी ऑफ एलूकेशन रिसर्च''पृ0 178, नयी दिल्ली, वानी एजूकेशन बुक्स 1987
2. ''शिक्षा परिभाषा कोष – पृ0 59, नयी दिल्ली, केन्द्रयी हिन्दी निदेशालय, भारत सरकार, 1977

"ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण तथ्यों का अन्वेषण करने, उनका अभिलेख रखने तथा उनकी व्याख्या करने की वह प्रक्रिया, जिसमें सम्बन्धित आधार सामग्री को एकत्रित करने, उसे समग्ररूप से रखने और आलोचनात्मक विन्यास करने के उपरान्त उसकी व्याख्या की जाती है, ऐतिहासिक शोध विधि कहलाती है।"

करलिंगर के अनुसार

"ऐतिहासिक अनुसन्धान अतीत की घटनाओं, विकासक्रमों तथा अनुभवों का वह सूक्ष्मात्मक अन्वेषण होता है। जिसमें अतीत से सम्बन्धित सूचनाओं के साधनों तथा प्राप्त संतुलित ववेचना की वैद्यता कर सावधानी पूर्ण परीक्षण सम्मिलित रहता है।"

एफ0 एल0 विहटनी के अनुसार

"ऐतिहासिक अनुसन्धान का सम्बन्ध अतीत के अनुभव से रहता है इसका उद्देश्य एक घटना, तथ्य तथा अभिवृत्ति से सम्बन्धित अतीत की प्रवृत्तियों के अन्वेषण द्वारा अभी तक अबोध्य सामाजिक समस्याओं के अनुचिन्तनात्मक विधि की अनुप्रयुक्ति होता है। इसके द्वारा मानव विचार तथा व्यवहार के उन विकास क्रमों की खोज करना होता है जिससे किसी एक सामाजिक गतिविधि के आधार का पता लगता है।"

ऐतिहासिक अनुसन्धान के अर्न्तगत ही शैक्षिक अनुसन्धान आता है।

सर्वेक्षण अनुसन्धान

करलिंगर के अनुसार[1] *"सर्वेक्षण अनुसन्धान सामाजिक, वैज्ञानिक अन्वेषण की वह शाखा है, जिसके अन्तर्गत व्यापक तथा कम आकार वाली जनसंख्याओं का अध्ययन उनमें से चयन किये गये प्रतिदर्शी के आधार पर इस आशय से किया जाता है कि उनमें व्याप्त सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक चरों के घटनाक्रमों, वितरणों तथा पारस्परिक अर्न्तसम्बन्धों का ज्ञान उपलब्ध हो सके।"*

पद्यति परक अनुसधान - एफ0एल0 करलिंग के अनुसार

"पद्यतिपरक अनुसन्धान प्रदत्तों को प्राप्त व विश्लेषण करने[2] तथा सांख्यिकी, गणित व मापन के सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक पक्षों का नियन्त्रिता खोज है। बिना पद्यतिपरक अनुसन्धान के आधुनिक, सामाजिक, वैज्ञानिक एवं शैक्षिक अनुसन्धान अनुसन्धान के अंधेरे युग में ही रहेगा।

---

1. डा0 एच0के0 कपिल – "अनुसंधान विहियॉं" पृ0 179, आगरा, हरप्रसाद भार्गव, 1981
2. डा0 एच0के0 कपिल – "अनुसंधान विहियॉं" पृ0 179, आगरा, हरप्रसाद भार्गव, 1981

घटनोत्तर अनुसन्धान

करलिंगर के अनुसार[1] *"यह एक ऐसे प्रकार का अनुसन्धान है जिसमें स्वतन्त्रचर व चरों का कार्य हो चुका है तथा अनुसन्धानकर्ता किसी आश्रित चर अथवा चरों के निरीक्षण से कार्य प्रारम्भ करता है। वह स्वतन्त्र चर का पश्चावलोकन करता है। ताकि आश्रित चरों पर पड़ने वाले प्रभावों तथा उनके सम्बन्धों को यह ज्ञात कर सके।"*

प्रायोगिक अनुसन्धान

मुनरो के अनुसार[2] *"शिक्षा में प्रयोग उस प्रकार के शैक्षिक अनुसन्धान को कहते हैं, जिसमें अनुसन्धानकर्ता उस बालक अथवा समूह की शिक्षा से सम्बन्धित तत्वों का नियन्त्रण कर उसकी उपलब्धि पर प्रभाव देखता है।"*

क्रियात्मक अनुसन्धान

कोरी के अनुसार[3] *"यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा चिकित्सक या व्यवहारिक कार्यकर्ता अपनी समस्याओं का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन करता है। जिससे कि अपने निर्णयों एवं कार्यों का पथप्रदर्शन कर सकें, उनमें सुधार कर सकें, या त्रुटियों को दूर कर सकें।"*

दार्शनिक अनुसन्धान

इस अनुसन्धान के अर्न्तगत किसी व्यक्ति या समुदाय के शैक्षिक विचारों के आधारभूत दर्शन का अन्वेषण आत है। बहुत से शैक्षिक विचारकों ने अपने विचारों के दर्शन को स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं किया है। तथा उनके विचार इधन–उधर विभिन्न लेखों तथा ग्रन्थों में बिखरें रहते हैं और कभी–कभी अपरोक्ष रूप में व्यक्त नहीं होते हैं। इसलिए उनकी खोज और संकलन परिश्रम साध्य होता है। भूतकाल से सम्बद्ध दार्शनिक अनुसन्धान में दत्त संग्रहण और समालोचन में अनुसन्धान के समान कार्य करना होता है। दार्शनिक अनुसन्धान में भी ऐतिहासिक अनुसन्धान की भाँति प्राथमिक स्रोतों के न मिलने पर या उनकी कमी होने पर गौण स्रोतों का सहारा लेना पड़ता है।

1–2. पारसनाथ राय – "अनुसंधान परिचय" पृ0 208, 150, आगरा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल – 1985
3. डॉ0 गोविन्द्र तिवरी – "शैक्षिक एं मनावैज्ञानिक अनुसंघानों के मूलाधार" पृष्ठ 140, आगरा विनोद पुस्तक मंदिर – 1985

प्रोफेसर एम0 वर्मा [1] *"पाण्डित्य, आलोचनात्मक अर्न्तदृष्टि तथा संश्लेषणात्मक योग्यता की अपेक्षा रखती है। इतिहास की तुलना में भी इसके अर्न्तगत अपेक्षाकृत अधिक पुस्तकीय कार्य–व्यापार निहित होता है। क्योंकि इसमें प्रमाणिक ग्रन्थों एवं योग्य पोथियों का अत्यन्त ही नजदीकी से अध्ययन किया जाता है। स्वाभाविक है कि इसके लिए शोधकर्ता में सामान्य रूप से दार्शनिक विचारों की अच्छी जानकारी तथा प्रमुख सम्प्रदायों एवं प्रवृत्तियों से परिचय हो।"*

दार्शनिक और ऐतिहासिक अनुसन्धान का मूलभूत अन्तर यह होता है कि दार्शनिक अनुसन्धान के अध्ययन का मुख्य विषय निराकार विचार होता है जबकि ऐतिहासिक अनुसन्धान का प्रधान विषय साकार घटनाएं होती हैं। दूसरा अन्तर यह है कि दार्शनिक अनुसन्धान में काल क्रम गौण होता है। जबकि ऐतिहासिक अनुसन्धान में प्रधान।

शैक्षिक अनुसन्धान

शैक्षिक अनुसन्धान का अर्थ

डा0 आर0 बी0 भटनागर[2] *"शैक्षिक अनुसन्धान से तात्पर्य उस अनुसन्धान से होता है जो शिक्षा के क्षेत्र में किया जाता है। उसका उद्देश्य शिक्षा के विभिन्न पहुलओं, आयामों प्रक्रियाओं आदि के विषय में नवीन ज्ञान का सृजन, वर्तमान ज्ञान की सत्यता का परीक्षण उसका विकास एवं भावी योजनाओं की दिशाओं का निर्धारण करना होता है।"*

पाश्चात्य शिक्षा विचारकों के द्वारा शैक्षिक अनुसन्धान को निम्नांकित परिभाषित किया गया है–

"शैक्षिक अनुसन्धान वह प्रक्रिया है। जो शैक्षिक परिस्थितियों में व्यवहार के विज्ञान को विकसित करने की ओर निर्देशित होती है। इस प्रकार के विज्ञान का अन्तिम लक्ष्य ऐसा ज्ञान प्रदान करना है जो शिक्षक के लिए सर्वाधिक प्रभावकारी पद्यतियों के द्वारा अपने उद्देश्यों की प्रगति करने में सहायक हो सके।"

---

1. डॉ0 के0पी0 पाण्डेय – "अनुसंधान परिचय" पृ0 208, 150, आगरा, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, 1985
2. डॉ0 आर0पी0 भटनागर, "शिक्षा अनुसधान" पृ0 27, मेरठ, ईगल बुक्स इण्टर नेशलन, संस्करण – 1985

टेवर्स के अनुसार [1]

'' शिक्षा अनुसन्धान का अन्तिम लक्ष्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना और शिक्षा के क्षेत्र में नवीन प्रक्रियाओं का विकास करना।''

मोनरों के अनुसार [2]

'' शिक्षा अनुसन्धान का उद्देश्य शिक्षा की समस्याओं का समाधान करके उनमें योगदान करना है। जिसमें वैज्ञानिक विधि दार्शनिक विधि तथा चिन्तन का प्रयोग किया जाता है। वैज्ञानिक स्तर पर विशिष्ट अनुभवों का मूल्यांकन और व्यवस्था की जाती है। इसके अन्तर्गत परिकल्पनाओं का प्रतिपादन किया जाता है। इनकी पुष्टि से सिद्धान्तों का प्रतिपादन होता है। इसमें निगमन चिन्तन किया जाता है। दार्शनिक शोध विधि में व्यापक सामान्यीकरण किये जाते है। जिससे सत्य एवं मूल्यों का प्रतिस्थापना किया जाता है।''

प्रस्तुत शोध में प्रयुक्त शोध विधि

प्रस्तुत शोध में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद शिक्षा जगत के विभिन्न शैक्षिक स्तरों में उन्नयन हेतु जो शिक्षा आयोग गठित किये गये व उनके द्वारा जो शिक्षा नीतियाँ प्रतिपादित की गयी उनका नवीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1886 की नीति से तुलना करते हुये शोधकर्ता ने इन नीतियों के क्रियान्वयन हेतु विश्लेषण करते हुये निष्कर्ष एवं सुझाव प्रस्तुत किये हैं।

अतः प्रस्तुत शोध अध्ययन में ऐतिहासिक शोध विधि का उपयोग किया गया है। चूंकि पूर्व में गठित शिक्षा आयोग एवं उनकी संस्तुतियाँ एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1886 जो कि शैक्षिक जगत के इतिहास का अंग है। अतः शोघकर्ता द्वारा ऐतिहासिक शोध विधि का प्रयोग इस अध्ययन में उपयुक्त समझा गया है। जो अध्ययन की प्रमाणिकता को स्पष्ट करता है।

सामग्री का विवेचन तथा प्रस्तुत शोध से तुलना

प्रस्तुत शोध में समस्या से सम्बन्धित विभिन्न शोधार्थियों के जो शोध पत्र प्रकाशित हुये हैं। उनका विवचना इस शोध ग्रन्थ में किया गया है। वैसे ही प्रस्तुत शोध समस्या यथार्थ नवीन है फिर भी समय–समय पर शिक्षा के विभिन्न स्तरों (प्राथमिक, माध्यमिक, उच्चतर एवं विश्वविद्यालयी)पर जो शोध पत्र शिक्षा के विकास व शिक्षा आयोगों व नीतियों से सम्बन्धित

---

1. डॉ0 गोविन्द तिवारी – ''शैक्षिक एवं मनोवैज्ञानिक अनुसधानों के मूलाधार'' पृ0 23, आगरा विनोद पुस्तक मंदिर – 1985
2. आर0के0 शर्मा :– ''शिक्षा अनुसंधान'' पृ0 21,22, मेरठ, सूर्या पबिल्केशन, 1985

हुए हैं। उनकां इस शोध ग्रन्थ में वर्णित किया गया है। जिससे अध्ययन की प्राथमिकता, परिणामों का विश्लेषीकरण एवं उनके निष्कर्ष प्रस्तुत किये जा सकें।

स्वतन्त्रता के बाद गठित शिक्षा आयोगों व उनकी नीतियाँ तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1886 का तुलनात्मक अध्ययन एवं नीतियां का क्रियान्वयन पर अभी तक कोई शोध कार्य सम्पन्न नहीं किया गया है।

एजूकेशनल सर्वे ऑफ रिसर्च के वोल्यूम 1 से 5 तक के अध्ययन के उपरान्त प्राप्त समस्याओं की विस्तृत विवेचना के उपरान्त यह स्पष्ट होता है कि स्वतन्त्रोयोत्तर भारत में व उत्तर प्रदेश में शिक्षा के विकास हेतु व शैक्षिक स्तर की वृद्धि हेतु प्राथमिक, माध्यमिक व उच्च स्तर पर जो निष्कर्ष प्राप्त हुये हैं। उनका सम्बन्धित शोध समस्या के निष्कर्षों में एकरूपता मिलती है। तथा प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में भी प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा और उच्च शिक्षा अनौपचारिक, औपचारिक, सतत् शिक्षा, शिक्षक शिक्षा आदि के उन्नयन, प्रशासन और संगठन आदि क्षेत्रों में आयोगों, समितियों और नयी शिक्षा नीति 1886 में प्रस्तावित नीतियों का अनुपालन किया जाना नितान्त संगत प्रतीत होता है।

अतएव यह प्रमाणिक है कि प्रस्तुत शोध समस्या सर्वथा नवीन है। तथा उत्तर प्रदेश में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद गठित आयोगों द्वारा जो नीतियाँ/संस्तुतियाँ सुझायी गयी हैं। उनका राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1886 से तुलना कर उनकी विशद विवेचना करती है। अतः शोधकर्ता द्वारा प्रथम बार इस स्तर की शिक्षा समस्या पर शोध कार्य किया जा रहा है। जो शोधकर्ता का नितान्त मौलिक प्रयास है।

तृतीय अध्याय

भारतीय शासन की शिक्षा नीतियां एवं समितियां

प्रस्तावना

नीति, कार्य का वह क्रम है जिसका अनुपालन वांछित उद्देश्यों की अवधि के लिए किया जात है। इस प्रसंग में यह उन सामान्य विधियों तथा लक्ष्यों का निर्देश करती है, जिनका पालन शासन जन शिक्षा के प्रति अपने अभिक्रम की पूर्ति के लिए करत है।

गाबा[1]; ने सामाजिक संदर्भों में नीति को निम्नवत् स्पष्ट किया है–

"निर्दिष्ट सामाजिक उद्देश्यों की सिद्धि के लिए सोच विचारकार किये गये अधिकारिक निर्णयों की श्रंखला जो सम्पूर्ण कार्यक्रम को एकरूपता प्रदान करती है, नीति कही जाती है।"

साधारण भाषा में नीति का तात्पर्य राज्य शासन द्वारा अपनाये गये कार्य करने के तरीके से होता है यह प्रशासन भी विवेक सम्मत व्यवहारिक या लाभदायक कार्यविधि है जिसका अनुपर्वन हितों की दृष्टि से अधिक और सिद्धान्तों की दृष्टि से कम किया जाता है।

कार्टर, वी0 गुड[2] ने नीति को अग्रांकित शब्दों में परिभाषित किया है – "मूल्यों की कुछ प्रणाली तथा कुछ निर्धारण परिस्थतिजय कारकों से व्युत्पन्न एक निर्णय, सामान्य योजना के संचालन हेतु आकांक्षित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निर्देशित निर्णयों के उपाय।

शिक्षा को व्यवस्था देने के लिए शासन जिन तत्वों या सिद्धान्तों को स्थिर करता है उन्हें शिक्षा नीति कहते हैं। शैक्षिक नीति सामान्यतः शैक्षिक संस्थाओं के प्रशासन तथा प्रबन्ध व्यवस्था, वित्त के प्राविधान तथा प्राथमिकताओं के निर्धारण का निर्देश करती है। शिक्षा के उद्देश्य और आदर्श स्थूल रूप से उस समाज की आवश्यकताओं से व्यंजित होते हैं, जिनके लिए उसकी संकल्पना की जाती है। अन्ततोगत्वा इनका स्वरूप निर्धारण, आदेश देने वोले प्रशासन के स्वरूप द्वारा सुनिश्चित होता है। इन अबयवों में किसी प्रकार का अन्तर, शिक्षा के किन्हीं पक्षों पर बलान्तर से अनुगत होकर शैक्षिक नीति के विकास में प्रतिफलित होता है।

शिक्षा की नीति प्रायः निर्धारित होती है– शासकीय आदेशों और प्रस्तावों से शिक्षा समितियाँ और आयोगों की अनुशंसाओं से, भारतीय संविधान में निरूपति शैक्षिक तत्वों और निदेशक सिद्धान्तों से, पंचवर्षीय योजनाओं में शिक्षा विकास हेतु दिग्दर्शित दिशाओं से, जिन्हें

1. ओम प्रकाश गाबा "सामाजिक विंज्ञान कोष" नयी दिल्ली, बी0आर0 पब्लिशिंग हाउस, 1984, पृ0 194
2. कार्टर बी0 गुड "डिक्शनरी ऑफ एजूकेशन", न्यूयार्क मैकग्रा, हिल बुक कम्पनी, 1973, पृ0 428

शासन स्वीकार कर ले, परन्तु राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 ऊपर से थोपी नहीं गयी है, बल्कि इसे शिक्षा के हर क्षेत्र में कार्य करने वाले शिक्षाविदों, पत्रकारों, संसद सदस्यों, विधायकों, डाक्टरों, प्रबन्धकों, अभिभावकों तथा मजदूरों आदि के विचार विमर्श तथा उनसे प्राप्त सुझावों के आधार पर तैयार क़िया गया है। इस प्रकार शिक्षा की राष्ट्रीय नीति का तात्पर्य शिक्षा के उन सिद्धान्तों पर नीतियों के निर्धारण से हैं, जिनके आधार पर समस्त राष्ट्र की गतिविधियों का संचालन होता है।

भारत में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद समय–समय पर शिक्षा नीति सम्बन्धी सुझाव शासन को देती है।

माध्यमिक शिक्षा राज्य का विषय होने के कारण राज्य स्वयं उसकी नीति निर्धारित करने के लिए सक्षम होता है। केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त समितियों और आयोगों की सिफारिशों पर वही निर्णय करता है राज्य स्वयं की माध्यमिक शिक्षा नीति निर्धारित करने के लिए समितियों तथा आयोगों का गठन कर सकता है।

उत्तर प्रदेश सरक़ार ने प्रदेश की स्थानीय, सामाजिक परिस्थतियों, बालक के सर्वागीण विकास, पंचवर्षीय योजनाओं में निर्धारित शिक्षा के लक्ष्यों तथा राष्ट्रीय सामाजिक उद्देश्यों के परिप्रेक्ष्य में स्वयं भी शैक्षिक नीतियों के निर्माण हेतु कई बार समितियों का गठन किया है। स्वाधीनता के पहले शिक्षा को कभी भी इसका श्रेय नहीं मिला।

समय–समय पर शिक्षा आयोगों, समितियों, पंचवर्षीय योजनाओं तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों ने माध्यमिक उच्च व विश्व विद्यालयी शिक्षा के सम्बन्ध में जो नीतियाँ निर्धारित की हैं उनका यहाँ विवेचन किया जायेगा तथा यह दर्शानें का प्रयास किया जाएगा कि उत्तर प्रदेश में किस सीमा तक उनका अनुसरण किया गया है।

भारतीय संविधान में शिक्षा

भारत का संविधान 1950 में लागू किया गया था। संविधान में देश की शिक्षा नीतियों का मोटे तौर पर उल्लेख किया गया था। प्रत्येक देश के संविधान का अपना दर्शन होता है। जीवन साधारण के आदर्शों, मूल्यों, आशाओं तथा आकांक्षाओं को मूर्तरूप देता है अतएव यह स्वाभाविक है कि इस दस्तावेज में शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होना चाहिए।

भारतीय संविधान केवल वैज्ञानिक उपबन्धों का संकलन भाग नहीं है अपितु इसमें राष्ट्र

की भाषा के दर्शन होते हैं इस संविधान में अतीत की महता, वर्तमान का संघर्ष और भविष्य की उज्जवलता का संकेत होता है। हमारा संविधान 26 नवम्बर 1949 को संविधान सभा द्वारा अंगीकृत तथा अधिनियमित किया गया और 26 जनवरी 1980 से लागू हुआ।

सरकार द्वारा किये जाने वाले कार्यों का बंटवारा करते हुये संविधान में तीन सूचियाँ दी गयी हैं–

1. केन्द्र सरकार द्वारा किये जाने वाले कार्यों की सूची। इसे केन्द्र सूची कहते हैं।
2. राज्य सरकार द्वारा किये जाने वाले कार्यों की सूची। इसे राज्य सूची कहते हैं।
3. ऐसे कार्यों की सूची, जिन्हें पूरा करने की जिम्मेदारी केन्द्र एवं राज्य सरकार दोनों की है। समवर्ती सूची कहते हैं।

संविधान में शिक्षा को राज्य सूची में सम्मिलित किया गया था, अतः 1916 तक शिक्ष का पूर्णरूपेण दायित्व राज्यों पर ही रहा । केवल उच्च शिक्षा और अनुसंधान में मापदण्डों को निर्धारित करने का अधिकार केन्द्र सरकार ने अपने हाथ में रखा।

1976 में 42वें संविधान संशोधन में शिक्षा को समीपवर्ती सूची में सम्मिलित कर लिया गया है। अतएव शिक्षा को एक सम्वर्ती विषय मान लेने पर न केवल शिक्षा विकास के उद्देश्यों के प्रतिकूल बातों अथवा कार्यकलापों के रोकने के बारे में केन्द्रीय सरकार का दायित्व बढ़ गया है, बल्कि पूरे देश में शिक्षा की वृद्धि दर, विस्तार तथा उसके स्तर में सुधार लाने की जिम्मेदारी तथा योजना बनाने का भार भी अनुच्छेदों 1, 14, 15, 16, 17, 24, 26, 28, 29, 30, 41, 45, 46, 246, 337, 338, 340, 343, 344, 345, 346, 347, 350 तथा 351 में शिक्षा के विविध पक्षों की ओर स्पष्ट संकेत दिये गये हैं।

भारतीय शासन की शिक्षा नीति

स्वतन्त्रता के बाद भारत सरकार और राज्य सरकारें राष्ट्रीय प्रगति और सुरक्षा के प्रभावी साधन के रूप में शिक्षा पर अधिकांश ध्यान देती रही है अनेक आयोगों तथा समितियों ने शैक्षिक पुर्ननिर्माण की समीक्षा की।

शिक्षा आयोग 1964–66 ने यह संस्तुत किया था कि भारत सरकार एक राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषण करें। स्वतन्त्र भारत में अभी तक तीन राष्ट्रीय शिक्षा नीतियाँ घोषित की जा चुकी है, जिसकी प्रस्तुत शोध में उत्तर प्रदेश के विशेष संदर्भ में समीक्षा की जायेगी।

भारतीय शिक्षा पर विहंगम दृष्टिकोण

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इण्टर आयोग की सिफारिशों के अनुरूप शिक्षा व्यवस्था की जा रही थी जिससे भारत में शिक्षा की सामान्य परिषद (General Council of Education in India) के गठन का प्राविधान किया गया और तत्कालीन भारतीय शिक्षा नीति के विपरीत एक ऐसा आन्दोलन प्रारम्भ किया गया, जिसमें लार्ड रिपन को अंग्रेजी शिक्षा अधिकारियों की अनुदार शिक्षा नीति से अवगत कराते हुये शिक्षा की जाँच कराकर उसके विकास हेतु पथ प्रदर्शन करने का अनुरोध किया गया। तत्कालीन गर्वनर जनरल लार्ड रिपन ने इस प्रतिवेदन को स्वीकार कर 3 फरवरी 1882 को भारतीय शिक्षा आयोग की नियुक्ति की ओर इसे सर विलियत हण्टर के नेतृत्व में कार्य करने की अनुमति दी गयी। सर विलियम हण्टर की समिति में 20 सदस्य थे जिसमें 7 भारतीय थे। इस समिति ने 8 बिन्दुओं के अर्न्तगत शिक्षा के विकास के क्षेत्र में संस्तुतियाँ प्रस्तुत की और इस समिति को कतिपय विचारणीय बिन्दु भी निर्देश के रूप में दिये गये जिनका विवरण निम्न लिखित है–

1. सरकार को मिशनरियों के पक्ष में प्रत्यक्ष शैक्षिक प्रयास से हट जाना चाहिए अथवा नही, जैसा कि 1854 के घोषणा पत्र में आशा व्यक्त की गयी थी।
2. सरकार की धार्मिक शिक्षा के सम्बन्ध में क्या नीति होना चाहिए। इसे विद्यालयों में किस सीमा तक और किस रूप व विषय में पढ़ाया जाना चाहिए अथवा नहीं। इस विषय में आयोग ने सम्पूर्ण देश का सर्वेक्षण किया तथा 1883 में विस्तृत प्रतिवेदन सरकार के समक्ष प्रस्तुत किया जिसमें देशी शिक्षा को प्रोत्साहन, प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा, उच्च शिक्षा, नारी शिक्षा और सरकारी सहायता आदि पर पर्याप्त विचार कर संस्तुतियाँ की गयी थीं।
3. भारत में बढ़ती हुयी राजनीतिक व्यग्रता तथा शिक्षा के क्षेत्र में वाद–विवाद की अवधि की विवेचना के मध्य में 1899 में भारतीय शासन की बागडोर गर्वनर जनरल लार्ड कर्जन ने संभाली। लार्ड कर्जन का विश्वास था कि शिक्षा में सुधार करके ही प्रशासन को कुशल बनाया जा सकता है। उसके मतानुसार प्रारम्भिक शिक्षा पर अधिक प्रयास किया जाना संगत था। जबकि उच्च शिक्षा को वह सरकारी नियन्त्रण में ही रखना चाहता था, अर्थात् कर्जन का उद्देश्य शिक्षा की अपेक्षा राजनीतिक मन्तव्यों की संतुष्टि था। सितम्बर 1901 में लार्ड कर्जन ने शिमला में आयोजित एक सम्मेलन में 150 प्रस्तावों के द्वारा शिक्षा

की नयी नीति प्रस्तावित की। इस शिक्षा सम्मेलन में एक भी भारतीय नहीं था और इसकी मन्त्रणा को यथा सम्भव गोपनीय रखा गया इसलिए शिक्षा के इतिहास में इसे 'गुप्त शिक्षा के सम्मेलन' के नाम से जाना जाता है। किन्तु इसकी समाचार पत्रों द्वारा जानकारी होने पर विश्व विद्यालयों पर सरकारी नियन्त्रण की इतनी कटु आलोचना हुयी कि 1902 में 'सर टामस रेले' की अध्यक्षता में भारतीय विश्व विद्यालय आयोग की नियुक्ति करनी पडी, जिसके फलस्वरूप लार्ड कर्जन द्वारा भारतीय विश्वविद्यलाय अधिनियम 21 मार्च 1904 को पारित किया गया।

4. 1904 में पारित विश्व विद्यालय अधिनियम में विश्व विद्यालयी शिक्षा, मात्र परीक्षा संस्था न रहकर शिक्षण संस्था भी बन गयी। जिसके फलस्वरूप छात्रों की संख्या में अभिवृद्धि हुयी किन्तु 20वीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशक में शिक्षा के क्षेत्र में जन आन्दोलन प्रारम्भ हुया यहाँ तक कि 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना के साथ मुसलमानों की शिक्षा के लिए अलग से अनेक शिक्षा संस्थाएं स्थापित की गयीं। 7 अगस्त 1905 को राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रमुख चरणों में (1) स्वराज्य की प्राप्ति, (2) स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग (3) विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार के साथ चौथा बिन्दु राष्ट्रीय शिक्षा की मांग भी थी, जिसमें शिक्षा पर भारतीय नियन्त्रण, शिक्षा के आदर्श मात्र भूमि का प्रेम, राष्ट्रीय चरित्र का विकास, भारतीय भाषाओं का विकास, व्यवसायिक शिक्षा और पाश्चात्य ज्ञान के महत्व को निरूपित किया गया था।

5. शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर विकास की दिशाओं में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के निमित्त केन्द्रीय धारा सभा के सदस्य के रूप में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य किये जाने का प्रस्ताव रखा। जिसे 1913 का शिक्षा नीति सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव कहा जाता है। 1917 से 1919 तक कलकत्ता विश्व–विद्यालय आयोग ने उच्च शिक्ष के अतिरिक्त माध्यमिक शिक्षा के विकास करने का सुझाव दिया। इसी आयोग ने 15–16 वर्ष की आयु की लड़कियों के लिए पर्दा विद्यालय और विश्वविद्यालय के अर्न्तगत नारी शिक्षा के लिए विशेष परिषद गठित करने का भी प्रस्ताव रखा।

6. 1920 से 1922 तक 'मोण्टेग्यू चैम्स फोर्ड' के शिक्षा सुधार के भी प्रयास एक आन्दोलन के अर्न्तगत किये गये। प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति पर 1919 के भारत सरकार अधिनियम के अर्न्तगत 'द्वैध शासन प्रणाली' की स्थापना हुयी और इसी शासन की अवधि के अर्न्तगत 'हर्टाग समिति' की स्थापना की गयी, जिसने प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न विषयों का पाठ्यक्रम तथा अध्यापकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था किये जाने का प्राविधान भी एक प्रमुख संस्तुति थी। जबकि विश्व विद्यालय स्तर पर शिक्षा के स्तर में विकास और प्रवेश में कठोरता किये जाने की संस्तुति की गयी थी। इसके साथ ही विश्व विद्यालयों में औद्योगिक शिक्षा तथा रोजगार कार्यालय भी स्थापित किये जाने की संस्तुति की गयी थी।

7. 1935 के अधिनयम में शिक्षा के क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन किये गये और शिक्षा के बेसिक स्तर राष्ट्रीय शिक्षा के रूप में स्वीकार किया गया तथा सीनियर बेसिक स्कूलों को 8वीं कक्षा तक 14 वर्ष की आयु तक अनिवार्य किया गया। हाई स्कूल शिक्षा स्तर पर शिक्षा का अनुपात 5 : 1 के अनुपात में रखा गया। इसके साथ ही विश्व विद्यालय शिक्षा स्तर पर उपाधि पाठ्यक्रम की अंवधि 3 वर्ष की गयी। तकनीकी और व्यवसायिक शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, अध्यापकों का प्रशिक्षण आदि अनेक सुझाव प्रस्तावित किये गये।

ब्रिटिश कालीन शिक्षा की विशेषताएं

1. शिक्षा के उद्देश्यों में भारतीयों को बौद्धिक तथा नैतिक विकास करने के लिए लार्ड मैकाले से लेकर चार्ल्स वुड तक के कार्यकाल में महत्वपूर्ण शिक्षा के बिन्दु मात्र इसलिए कार्यान्वित किये गये, जिससे के अंग्रेजी शासन सत्ता की नींव सुदृढ़ हो सके।

2. भारत में यूरोपीय और अंग्रेजी साहित्य और भाषा का अध्ययन प्रचलित किया गया तथा विज्ञाान की शिक्षा को भी प्रदान किया गया।

3. शिक्षा प्राप्त नवयुवकों को आर्थिक व्यवस्था के साथ जोड़कर न केवल औद्योगिक क्रांति अपितु अर्न्तराष्ट्रीय क्षेत्र में भी भारतीय आर्थिक व्यवस्था का भी अध्ययन किया गया और सर्वाधिक महत्वपूर्ण विषय था "भारतीयों को शिक्षित कर अंग्रेजी शासन सत्ता में प्रयुक्त कर अंग्रेजी शासन को दृढ़ बनाया जाय जो अपने स्वरूप में तो भारतीय है। किन्तु नैतिकता और चरित्र मे उनकी सोच अंग्रेजी ही हो।

4. अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव में केवल शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों को ही छाँट–छाँट कर उच्च शिक्षा की ओर प्रेरित किया जाय जिसे निस्यन्दन शिक्षा सिद्धान्त भी कहते हैं।

5. शिक्षा संस्थाओं की निरन्तर स्थापना करना तथा उच्च शिक्षा हेतु अनेक डिग्री कालेज खोलना और उन्हीं के अनुरूप पाठ्यक्रम की व्यवस्था करना भी अंग्रेजी शिक्षा का एक महत्वपूर्ण कार्य था। इस पाठ्यक्रम में यूरोपीय साहित्य और विज्ञान का स्थान प्रमुख था।

6. ब्रिट्रिश काल में औपचारिक परीक्षा प्रणाली का प्रयोग किया गया, जिसमें मौखिक, लिखित तथा क्रियात्मक परीक्षा के द्वारा प्रथम, द्वितीय, तृतीय और अनुत्तीर्ण घोषित किया जाता था जो अंग्रेजी शासन में ही प्रारम्भ किया गया था।

7. अध्यापकों का प्रशिक्षण भी 3 स्तरों पर प्राथमिक, माध्यमिक और स्नातक स्तरों पर किया गया, जिसमें एच0 टी0 सी0, बी0 टी0 सी0 और बी0 टी0 की उपाधियों का प्राविधान किया गया जो प्राथमिक स्तर से स्नातक स्तर तक दी जाती थी। इसके साथ ही विभागीय परिक्षाओं में एल0 टी0 उपाधि का भी प्राविधान उ0 प्र0 में किया गया।

8. बुनियादी शिक्षा के क्षेत्र में गांधी जी की बुनियादी शिक्षा योजना की स्वीकृति मिली, जिसमें बच्चों को अनिवार्य रूप से दस्तकारी और शिल्पकला के द्वारा उत्पादन से अर्थ प्राप्ति को कार्यान्वित किया गया था।

9. स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में अंग्रेजी शासन काल में कोई प्रगति नहीं की गयी, किन्तु बहुत कम प्रतिशत स्त्री शिक्षा का कार्य, बंगाल, मद्रास और बम्बई प्रान्तों में किया गया।

10. अंग्रेजी शासनकाल में अंग्रेजी के प्रति आस्था पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों को उच्च पद पर नौकरी मिलना और अनेक नये प्रयोग कर अंग्रेजी माध्यम से वैज्ञानिक शिक्षा प्रदान करना इस युग की प्रमुख विशेषताएं रही हैं किन्तु इसके साथ ही ऐसी अनेक कमियाँ भी अंग्रेजी शिक्षा में रही जिसके कारण स्वदेशी शिक्षा संस्थाओं की उपेक्षा हुयी तथा भारतीय संस्कृति के विकास को कोई स्थान नहीं दिया गया। यद्यपि अंग्रेजी शासनकाल में धर्म विहीन शिक्षा को प्रोत्साहन मिला तथापि राष्ट्रीय चरित्र निर्माण की पूर्ण उपेक्षा की गयी और अंग्रेजी सरकार का शिक्षा पर नियन्त्रण बना रहा जो आज भी मानसिक दास्ता के प्रतीक के रूप में अभिव्यक्त है।

स्वतन्त्रता के उपरान्त भारतीय संविधान में शिक्षा के मौलिक अधिकार को स्वीकार किया गया है जिसमें जाति वर्ण, रंगभेद की समानता के आधार पर समस्त स्त्री पुरूषों को शिक्षा का अधिकार दिया जाना एक मौलिक विशेषता है। 26 जनवरी 1950 को लागू इस संविधान में संघ सरकार और राज्य सरकार को जो शासन क्षेत्र विभाजित किये गये उनमें शिक्षा संवर्ती सूची में रखी गयी, जिसे केन्द्र सरकार, राज्य सरकार और दोनों ही सरकारें नियमन करती हैं। किन्तु शिक्षा के प्रचार–प्रसार का कार्य राज्य सरकारों में केन्द्रित है और नीति–निर्धारण विषयक कार्य संघ–सरकार सुनिश्चित करती है। स्वतन्त्रता प्राप्त करने के तुरन्त बाद भारतीय शिक्षा प्रणाली के पुर्नगठन करने और शिक्षा के अवसरों का विस्तार करने की समस्या का निराकरण करना प्राथमिकता थी। प्राथमिक शिक्षा प्रौढ़ शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा तथा विज्ञान और तकनीकी शिक्षा में गुणात्मक सुधार करना तथा लड़कियों को भी समान रूप से शिक्षा देना इसका प्रमुख उद्देश्य था। हरिजनों, अल्पसंख्यकों और ऐसे ही अन्य क्षेत्रों में निःशुल्क शिक्षा देना भी सरकार का उद्देश्य रहा है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त केन्द्र सरकार ने विश्व विद्यालय शिक्षा आयोग का गठन 1948 में डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन की अध्यक्षता में किया था। 1952 में लक्ष्मण स्वामी मुदालियर ने माध्यमिक शिक्षा के विषय में आयोग में विचार किया और 1964 में प्रोफेसर दौलत सिंह कोठारी के नेतृत्व में सम्पूर्ण शिक्षा नीति, शिक्षकों के वेतनमान आदि पर विस्तार से विवेचना की गयी। इसके अतिरिक्त समय–समय पर बनी समितियों ने बालिकाओं की शिक्षा, नारी शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, सतत् शिक्षा, साक्षरता आदि पर विस्तृत विवेचना की और अन्ततः 1984 में एक नयी शिक्षा नीति की अवधारणा करनी पड़ी, जिसे शिक्षा की चुनौती शीर्षक नाम से प्रस्ताव डा0 कर्णसिंह ने सभी विद्यालयों को विचारने हेतु प्रस्तुत किया, जिससे कि सम्पूर्ण देश में राष्ट्रीय शिक्षा नीति की एकरूपता बनी रह सके। इस समय डा0 कर्णसिंह केन्द्रीय सरकार में शिक्षा मन्त्री थे। 1986 में इस नयी शिक्षा नीति को सम्पूर्ण देश में लागू किया गया।

नयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति के मूल्यांकन के लिए राममूर्ति समिति का गठन किया गया और सन् 1986 से 1992 तक सम्पूर्ण नयी शिक्षा की संरचना में संशोधन किये गये, जिन्हें आज हम नयी शिक्षा नीति के रूप में अध्ययन करते हैं।

शिक्षा के विकास हेतु स्वतन्त्रता के पूर्व एवं पश्चात् घोषित शिक्षा नीतियों की सारणीबद्ध किया गया है जो निम्नवत् है–

सारणी – 1

शिक्षा नीति	वर्ष
स्वतन्त्रता के पूर्व	
1. नेशनल एजूकेशन पालिसी	1904
2. नेशेनल एजूकेशन पालिसी	1913
स्वतन्त्रता के बाद	
1. नेशनल एजूकेशन पालिसी	1968
2. नेशनल पालिसी आफ एजूकेशन	1967
3. नेशनल एजूकेशन पालिसी	1979
4. नेशनल एजूकेशन पालिसी	1986

स्वतन्त्रता पूर्व

स्वतन्त्रता के पूर्व लार्ड कर्जन के समय में सन् 1904 में शिक्षा के विषय में सबसे पहले व्यापक विचार किया गया किन्तु विश्व विद्यालय क्षेत्र तक ही सीमित था, जबकि 1913 में शिक्षा नीति सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव प्राथमिक, माध्यमिक, विश्व विद्यालयी तथा अन्य शिक्षा क्षेत्रों में कार्यान्वित की गयी। इस पर विचार करना नितान्त आवश्यक है कि उन नीतियों का भारतीय शिक्षा पद्धति पर कितना व किस क्षेत्र तक प्रभाव पड़ा साथ ही 1986 की नयी शिक्षा नीति में इस संरचना का मूलाधार के रूप में कितना प्रयोग किया गया यही इस शोध बिन्दु का अभीष्ठ है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1904 (National Education Policy - 1904)

भारतीय विश्व विद्यालय आयोगों के सुझावों को पुर्नगठित करने एवं उसे शक्तिशाली बनाने की दिशा में वर्ष में प्रयास किया गया और मार्च को विश्वविद्यालय अधिनियम पारित कर दिया गया, जिससे अनेक दोष दूर हो जाने पर एक ओर विश्वविद्यालय में शिक्षण प्रारम्भ हुआ और दूसरी ओर महाविद्यालय में निरीक्षण किये जाने के फलस्वरूप शिक्षण स्तर में विकास हुआ। इस पाठ्यक्रम में पुस्तकीय ज्ञान और साहित्यक विषयों की प्रधानता तो यथावत् बंनी रही किन्तु यह पाठ्यक्रम जीवनोपयोगी शिक्षा के लिए कोई प्राविधान न कर सका।

लार्ड कर्जन ने शिमला में शिक्षाविदों का जो सम्मेलन आयोजित किया था उसमें एक भी भारतीय शिक्षाविद् नहीं था अतः शिक्षा आयोग की संस्तुतियाँ, स्वाभाविक है भारतीय जनजीवन के न तो अनुरूप ही थी और न ही इनको राष्ट्रीय शिक्षा धारा में डालने का कोई प्रयास था। इस प्रस्ताव में शिक्षा प्रणाली के दोषों की गणना अधिक थी और उसके सुधार के लिए कतिपय सुझाव सुनिश्चित किये गये थे। जैसे–

1. प्राथमिक शिक्षा का विस्तार राज्य का उत्तरदायित्व है।
2. माध्यमिक शिक्षा के सम्बन्ध में यह प्रणाली आर्थिक स्थायित्व सुनिश्चित करें और इसकी प्रबन्ध समिति भी उचित ढंग से गठित की गयी हैं। माध्यमिक स्तर पर उपर्युक्त अध्यापकों के द्वारा दिया गया शिक्षण –शिक्षा स्वास्थय, मनोरंजन, चरित्र और अनुशासन का विकास करने योग्य है।
3. इस प्रस्ताव में यह भी समायोजित किया गया कि शिक्षा धर्म निरपेक्ष हो और इनकी प्रतिपूर्ति ही 1904 के विश्वविद्यालय अधिनियम में की जाये। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम 1904 की रचना की गयी। 1904 की शिक्षा नीति सम्बन्धी प्रस्ताव में भारतीय विश्व विद्यालयों के प्रशासन, अधिकार और कर्त्तव्यों के क्षेत्र का भी पुनः आंकलन किया गया।

भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम 1904 के अर्न्तगत जो शिक्षा विशेषताएं सम्मिलित की गयी उनका विवरण निम्नवत् है–

1. विश्वविद्यालयों को परीक्षा संचालन के अतिरिक्त शिक्षण का भी अधिकार दिया गया तथा इस अधिकार के अर्न्तगत अध्यापकों की नियुक्ति करना, अनुसंधान करना, पुस्तकालय और प्रयोगशालाओं की व्यवस्था करना भी सम्मिलित था। साथ ही विश्वविद्यालयों को विद्यार्थियों में अनुशासन की योजनाओं को क्रियान्वित करने का भी अधिकार दिया गया।
2. सीनेट के सदस्यों की संख्या 50 से 100 के बीच में निर्धारित की गयी और इसके कार्यकाल को 5 वर्ष की अवधि के लिए व्यवस्था दी गयी।
3. सीनेट के सदस्यों द्वारा चुने गये अन्य सदस्यों की संख्या 15 से 20 के बीच रखी गयी और अधिकतम 20 सदस्यों को मद्रास, बम्बई व कलकत्ता के विश्वविद्यालयों के लिए निर्धारित किया गया।

4. विश्वविद्यालयों को सिंडीकेट में प्रोफेसर के उचित प्रतिनिधित्व को अनिवार्य किया गया।
5. सरकार ने सीनेट द्वारा बनाये गये नियमों की स्वीकृति बनाये रखने का अधिकार अपने पास सुरक्षित रखा।
6. सिंडीकेट को यह अधिकार दिया गया कि वह नये महाविद्यालयों का निरीक्षण करने के उपरान्त ही नये विद्यालयों को स्वीकृति के लिए संतुष्ट करें।
7. इस अधिनियम ने विश्वविद्यालयों के क्षेत्र और सीमाओं का भी निर्धारण कर दिया जिससे कि एक महाविद्यालय दो या दो से अधिक विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध न हो सके।
8. इस अधिनियम का प्रत्यक्ष लाभ यह था कि विश्व विद्यालय मात्र परीक्षा संचालन की संस्थाएं नहीं रहे यद्यपि 1902 से लेकर 1912 तक केवल 170 महाविद्यालय ही कार्यरत थे। लार्ड कर्जन की इस नीति की प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक ही थी क्योंकि इस नीति में शिक्षा का गुणात्मक विकास नहीं था। 1905 में इसका विरोध करने के लिए स्वदेशी आन्दोलन प्रारम्भ हुआ और 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना के साथ ही साथ मुसलमानों ने भी प्रत्यक्ष रूप से अलग से संस्थाएं प्रारम्भ करने की मांग की। भारतीय शिक्षा के विकास में यह आन्दोलन एक मील का पत्थर है।

लार्ड कर्जन के 1904 के प्रस्ताव के विरूद्ध शिक्षा की नयी रणनीति प्रस्तावित की गयी जिसमें भारतीय शिक्षा व्यवस्था के पाश्चात्यीकरण के विरूद्ध राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रयास सम्मिलत रूप से किये गये। महात्मा गाँधी ने भी अपने समाचार पत्र 'यंग इण्डिया' में इस शिक्षा व्यवस्था को अन्याय पूर्ण विदेशी संस्कृति के प्राचारार्थ हस्तशिल्प का अभाव और अंग्रेजी माध्यम के होने के कारण सम्पूर्ण देश में इसे स्वीकार न किये जाने का आग्रह किया। इसे राष्ट्रीय नीति प्रतिपादित करने के लिए कतिपय बिन्दु भी विचारार्थ प्रस्तुत किये गये–

9. भारतीय नियन्त्रण

भारतीय शिक्षा पर विदेशी नियन्त्रण अनुचित है इसे भारतीय शिक्षाविदों द्वारा ही संचालित एवं नियन्त्रित होना चाहिए।

२. शिक्षा का आदर्श

भारतीय शिक्षाविदों का निश्चित मत था कि राष्ट्रीय शिक्षा का आधार भक्ति, ज्ञान और नैतिकता के आदर्श होना चाहिए जिसे हम धार्मिक भावना भी कह सकते हैं।

३. देश प्रेम की भावना

लार्ड कर्जन ने केवल अंग्रेजी प्रशासन को चलाने के लिए भारतीयों का उपयोग करने के लिए नीति बनायी थी जबकि भारतीय शिक्षा का मूलाधार देशप्रे और मातृभूमि के लिए आदर भावना था, और यह प्रेम मातृ भूमि के लिए आत्म बलिदान की सीमा तक भी हो सकता था।

४. राष्ट्रीय चरित्र

राजनीतिक दृष्टि से राजनेताओं का यह मानना था कि जब तक राष्ट्रीय चरित्र की शिक्षा नही दी जाती तब तक देश परतंत्र ही रहेगा और देश में नौकरशाही बलवती रहेगी।

५. भारतीय भाषाओं का विकास

भारत राष्ट्र में अनेक भाषाएं बोली जाती हैं जिनका एक समृद्ध साहित्य प्राचीनता और प्रादेशिक आधार है अतः भारत राष्ट्र में समस्त भारतीय भाषाओं के अध्ययन पर बल देना चाहिए और अंग्रेजी को देश के प्रशासन से हटा देना संगत है।

६. व्यवसायिक शिक्षा का उन्नयन

विभिन्न शिल्पों और व्यवसायों का देश भारत है। इन स्वदेशी शिल्पों और व्यवसायों का विकास करना भारतीय शिक्षा नीति का उद्‌देश्य होना चाहिए न कि विदेशी वस्तुओं के लिए भारत को व्यापारिक बाजार बनाया जाय। अतः शिक्षा को व्यवसाय से जोड़ो को राष्ट्रीय विकास में एक गणक मानना चाहिए।

७. पाश्चात्य ज्ञान का समावेश

भारतीय शिक्षा के विकास में वैज्ञानिक युग के महत्व को नकारा नहीं जा सकता अतः पाश्चात्य वैज्ञानिक ज्ञान जो राष्ट्रीय संदर्भ में विकास कारक है उसे पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाना भी संगत है। अतः राष्ट्रीय शिक्षा में पाश्चात्य ज्ञान आवश्यक है।

उपर्युक्त आदर्शों और उद्‌देश्यों को प्राप्त करने के लिए राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाओं का गठन किया गया और 51 राष्ट्रीय हाई स्कूल खोले गये, जिसके संचालन के लिए एक राष्ट्रीय

शिक्षा प्रसार समिति (Society for the promotion of national education) का गठन किया गया। इसके साथ ही कलकत्ता में एक राष्ट्रीय कालेज की स्थापना की गयी।

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने 1901 में विश्व भारती के नाम से एक आश्रम की स्थापना की। आर्य प्रतिनिधि सभा ने हरिद्वार और वृन्दावन में गुरूकुल स्थापित किये। देश में अनेक राष्ट्रीय शिक्षा की संस्थाएं भी खोली गयी, जिनमें निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा का प्रस्ताव (1910 का कांग्रेस का अधिवेशन, इलाहाबाद) पारित किया गया। और इसके साथ ही गोखले ने विधान सभा ने अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा बिल प्रस्तुत कर इसकी प्रबल संस्तुति की।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1913 (National Education Policy - 1913)

बड़ौदा महाराज सियाजी राव गायइवाड ने अपने राज्य में निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा का शुभारभ 1906 में किया था, जिससे प्रेरित होकर गोपाल कृष्ण गोखले ने प्राथमिक शिक्षा नीति का निर्धारण सम्पूर्ण देश के लिए करने का संकल्प किया। गोपाल कृष्ण गोखले फर्ग्यूसन कालेज को प्राचार्य थे और असेम्बली के भी सदस्य थे। 1910 से 1913 के बीच प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिए अथक प्रयास किया, उनका निश्चित मत था कि अशिक्षित और अज्ञानी राष्ट्र कभी भी उन्नति नहीं कर सकता है उन्होंने 19 मार्च 1910 को केन्द्रीय धारा सभा के समक्ष प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव रखा था वह निम्नवत् है–

"यह सभा संस्तुति करती है कि समस्त राष्ट्र में प्रारम्भिक शिक्षा को निःशुल्क और अनिवार्य बनाने की दिशा में प्रयास किया जाय तथा सरकारी तथा गैर सरकारी अधिकारियों का एक संयुक्त आयोग इस सम्बन्ध में निश्चित प्रस्ताव तैयार करने के लिए शीघ्र ही नियुक्त किया जाय।"[1]

16 मार्च 1911 को अपना विधेयक विधान सभा में प्रस्तुत करते हुए गोखले ने स्पष्ट कहा कि इस विधेयक को प्रस्तुत करने का यही उपर्युक्त अवसर है। इस विधेयक में पांच बिन्दु स्पष्ट रूप से भारत सरकार के समक्ष प्रस्तुत किये गए थे–

1. भारत के प्राथमिक शिक्षा की दिशा में पहल करने का उपर्युक्त समय यही है अर्थात वर्ष 1911 का समय ही वह बिन्दु है जहाँ से भारत सरकार प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य एवं निःशुल्क कर सकती है।

---

1. The council recommends that begining should be made in the direction of making elementary education free and compulsary throughout the country and that a mixed commission of officials and non-officials be appointed at on early date the frame definite proposals." - Gopal Krishna Ghokley on 19 - 03 - 1910

2. यह विधेयक नगर पालिका और जिला परिषद क्षेत्रों के लिए ही लागू किये जायें।
3. प्रान्तीय सरकार की पूर्ण अनुमति के बिना किसी अन्य क्षेत्र को इस दिशा में सम्मिलित न किया जाय।
4. निःशुल्क अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा पहले चरण में बालकों के लिए ही लागू की जाय किन्तु इसमें यह प्राविधान रहे कि स्थानीय संस्थाएं अथवा स्थानीय निकाय इसे बालिकाओं के लिए भी लागू कर सकती है।
5. अनिवार्य शिक्षा प्राप्त करने की आयु 6 वर्ष से 10 वर्ष तक की रखी जाय।
6. शासन ने भारत सरकार ने इस प्रस्ताव को जनमत संग्रह के लिए प्रान्तीय सरकारों, विश्वविद्यालय तथा अन्य संस्थाओं में भेज दिया।
7. गोखले का यह बिल 25 मतों से पराजित हो गया और सरकारी प्रवक्ता सर हारकोर्ट बटलर ने इसका घोर विरोध किया। उनका कहना था कि न तो प्रान्तीय सरकारें इस विधेयक के पक्ष में है और न ही सामाजिक संस्थाएं/राष्ट्र भी अनिवार्य शिक्षा के लिए तैयार है।
8. इन नये शिक्षा विधेयक को पारित करने में नये कर लगाने पड़ते जिसके लिए शैक्षिक संस्थाएं भी तैयार नहीं थी। परिणाम स्वरूप गोखले के इस विधेयक को अस्वीकार कर दिया गया, किन्तु गोखले का यह विश्वास था कि इस मांग को विधेयक के रूप में प्रस्तुत करने पर राष्ट्र शिक्षा के प्रति जागरूक होगा और उनकी यह आशा निर्मूल नहीं थी। उन्होंने कहा "मैं जानता हूँ कि मेरा यह विधेयक उखाड़ फेंक दिया जाएगा, किन्तु इस सम्बन्ध में न तो मुझे शिकायत है और न ही निराशा। मैं महसूस करता हूँ कि भारत की वर्तमान पीढ़ी असफलताओं के द्वारा ही अपने राष्ट्र की सेवा कर सकती है।[1]

गोखले का विधेयक अस्वीकार होने के बावजूद भी देश पर प्रभावी रहा। क्योंकि देश में प्राथमिक शिक्षा की मांग धीरे–धीरे बढ़ती गयी और देश के अनेक प्रान्तों में प्राथमिक शिक्षा अधिनियम पारित किये गये जिसके फलस्वरूप भारत सरकार ने 1913 में शिक्षा का नीति सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव पारित किया और इसे शिक्षा नीति सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव 1913 कहा जाता है।

1. My Lord, I know that my bill will be thrownout before the day closes, I make no complain, I shall net feel depressed. I have always felt that we the present generation in India can only hope to serve our country by our fail uses.

- G. K. Gokhley

स्त्री शिक्षा 1913-1947

आज की परिस्थिति में शिक्षा के महत्व को सभी वर्गों और पुरूष व स्त्रियों की शिक्षा के स्तर को समान रूप से महत्व दिया जा रहा है। जीवन के विभिन्न व्यवसायिक औद्योगिक तथा वैज्ञानिक क्षेत्रों में भी स्त्री शिक्षा को पुरूष के समान ही महत्वपूर्ण स्थान देकर विकसित किये जाने की अवधारणा समाज में निरन्तर बढ़ती जा रही है। प्राचीन काल में स्त्रियाँ भी पुरूषों के समान ही शिक्षित और विदुषी होती थी। ऐसी विदुषियों में गार्गीय, मैत्रीय, शकुन्तला आदि के ऋषि कुलों में अध्ययन करने प्रमाण प्राप्त होते हैं। अवान्तर काल में महिलाओं को पुरूष के अधिपत्य से स्वीकार कर शिक्षा से वंचित कर दिया गया। उस युग में स्त्री शिक्षा के लिए न तो समाज ही महत्व देता था और न ही सह शिक्षा का प्रचलन समाज को स्वीकार था। नये विद्यालय विशेषकर महिलाओं के लिए खोले ही नहीं गये और घर पर उन्हें शिक्षित करने का प्रतिशत बहुत कम था। पर्दा प्रथा, बाल विवाह आदि कुरीतियों ने भी स्त्री शिक्षा को समाज के लिए आवश्यक नहीं समझा। फलस्वरूप स्त्री को स्वावलम्बी जैसे विषय से पृथक रहकर सीमित हो जाना उनकी नियति थी, किन्तु विकास गामी देशों में स्त्रियों को पुरूष के समान भागीदारी देकर जो सामाजिक विकास हुआ है। उसमें नारियों का महत्वपूर्ण योगदान है। बच्चों के बौद्धिक विकास में माताओं का विशेष हाथ रहता है। जबकि इन्हीं माताओं को समाज ने अशिक्षित रखा है। उत्तम और उच्च शिक्षा प्रदान का इन महिलाओं के द्वारा भावी राष्ट्र के निर्माण की योजना में जो स्वरूप प्रदान किया जाएगा वह निश्चय ही फलीभूत होगा। भारत वर्ष में सबसे पहले स्त्री शिक्षा की आवश्यकता 1913 में अनुभव की गयी। जिसमें सरकार का प्रस्ताव था कि नारी शिक्षा के लिए एक विश्व विद्यालय की स्थापना की जाए और महाविद्यालयों में भी स्त्रियों को शिक्षित किए जाने का संकल्प किया गया। किन्तु यह प्रस्ताव प्रथम विश्व युद्ध के प्रारम्भ हो जाने के कारण क्रियान्वित नहीं किया जा सका। विश्व युद्ध की समाप्ति के उपरान्त जब 1917 में कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग की समीक्षा की गयी तब स्त्रियों के शिक्षा का प्रश्न पुनः सामने आया और एक बार फिर नारी शिक्षा के लिए सरकारी प्रयास प्रारम्भ हुआ। कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग ने भी नारी शिक्षा के लिए कतिपय सुझाव दिए थे। जिनमें निम्नलिखित तीन बिन्दु प्रमुख है–

1. नारी शिक्षा के लिए 15 व 16 वर्ष की अवस्था की लड़कियों को लिए पर्दा विद्यालय खोलें जाएं। (इसमें हिन्दू अथवा मुसलमान लड़कियों का कोई भेद नहीं किया जाय।)

2. कलकत्ता विश्वविद्यालय में नारी शिक्षा के लिए एक विशेष परिषद (Special Board of Women Education) का गठन किया जाय जिसमें शैक्षिक आवश्यकता के अनुरूप विशेष पाठ्यक्रम अवधारित किए जाएं।

3. देश में जिन छः विश्वविद्यालयों की स्थापना की जा चुकी थी उनमें समन्वय स्थापित करने के लिए अर्न्तविश्वविद्यालयी परिषद की रचना की जाए जिससे कि देश में विभिन्न संस्कृतियों का समन्वित स्वरूप भी शिक्षा के माध्यम से विकसित हो सकें।

मुस्लिम काल की स्त्री शिक्षा में यद्यपि मुस्लिम विदुषियों के उदाहरण प्रस्तुत थे तथापि स्त्री शिक्षा का ह्रास निरन्तर होता गया। पर्दा प्रथा के प्रचलन से न तो स्त्रियों को मदरसे या मकतबों में अध्ययन हेतु जाने की आज्ञा थी। और न ही घर पर मौलवी या मुल्ला उन्हें पढ़ा सकते थे। इसी प्रकार हिन्दू समाज में भी जो कट्टर पन था इसके कारण नारी शिक्षा का निरन्तर ह्रास होता रहा। मुस्लिम विदेशियों में रजिया सुल्ताना, चाँद बीबी, जेबुन निशा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। उसी काल खण्ड में जीजा बाई, हिन्दू विदुषियों में रानी रूपमती, दुर्गावती और इन्दौर की अहिल्या बाई के नाम इतिहास प्रसिद्ध हैं। किन्तु समाज में शिक्षा का प्रसार और प्रचार नगण्य था। प्राथमिक स्तर पर बड़ी लड़कियों को मौलवी अथवा पण्डितों द्वारा घर पर अथवा प्राथमिक विद्यालयों पर शिक्षा की व्यवस्था की गयी हो, किन्तु माध्यमिक और उ़च्च स्तर पर स्त्रियों की शिक्षा नहीं के बराबर थी।

अंग्रेजी शासन काल में सबसे पहले 1913 में लार्ड कर्जन ने स्त्री शिक्षा की ओर ध्यान आकर्षित किया। जिसने एक आन्दोलन का स्वरूप ग्रहण कर लिया। स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान स्त्री शिक्षा का विकास विद्यालयों ओर समाज की संस्थाओं में तीर्व गति से हुआ तथा सामाजिक जागरूकता के साथ स्त्रियों ने स्वतन्त्रता आन्दोलन की भागीदारी करते समय स्वयं की और महिला जगत को शिक्षित करना आवश्यक समझा। जिसके परिणाम स्वरूप राष्ट्रीय आन्दोलन के युग में महिलाओं के अनेक संगठन बने और उनमें कार्य करने की क्षमतओं को महिलाओं ने शिक्षा के माध्यम से ही विकसित किया। ऐसी महिला संस्थाओं में बीस के दशक में भारतीय नारी संगठन (Women's Indian Association) और राष्ट्रीय महिला परिषद (National Council of Womens) जैसी संस्थाओं की स्थापना की गयी। तथा 1927 में अखिल भारतीय स्तर की एक भारतीय नारी सम्मेलन भी किया गया। इसी युद्ध में बाल विवाह को प्रति बन्धित करने के लिए सरकार ने शारदा बिल प्रस्तुत कर उसे अधिनियम का

रूप देकर कानून बनाया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय भारत वर्ष में लगभग 30 हजार नारी शिक्षा की संस्थाएं थीं और लगभग 50 लाख स्त्रियाँ उनमें शिक्षा ग्रहण कर रहीं थीं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त स्त्रियों की सामाजिक और शैक्षिक स्थिति में अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तन हुये। अज्ञानता, परतन्त्रता, रूढ़िवादिता तथा असहाय स्थितियों से मुक्त होकर नारियाँ अब पुरूषों की भाँति अध्ययन, चिन्तन और वैज्ञानिक सूत्र से देश के विकास कार्य में संलग्न है। स्वतन्त्र भारत की सरकार ने अपने संवैधानिक आमुख में यह स्पष्ट किया है। कि बिना किसी लिंग भेद के समानता और स्वतन्त्रता के अवसर प्रदान किये जायेंगे। इसके अर्न्तगत देश में शिक्षा के स्वरूप के सुनिश्चित करने का कार्य भी किया गया कि प्राथमिक माध्यमिक अैर युवा स्तर तक छात्राओं की शिक्षा की प्रकृति, विषय और ऐसे स्वरूप को विकसित करने का अध्ययन करें जिससे कि उनका जीवन उपयोगी और अधिक खुश हाल हो सके।

भारतीय संविधान में नारी की समकक्षता प्रदान करते हुये यह घोषित किया गया कि राज्य किसी नागरिक के विरूद्ध केवल धर्म, जाति, प्रजाति, लिंग, जन्म, स्थान या इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा। उपर्युक्त तथ्यों के फलस्वरूप सितम्बर 1957 में हुई शिक्षा मंत्रियों की बैठक में एक राष्ट्रीय स्त्री शिक्षा समिति की बैठक में कतिपय शिक्षा सम्बन्धी निर्णय लिये गये। इस समिति की अध्यक्षता केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड की अध्यक्ष श्रीमती दुर्गा बाई देशमुख ने की। उनकी इस समिति में 8 अन्य सदस्य भी थे और इसे दुर्गा बाई देशमुख समिति के नाम से भारतीय शिक्षा के इतिहास में जाना गया है। इस समिति के मुख्य उद्‌देश्य स्त्रियों के शैक्षिक विकास सम्बन्धी सुझावों को प्रस्तुत करना था जिससे कि उनकी सामाजिक और राष्ट्रीय संदर्भों में प्रगति हो सके। मुख्य रूप से सन्दर्भ निम्नलिखित थे–

1. प्राथमिक और माध्यमिक स्तर की शिक्षा के लिए सुझाव देना।
2. प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर बालिकाओं की शिक्षा की समस्याओं को सुलझाना और उनका समुचित विकास करने के लिए सुझाव देना।
3. राष्ट्रीय पुर्न निर्माण में ऐसी महिलाएं जो अशिक्षित, अर्ध शिक्षित हैं। तथा जिन्हें शिक्षा की व्यवसाय के हेतु आवश्यकता भी है। उनके क्षेत्रों को जानना और उसमें विकास की सम्भावनाओं को खोजना।

4. समाज सेवी, महिला कल्याण संगठनों द्वारा उपलब्ध सुविधाओं की सीमाओं का सर्वेक्षण करना तथा महिलाओं को और अधिक सुविधाओं की अपेक्षाओं को पूरा करने के सुझाव देना।

5. प्रौढ़ महिलाओं को व्यवसाय परक शिक्षा और तत्सम्बन्धी प्रशिक्षण देने की सम्भावनाओं पर सुझाव प्रस्तुत करना। जिससे कि ऐसी महिलाओं को व्यवसाय के प्रति रूचि और प्रोत्साहन प्राप्त हो सके।

दुर्गा बाई देशमुख समिति ने दो भागों में अपने सुझाव को शासन को प्रस्तुत किया–

पाठ्यक्रम

1. बालक और बालिकाओं के लिए पाठ्यक्रम की एकरूपता प्राथमिक स्तर पर आवश्यक है और यथा सम्भव बालिकाओं के विशेष विषय संगीत–पेटिंग/ चित्रकला, सिलाई, दस्तकारी के कार्य इसी प्राथमिक स्तर पर समान रूप से सिखाये जायं।

2. माध्यमिक स्तर पर बालकों और बालिकाओं के विषयों का चयन उनकी अभिरूचि के अनुसार भिन्न–भिन्न है।

प्रशिक्षण और सेवा

1. शासन द्वारा नारी शिक्षा के लिए अविलम्ब प्रशिक्षण संस्थान स्थापित किये जायें और इनकी स्थापना ऐसे क्षेत्रों में हो जहाँ इनकी कमी को देखते हुये महती आवश्यकता है।

2. ग्रामीण क्षेत्रों में यदि नगर से महिलाएं शिक्षा व प्रशिक्षण के लिए ग्रामीण क्षेत्र में जाएं तो उनके निवास के लिए मकान आदि की सुविधाएं भी प्रदान की जायं।

उद्यम और व्यवसाय परक शिक्षा

1. जहाँ तक सम्भव है स्त्रियों को नीतिगत आधार पर अल्पकालिक नियुक्तियाँ देकर प्रोत्साहित किया जाय।

2. उपर्युक्त संदर्भ में बालिकाओं को प्रोत्साहित करने हेतु वाणिज्य, कृषि, चिकित्सा और अभियान्त्रिकी जैसे विषय भी पढ़ाये जायं। किन्तु इन विषयों का अध्यापन विद्यालयों में किया जाय। इसके लिए उन्हें समुचित छात्रवृत्ति और अन्य सुविधाएं भी प्रदान की जाय।

3. ऐसे उपक्रम किये जाय जिससे महिलाओं को शिक्षा संस्थाओं में और शासकीय कार्यालय में नियुक्तियाँ मिल सके जहाँ वे निश्चिन्त होकर कार्य कर सकें।

4. प्रौढ़ महिलाओं को शिक्षा सुविधाओं में अल्प कालीन सेवारत प्रशिक्षण देने की व्यवस्था प्रदान की जाय। और उन्हें प्राथमिक, माध्यमिक तक की शिक्षा के लिए प्रोत्साहित किया जाय। तथा ऐसे व्यवसायिक अल्प कालीन प्रशिक्षण भी दिया जाय जिससे वे अपने व्यवसाय में दक्ष हो सकें। यह व्यवस्था प्रत्येक राज्य में हो।

स्वयं सेवी संस्थाओं का योगदान

नारी शिक्षा के लिए प्राथमिक, माध्यमिक प्रशिक्षण केन्द्र, सामाजिक और औद्योगिक शिक्षा के लिए सामाजिक संस्थाओं की सेवा प्राप्त की जाय। ये व्यवस्था बालकों के विद्यालयों में भी दी जाय किन्तु प्राथमिकता के आधार पर इसे कन्या विद्यालयों मे प्रदन किया जाय।

अन्य सामान्य संस्तुतियाँ

1. प्राथमिक शिक्षा निःशुल्क आधार पर और ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिकता के आधार पर प्रदान की जाय।
2. शिक्ष मन्त्रालय देश के सभी भागों मे ऐसा सर्वेक्षण करें जहाँ बालिकाओं की शिक्षा में व्यापक रूप से समय, साधन और शिक्षा का अपव्यय हो रहा है।
3. प्राइमरी स्तर पर कक्षा 1 में, 2 से लेकर 5 तक प्रवेश और उपस्थिति के आधार पर शिक्षा को नियन्त्रित करने का उपाय किया जाय।

बालिकाओं की शिक्षा के लिए समिति गठन और जन सहयोग

नारी शिक्षा की राष्ट्रीय परिषद की एक बैठक अप्रैल 1963 में केन्द्रीय शिक्षा मंत्री के सम्बोधन से प्रारम्भ की गयी। जिसमें जन सहयोग का अभाव और लड़कियों की शिक्षा में ग्रामीण क्षेत्रों में विकसित न होने पर चिन्तिन किया गया। इस समिति ने 1964 में अपनी आख्या प्रस्तुत की, समिति का गठन निम्नवत् किया गया था–

1. अध्यक्ष श्री एम0 एम0 भक्तवत्सलम् मद्रास के मुख्यमंत्री के सभापतित्व में श्रीमती 'ग्रेसटकर' मैसूर की उपशिक्षा मंत्री श्रीमती के0 के0 बऊआ, उड़ीसा की अतिरिक्त शिक्षा निदेशक श्रीमती आई0 एल0 सिन्हा, क्षेत्रीय निरीक्षिका लखनऊ श्रीमती राधा कक्कड़ और उत्तर प्रदेश सरकार के उत्तर प्रदेश सरकार के संयुक्त शिक्षा सचिव श्री राजा राय सिंह थे। और इस समिति के सचिव केन्द्रीय शासन के सहायक शिक्षा सलाहकार एस0 नागप्पा के द्वारा यह समिति संचालित हुयी।

इस समिति ने दो प्रमुख बिन्दुओं पर ध्यान आकर्षित किया–

1. जनसहयोग
2. प्रदेश सरकार का दायित्व

जनसहयोग

समिति की संस्तुतियों में निम्नलिखित क्षेत्रों में जनसहयोग की अपेक्षा की गयी थी–

1. सामाजिक रूप से जन सहयोग लेकर नये विद्यालयों की स्थापना करना, उनके लिए भवन निर्माण करना और भवन निर्माण हेतु स्वयं सेवी श्रमिक की तरह कार्य करना प्रमुख थे इसके साथ ही इन विद्यालयों के भवनों को सुव्यवस्थित रखना। इनके कार्य क्षेत्र में था। विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों मे विद्यार्थियों और अध्यापकों के निवास की व्यवस्था करना। प्रारम्भिक स्तर पर सह–शिक्षा को प्रचलित करना, समाज में अध्यापकों का सम्मान और शिक्षा के प्रति समाज में आदर भाव जागृत करना। नारियों की शिक्षा के लिए उत्तरदायित्व पूर्ण प्रचार समितियाँ बनाना, ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा के प्रति प्रचलित रूढ़ियाँ और परम्पराओं को तोड़ने का प्रयास करना तथा ऐसी शिक्षित प्रौढ़ महिलाओं को विद्यालय की मां की तरह समझना सम्मिलित था। समिति से यह भी अपेक्षा की गयी थी कि वे विद्यालयों को ओर अधिक सुन्दर बनाने के व उनके विकास के कार्यों में भाग लेकर बच्चों को अवकाश काल में भोजन प्रदान करने की भी संस्तुति प्रदान की गयी। समिति की यह भी संस्तुति थी कि ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धन बच्चों की वेश–भूषा हेतु वस्त्रों की भी व्यवस्था की जाय। इसके साथ ही बच्चों को लेखन सामग्री और पठन–पाठन सामग्री भी निःशुल्क प्रदान की जाय।

नारी शिक्षा की राष्ट्रीय परिषद को नेतृत्व देने वाली सामुदायिक शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया इनका मुख्य कार्य जनपदीय स्तर पर जिला परिषदें और ग्रामीण स्तर पर महिला मण्डल स्थापित कर उन्हें राष्ट्रीय परिषद से सम्बद्ध करने का प्रयास किया गया। इस समिति का मुख्य कार्य यह भी था कि वे प्राथमिकता के आधार पर बालिकाओं की शिक्षा के लिए निरन्तर प्रयासरत हों। इनसे यह सामाजिक अपेक्षा की गयी कि वे सामाजिक कार्य कर्त्ताओं पुरूष और स्त्रियों को स्वयं सेवा के लिए आगे लाएं जिनमें शिक्षा के प्रति समर्पण की भावना हो।

प्रदेश सरकार का दायित्व

राज्य सरकार से यह अपेक्षा की गयी कि वे जनभावना को बालिकाओं की शिक्षा के लिए प्रोत्साहित करें और इसके लिए विद्यालय विकास, सम्मेलन, कार्यशालाएं, रेडियो–वार्ताएं श्रव्य–दृश्य माध्यमों तथा सूचना प्रपत्रों से प्रचार करें। इसी प्रकार दशहरा अथवा लम्बे अवकाशों के समय अथवा जून के महीने में बालिकाओं को नामांकित करें और समाज कल्याण समितियाँ, संगठनों ओर व्यक्तिगत प्रयासों को भी सम्बद्ध करें। विकास गामी बनायें जो महिलाओं और बालिकाओं के शिक्षा विकास में सहायक हों।

विद्यालय विकास सम्मेलनों को राज्य व्यापी बनाया जाय विशेषकर उन क्षेत्रों में जो अविकसित व अर्धविकसित हैं। उनमें निरन्तर जाग्रति और प्रगति के माध्यम खोजें जायं। ऐसे सम्मेलनों से स्पर्धा की भावना बढ़ती है। और विकास की सम्भावना होती है।

राज्य सरकारों से ये अपेक्षा की गयी है कि वे 300 वयक्तियों की आबादी से अधिक वाले क्षेत्रों में एक प्राथमिक विद्यालय की स्थापना अवश्य करें। पहाड़ी क्षेत्र में भी यही नियम अपनाया जाय। भले ही उनके गाँव दूर–दूर तक बिखरे हुये हों। इसमें यह भी संस्तुति की गयी कि 3 मील के दायरे में 1500 से अधिक विद्यार्थियों के लिए एक मिडिल स्कूल भी खोला जाय। माध्यमिक पाठशालाओं के लिए ये विचार किया गया कि 5 मील के अर्ध व्यासीय क्षेत्र में एक माध्यमिक विद्यालय भी खोला जाय।

- समिति ने यह संस्तुति भी कि कि ग्रामीण क्षेत्रों में पूर्व प्राथमिक विद्यालयों को प्राथमिक विद्यालयों से सम्बद्ध कर दिया जाय ताकि बच्चों को स्कूल जाने की आदत पड़ सके।
- समिति ने यह भी संस्तुति की कि वर्तमान की कमियों को दूर करने के लिए नये उपकरण प्रदान किंये जायें जो वर्तमान की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।
- विद्यालय का कार्य आकर्षक और इतना महत्वपूर्ण बनाया जाय कि अरूचि पूर्ण विद्यार्थी भी उसके साथ चल सकें।
- विद्यालय के क्षतिग्रस्त भवनों को नये भवनों से प्रतिस्थापित किया जाय। और समय–समय पर इन विद्यालयों की जन सहयोग के माध्यम से सरकारी निरीक्षक भी देखते रहें।
- विद्यालय का कार्य आकर्षण बनाया जाय ताकि विद्यार्थी शिक्षा को अनेक संदर्भों में ग्रहण

कर सकें। विद्यालयों मे विद्यार्थियों के लिए जहाँ एक ओर शैक्षणिक ग्राहीता का वातावरण हो वहाँ दूसरी ओर स्वच्छता का भी ध्यान रखा जाय। यह सत्य है कि अध्यापकों का अभाव प्रारम्भिक काल में अनुभव होगा तथापि अनेक शिक्षित महिलाओं को नियुक्त कर प्राथमिक शालाओं में अध्यापन के लिए प्ररित किया जाय क्योंकि यह सर्वमान्य तथ्य है कि महिलाएं सबसे अच्छी अध्यापक सिद्ध हो सकती हैं। शासन का यह भी मन्तव्य होना चाहिए कि प्राथमिक स्तर पर केवल महिलाएं और अन्य स्तरों पर पुरूष और महिलाओं के सम्मिलित प्रयास से अध्यापन कार्य किया जाय। महिलाओं के द्वारा संचालित विद्यालय अभिभावकों में अधिक विश्वास और प्रेरणा दे सकता है और उन्हें सह शिक्षा विद्यालयों मे बच्चों को भेजने के लिए प्रेरित कर सकता है। महिलाओं को नियुक्त करने के क्षेत्र भी व्यापक बनाये जायें और उनकी सेवा सुविधाओं को अधिक आकर्षित बनाया जाए। पहाड़ी क्षेत्रों, एकाकी स्थानों और पिछड़े क्षेत्रों में महिलाओं को नगदीकृत प्रोत्साहन भी दिया जाय तथा राज्य शासन ऐसे क्षेत्रों को सुनिश्चित करें।

शासन ऐसा प्रयास करे कि विवाहित महिलाओं को जिन्होंने हाल ही में शिक्षा कार्य छोड़ा है। उन्हें पुनः दूसरे व्यवसायों में भी शिक्षा के क्षेत्र से जोड़ा जाय। ग्रामीण क्षेत्र में निवास करने वाली महिलाओं को उच्च पाठ्यक्रम को संक्षिप्त करके उच्च शिक्षा प्रदान की जाय ताकि वे पुनः ग्रामीण क्षेत्र में जाकर शिक्षा का कार्य सम्पन्न कर सकें।

अधिक महिला अध्यापकों को आकर्षित करने के लिए शासन महिलाओं की आयु सीमा को अविवाहित और विवांहित महिलाओं के लिए इतना बढ़ाकर के निर्धारित करें कि वे ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा के कार्य को सम्पादित कर सकें और अंशकालिक कार्य के लिए भी उनकी सुविधाओं को अत्यधिक आकर्षक बनाया जाय। महिला अध्यापिकाएं जहां तक सम्भव हो अपने गाँव में तथा गाँव के निकट ही नियुक्त की जाय।

सभी अध्यापकों के वेतनमानों में सुधार किया जाय और उनके आर्थिक उत्पादनों के बढ़ाया जाय। ताकि उन्हें सेवा में अधिक से अधिक समय में रखा जा सके और उनके लिए सेवा निवृत्ति की सुविधाएं भी प्रदान की जाय। जैसे– भविष्य निधि की सुविधा आदि।

प्रशिक्षण विद्यालयों में उन बालिकाओं और महिलाओं के लिए जो प्रशिक्षण प्राप्त करने हेतु दूरस्थ गाँव से आती है। उनके लिए छात्रावास की सुविधा प्रदान की जाय।

निरोक्षको का वर्ग इस प्रकार से नियुक्त किया जाय कि वे निरन्तर अध्यापक के सम्पर्क में बने रहें कि जिससे कि अनुशासन पूर्ण नियन्त्रण रह सके और विकास की दिशाओं की रचना की जा सके। यह अधिक उचित प्रतीत होता है कि महिलाओं की शिक्षा के लिए एक पृथक निदेशालय की स्थापना की जाय। महिलाओं के आवास, स्कूल, विद्यालय या छात्रावास के समीप ही होना चाहिए ताकि छात्राओं को अधिक से अधिक शिक्षण सुविधाएं और निर्देशन प्राप्त हो सके उनमें सामाजिक विकास की भावना भी इसी माध्यम से विकसित होती है। चौथी योजना में प्राथमिक और माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के अध्यापकों को 50 हजार आवास ग्रहों और 10 हजार अध्यापक निवासों का लक्ष्य रखा गया किन्तु ये अर्थाभाव के कारण सम्पन्न नहीं हो सका। छात्रावासों के अभाव से विकास योजनाओं में भी व्यवधान उत्पन्न होता है। प्रदेश सरकार से यह अपेक्षा की गयी कि महिला छात्रावासों और शिक्षक निवास ग्रहों के लिए समुचित अनुदान की व्यवस्था करें जिससे कि छात्रावासों का निर्माण कराया जा सके। इसके साथ ही छात्राओं और महिलाओं के आवास गृहों के लिए जन सामान्य से भी सक्रिय सहयोग की अपील की जाय। स्थानीय निकायों को भी विद्यालय, भवन, उपकरण, खेल के मैदान आदि की व्यवस्था का उत्तरदायित्व शिक्षा संहिता के अनुरूप करने की व्यवस्था करें।

स्वतंत्रता के बाद

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1968 (National Education Policy 1968)

स्वतंत्रता के उपरान्त भारत में शिक्षा का सर्वाधिक महत्व समझा गया तथा उससे संदर्भित जो आयोग बने उनमें डा0 डी0 एस0 कोठारी की अध्यक्षता में बने आयोग में 1964–66 में यह प्राविधान रखा गया कि भारत सरकार राष्ट्रीय शिक्षा नीति के परिप्रेक्ष्य में एक परि पत्र जारी करें जिससे विदेशी सरकारों को शिक्षा की योजना को कार्यान्वित और निर्धारित करने में सहायता मिल सके। अतः 1964 में भारत सरकार ने शिक्षा की राष्ट्रीय नीति निर्धारित करने के लिए एक समिति गठित थी, जिसमें सभी राजनीतिक दलों के नेतृत्व करने वाले सदस्य थे। तद्परान्त भारत सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर 1968 में एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया। जो 1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति तक कार्यान्वित रहा। इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति में सत्रह आधारभूत सिद्धान्त स्थापित किये गये। जिनका विवरण निम्नवत् प्रस्तुत है–

नि:शुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा

भारतीय संविधान के नीति निदेशक तत्वों में धारा 45 के अर्न्तगत 14 वर्ष की आयु तक के सभी बालकों के लिए नि:शुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा का प्राविधान किया जाना चाहिए। इसके लिए यह भी निर्धारित किया गया कि विद्यालयों में प्रचलित रूकावटें न हों और जो विद्यार्थी विद्यालय में प्रवेश लेते हैं वे निर्धारित पाठ्यक्रम पूरा करने पर उत्तीर्ण भी हों।

अध्यापकों का स्तर, वेतन और शिक्षा

1. राष्ट्रीय विकास में शिक्षा की गुणवत्ता के कारकों में अध्यापक का सम्मिलित होना आवश्यक है। शिक्षा की सफलता, शिक्षक की योग्यता और गुणों पर ही निर्भर होती हैं। अत: उनके जीवन स्तर, वेतन और उत्तरदायित्वों को देखते हुये यह प्रस्तावित किया गया कि अध्यापक को समाज में उचित सम्मान मिले।
2. अध्यापकों का वेतन व उनकी सेवा शर्तें उनकी योग्यता और उत्तरदायित्वों को देखते हुये सन्तोष जनक होना चाहिए।
3. अध्यापकों को यह स्वतंत्रता भी मिले कि वे अध्ययन और शोध कर सकें एवं राष्ट्रीय व अर्न्तराष्ट्रीय स्तर के विषयों पर वक्तव्य और लेखन के द्वारा अभिव्यक्ति कर सकें।
4. अध्यापकों की शिक्षा विशेषकर सेवा में रहते हुये शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार भी दिया जाना चाहिए।

भाषाओं का विकास

1. सांस्कृतिक विकास के लिए अच्छे साहित्य की अध्ययन और रचना की जाय, जिससे कि क्षेत्रीय भाषाओं का विकास हो। प्राथमिक व माध्यमिक स्तर की शिक्षा के लिए क्षेत्रीय भाषाओं को शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रयोग किया जाना चाहिए और राष्ट्रीय भाषा की समृद्धि करने में उनका योगदान होना चाहिए।
2. माध्यमिक स्तर पर त्रिभाषा सूत्र को हिन्दी भाषी राज्यों में हिन्दी व अंग्रेजी के अतिरिक्त एक अन्य प्रदेशीय भाषा सिखायी जानी चाहिए। इसी प्रकार दक्षिण के अहिन्दी भाषी राज्यों में अंग्रेजी और प्रदेशीय भाषा के साथ हिन्दी सिखायी जाय।

3. हिन्दी को सम्पर्क भाषा के रूप में विकसित करते समय संविधान की धारा 351 के अनुरूप इस प्रकार पढ़ाया जाय कि वह भारतीय संस्कृति की विविधता को अभिव्यक्त करने का माध्यम बन सके, तथा अहिन्दी भाषी राज्यों में विश्वविद्यालय स्तर तक हिन्दी का प्रचलन किया जा सके।

4. संस्कृत भाषा भारतीय भाषाओं के मूल में एक समृद्ध संस्कृति को अभिव्यक्त करती है। अतः संस्कृति विभाग से माध्यमिक और उच्च स्तर तक उदारता पूर्वक सुविधाएं उपलब्ध ा करायी जानी चांहिए।

5. अर्न्तराष्ट्रीय भाषाओं के सम्बन्ध में विभिन्न देशों की भाषाएं, जिनमें नवीनतम अनुसंधान हो रहे हैं उन्हें जानने के लिए अर्न्तराष्ट्रीय भाषा का ज्ञान आवश्यक है। अतः अंग्रेजी के साथ–साथ फ्रेंच और जर्मन भाषाओं को सीखना भी संगत प्रतीत होता है।

शिक्षा के समान अवसर

1. शैक्षिक सुविधाओं में विद्यालयों को नगर के साथ–साथ ग्रामीण और आंचलिक क्षेत्रों में स्थापित किये जाये और खोले जाने वाले विद्यालयों में दी जाने वाली सुविधाओं में एक रूपता होना चाहिए।

2. क्षेत्रीय सन्तुलन को बनाये रखने के लिए शिक्षा की सुविधाएं अच्छे विद्यालयों में अवश्य दी जानी चाहिए।

3. राष्ट्रीय एकता के लिए पूर्व आयोगों द्वरा सुझाये गये उपाय स्कूलों की समानताओं के द्वारा प्रतिपादित किये जाएं।

4. विद्यालयों के विकास में और शिक्षा के स्तर सुधारने में आयोगों द्वारा प्रस्तावित संस्तुतियों को लागू किया जाय।

5. योग्यता के आधार पर सभी स्कूलों में समानता लाते हुये समान रूप से प्रवेश किये जाएं। और सभी विद्यालयों में समान रूप से शिक्षा शुल्क का नियमन किया जाय, जिससे कि एक विद्यालय दूसरे विद्यालय से भिन्न न समझा जाय।

6. बालिकाओं की शिक्षा पर अधिक ध्यान दिया जाय, जिससे कि सामाजिक न्याय और सामाजिक परिवर्तन का सूत्रपात हो सकें।

7. पिछड़े वर्ग और जनजातियों में भी शिक्षा का अभयुदय हो सके।

अतः ऐसे वाह्य प्रयास किये जाय, जिससे पिछड़ी जातियाँ और जन जातियाँ भी शिक्षा से वंचित न रह सके।

8. अन्त में विकलांग विद्यार्थियों की शिक्षा का ऐसा नियमन किया जाय कि वे समाज की मुख्य धारा में मिलकर हीन भावना की ग्रन्थियों से ग्रसित न हो सके और उन्हें ये अनुभव हो कि वे अन्य बालकों की भाँति भी समान रूप से शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

प्रतिभाओं का चयन

श्रेष्ठता को प्राप्त करने के लिए विद्यार्थियों को प्रवीण बनाना आवश्यक है और उनका चयन प्राथमिक स्तर को हर सम्भव स्तर पर होना चाहिए।

कार्यानुभव तथा राष्ट्रीय सेवा

सामुदायिक सेवा राष्ट्रीय पुर्ननिर्माण में सहायक है। सार्थक और चुनौती पूर्ण कार्यों को सम्पादित करने के लिए विगत में किये गये कार्य का अनुभव राष्ट्रीय सेवा भावना और सामुदायिक सद्भाव शिक्षा के अभिन्न अंग होना चाहिए। इन कार्यक्रमों से स्वावलम्बन, चरित्र निर्माण और सामाजिक संकल्प की भावना का विकास होता है।

विज्ञान शिक्षा और अनुसंधान

राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था के विकास की दर को बढ़ाने के लिए विज्ञान की शिक्षा और शोध ा को प्राथमिकता दी जाय। पूर्व माध्यमिक शिक्षा के स्तर तक विज्ञान और गणित विषय अनिवार्य रूप से पढ़ाये जाने चाहिए।

कृषि तथा उद्योगों के लिए शिक्षा

कृषि और उद्योग भारत की अर्थव्यवस्था के लिए मूलरूप से आवश्यक है इसके लिए निम्न प्रयत्न किये जाने चाहिए–

1. प्रत्येक राज्य में कम से कम एक कृषि विश्वविद्यालय अवश्य होना चाहिए अन्य विश्व विद्यालय में भी कृषि सम्बन्धित विषयों को पढ़ाया जाना चाहिए। इससे अर्थ व्यवस्था के नये आयाम खुलने की सम्भावना बनी रहती है।
2. तकनीकी शिक्षा उद्योगों के लिए आयातित प्रशिक्षण से दी जानी चाहिए, जिससे देश में उद्योगों का विकास हो, और समाज का स्तर विकसित हो सके।
3. राष्ट्र में कृषि, औद्योगिक और तकनीकी जनशक्ति की आवश्यकता की निरन्तर समीक्षा

की जाय तथा इन संस्थाओं से निकले हुए विद्यार्थियों को उद्योग और व्यवसाय में लगाया जाय। जिससे सामाजिक संतुलन बना रहे।

पुस्तकों का उत्पादन

प्रोत्साहन और पारिश्रमिक की उदार नीति द्वारा श्रेष्ठ लेखकों को आकर्षित करके पुस्तकों की गुणवत्ता में सुधार किया जाय, और आवश्यकतानुसार स्कूलों और विश्वविद्यालयों के लिए सस्ते मूल्य पर पुस्तकें उपलब्ध करायी जांये। ताकि साधारण छात्र भी उनका लाभ उठा सकें।

परीक्षाएं

विद्यार्थियों के अध्ययन अनुसन्धान और कार्यान्वयन पर परीक्षा की योजना भी होना चाहिए, जिससे विद्यार्थियों को अपनी उपलब्धि के विषय में बोध हो सके और गुणवत्ता के आधार पर वे अपने ज्ञान का विकास कर सकें।

माध्यमिक शिक्षा

1. माध्यमिक शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का केन्द्र बिन्दु हैं। अतः माध्यमिक शिक्षा की सुविधाएं उन क्षेत्रों तक पहुंचाना चाहिए, जिन्हें अभी तक यह सुविधाएं प्राप्त नहीं हैं।
2. माध्यमिक स्तर पर तकनीकी व व्यवसायिक शिक्षा को बढ़ाये जाने की आवश्यकता है। जिससे कृषि, उद्योग, चिकित्सा, जन स्वास्थ्य, ग्रह प्रबन्ध, कला और शिल्प आदि के क्षेत्र भी विकसित हो सकें।

विश्व विद्यालयी शिक्षा

1. विश्व विद्यालय में अध्ययनरत छात्रों को इनकी संख्या के अनुपात में पुस्तकालयों और प्रयोगशालाओं की सुविधा निश्चित किया जाना चाहिए।
2. नये विश्वविद्यालय. अथवा महा विद्यालयों की स्थापना करने के पूर्व संशाधनों की उपलब्धि वित्त और अन्य साधन पर्याप्त मात्रा में होना चाहिए, जिससे शिक्षा मानकों को सुस्थित किया जा सके।
3. स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों के संगठन में प्रशिक्षण और अनुसन्धान पर विशेष बल दिया जाना चाहिए।

4. उच्च अध्ययन केन्द्रों को प्रशिक्षण और अनुसन्धान के क्षेत्र में विकसित किया जाना चाहिए।

5. विश्व विद्यालयों में अनुसन्धान को अधिक सफल बनाने के लिए अनुसन्धान संस्थाओं और अनुदान आयोग को अधिक धन उपलब्ध कराना चाहिये।

अंशकालीन शिक्षा तथा पत्राचार पाठ्यक्रम

विश्व विद्यालय स्तर पर माध्यमिक छात्रों, अध्यापकों तथा अन्य कर्मियों के लिए अंश कालीन शिक्षा और पत्राचार पाठ्यक्रम का विकास किया जाना चाहिए। इसके साथ ही अंश कालीन शिक्षा और पाठ्यक्रमों को विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान की जाने वाली शिक्षा के समान और समकक्ष मान्यता प्रदान की जानी चाहिए।

साक्षरता और प्रौढ़ शिक्षा का प्रसार

प्रजातंत्र में साक्षरता का विशेष महत्व है। औ प्रजातंत्र में ही सर्वाधिक निरक्षरता पायी जाती है। औद्योगिक केन्द्रों, व्यवसायिक प्रतिष्ठानों और अन्य संस्थाओं के कर्मचारी प्रायः निरक्षर रहते हैं उन्हें साक्षर बनाकर राष्ट्रीय मुख्य धारा के विकास में जोड़ना आवश्यक है। अतः साक्षरता अभियान आयोजित किये जाय, और राष्ट्रीय सेवा कार्यक्रमों को विकसित किया जाय। प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में 15–35 वर्ष के आयु वर्ग में विशेष रूप से कृषि क्षेत्र में साक्षरता और शिक्षा सुनिश्चित की जानी चाहिए।

खेलकूद

खेल और अन्य शारीरिक व्यायाम के क्षेत्रों में माध्यमिक, विश्वविद्यालय स्तर पर क्रीडा प्रांगण और खेल उपकरणों की सुविधाएं कौशल और वरीयता के आधार पर प्रदान की जानी चाहिए। साथ ही प्रत्येक राज्य में खेल प्रशिक्षण विद्यालय भी खोले जायं।

अल्प संख्यकों की शिक्षा

अल्प संख्यकों के शिक्षा अधिकार को बनाये रखने के लिए शासन द्वारा यथा सम्भव प्रयास किये जाने चाहिए।

शैक्षिक ढाँचा

शिक्षा स्वरूप को निर्धारित करने के लिए 10+2+3 के स्वरूप को अपनाना उचित

होगा। दस वर्ष तक प्राथमिक और पूर्व माध्यमिक उसके उपरान्त 2 वर्ष तक इण्टरमीडिएट/हायरसेंकेण्डरी तदपरान्त 3 वर्ष तक स्नातक स्तर तक की शिक्षा देना संगत है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 की घोषणा के उपरान्त ही इस नीति की प्रशंसा और आलोचना की गयी किन्तु यह निर्विवाद है कि इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने देश को एक नई दिशा देने का प्रयास किया।

उत्तर प्रदेश शासन ने शिक्षा की राष्ट्रीय नीति (1968) को सिद्धान्त रूप में स्वीकार किया और इसमें से कई योजनाओं को कार्यान्वित भी किया। माध्यमिक विद्यालयों में त्रिभाषा सूत्र लागू किया गया। निर्धन छात्रों के पाठ्य पुस्तकें उपलब्ध करने की योजना तथा वर्षों से शरणार्थी के रूप में वापस आये भारतवासी छात्र–छात्राओं को शिक्षा की सुविधा देने हेतु वर्ष 1967 – 68 में 5000 रू0 का प्राविधान किया गया।

सन् 1968 – 69 में वैज्ञानिक प्रतिभा की खोज के लिए विज्ञान के छात्रों की वैज्ञानिक शोध प्रतियोगिता प्रतिवर्ष आयोजित होने लगी। हाईस्कूल के कक्षाओं में 100 रू0 तथा इण्टर कक्षाओं में 150 रू0 प्रतिमाह की दर से छात्रवृति देने का प्राविधान किया गया। उत्तर प्रदेश ने 10 + 2 + 3 क़ी शैक्षिक संरचना को स्वीकार नही किया।

***राष्ट्रीय शिक्षा नीति* 1979 (National Education Policy 1979)**

जनता सरकार के कार्यकाल में शैक्षिक परिवर्तनों के विषय में देश में अनास्था का वायुमण्डल बना हुआ था। शासन ने एक नयी शिक्षा नीति 1979 में घोषित की, जिसमें शिक्षा आयोग (1966) द्वारा प्रस्तावित "समान विद्यालय पद्यति" (कामन स्कूल सिस्टम) को स्वीकार किया गया। इस राष्ट्रीय नीति में शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर जो नीति घोषित की गयी थी उसकी दो धाराएं थीं–

(1) सामान्य शिक्षा,

(2) व्यवसायिक शिक्षा।

सामान्य शिक्षा बालकों में उन योग्यताओं तथा प्रतिभाओं का विकास करेगी, जो उन्हें उच्च शिक्षा के लिए तैयार करेगी। व्यवसायिक शिक्षा बालकों की रोजगार सम्बन्धी योग्यताओं तथा कुशलताओं का उन्मेष करेगी। इसके अनुसार विद्यालयी शिक्षा 12 वर्ष की होगी, जिसका पाठ्यक्रम अवधि तथा विषय वस्तु की दृष्टि से लचीला होगा। इसका आशय

यह है कि इस रचना की समानता राज्यों की स्वायत्ता के कारंण निछावर कर दी गयी है इस प्रकार प्रत्येक राज्य में शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर शिक्षा की अवधि भिन्न–भिन्न होगी, जिसके कारण स्थिति भ्रामक हो जाएगी।

चूकि जनता शासन का कार्यकाल बहुत ही कम रहा है अतः जनता शासन का अन्त होते ही इस नीति का भी अन्त हो गया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति - 1986 (National Education Policy 1986)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति राष्ट्रीय निर्माण की प्रक्रिया के दौरान भारत सरकार ने अगस्त 1985 में एक दस्तावेज–शिक्षा की चुनौतीः नीति सम्बन्धी' परिप्रेक्ष्य–जारी किया था। इस दस्तावेज को जारी करने का उद्‌देश्य–शिक्षा नीति के सम्बन्ध में देशव्यापी विचार विमर्श को प्रोत्साहित करना था जिससे कि नई शिक्षा नीति के निर्माण के लिए पर्याप्त आधार तैयार हो सके तथा समाज के विभिन्न वर्ग अपने विचारों, मांगों तथा आवश्यकताओं को नई नीति के निर्माणकों के सम्मुख रख सकें। आशा के अनुरूप इस दस्तावेज पर सम्पूर्ण भारत में पर्याप्त विचार–विमर्श हुआ तथा विभिन्न वर्गों–बौद्धिक, सामाजिक, राजनैतिक, व्यवसायिक, प्रशासनिक आदि ने अपनी–अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त की। कुछ ने इस दस्तावेज में प्रस्तावित नीति का स्वागत किया तथा कुछ ने उस पर आपत्तियाँ उठाईं। मई 1986 में भारत सरकार ने शिक्षा नीति – 1986 का प्रारूप तैयार करके जारी कर दिया। मानव संसाधन विकास मन्त्रालय ने इन नवीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति को सुचारू ढंग से लागू करने के लिए एक कार्यान्वयन कार्यक्रम भी तैयार किया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति – 1986 को कुल बारह खण्डों में बाँटा गया है जिनमें कुल 157 बिन्दुओं के अर्न्तगत नई शिक्षा नीति को लिपिबद्ध किया गया है। विभिन्न खण्डों के मुख्य–मुख्य बिन्दुओं को आगे संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के बारह खण्ड

खण्ड

1. प्रस्तावना
2. शिक्षा सार तथा भूमिका
3. शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली

4. समानता के लिए शिक्षा

5. विभिन्न स्तरों पर शैक्षिक पुर्नगठन

6. तकनीकी तथा प्रबन्ध शिक्षा

7. शिक्षा प्रणाली का क्रियान्वयन

8. शिक्षा का पाठ्यक्रम तथा प्रक्रिया का अभिनवीकरण

9. अध्यापक

10. शिक्षा प्रबन्ध

11. संसाधन तथा समीक्षा

12. भाषी स्वरूप

खण्ड एक

प्रस्तावना

राष्ट्र आर्थिक एवं तकनीकी विकास के एक ऐसे दौर में पहुंच गया है जबकि उपलब्ध संसाधनों से अधिकतम लाभ उठाने तथा परिवर्तन का लाभ सभी वर्गों तक पहुँचाने के लिए विशेष प्रयास किये जाने चाहिए। इस लक्ष्य को प्राप्त करने का एक मार्ग शिक्षा है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर भारत सरकार ने जनवरी 1985 में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति का निर्माण करने की घोषणा की थी।

खण्ड दो

शिक्षा का सार तथा भूमिका

हमारे राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में शिक्षा सभी के लिए है। हमारे सर्वांगीण विकास–भौतिक तथ अध्यात्मिक का यह आधार है। शिक्षा संवेदनशीलता तथा प्रत्यक्षीकरण को परिमार्जित करती है। जो राष्ट्रीय एकता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा मस्तिष्क व आत्मा की स्वतन्त्रता को बढ़ाते हैं। इस प्रकार से शिक्षा संविधान में स्वीकृत समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता तथा प्रजातान्त्रिकता के लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायक है। अर्थव्यवस्था के विभिन्न स्तरों के लिए शिक्षा मानव–शक्ति को विकसित करती है।

खण्ड तीन

शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली

शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली से अभिप्राय है कि एक निश्चित स्तर तक, सभी छात्रों की जाति, मत या लिंग के भेदभाव के बिना, तुलनीय गुणवत्ता वाली शिक्षा तक पहुँच हो।

शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली में एक समान शिक्षा संरचना समाहित है। 10 + 2 + 3 संरचना को राष्ट्र के सभी भागों में स्वीकार किया जा चुका है। प्रथम दस वर्षीय शिक्षा को प्रायः विभाजित करने के लिए 5 वर्ष की प्राथमिक शिक्षा तथा 2 वर्ष की उच्च प्राथमिक शिक्षा वाली प्रारम्भिक शिक्षा प्रणाली के प्रयास किये जायेंगे जिसका अनुगमन दो वर्ष की हाई स्कूल शिक्षा करेगी।

शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली, राष्ट्रीय–पाठ्यक्रम ढाँचे पर आधारित होगी जिसमें पाठ्यक्रम का एक अनिवार्य अंग तथा शेष लोचनीय अंग होंगे।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा (AICTE), भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद (ICAR) तथा भारतीय चिकित्सा परिषद (IMC) को राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने के लिए सुदृढ किया जायेगा। एकीकृत किया जायेगा। एकीकृत योजना को लागू किया जायेगा। ये संस्थाएँ राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान तथा प्रशिक्षण परिषद (NCERT), राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन संस्थान (NIEPA) तथा अर्न्तराष्ट्रीय विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा संस्थान (IISTE) के साथ मिलकर शिक्षा नीति के क्रियान्वयन में सहभागी होंगे।

खण्ड चार

समानता के लिए शिक्षा

नई शिक्षा नीति असमानता को दूर करने तथा शैक्षिक अवसरों की समानता पर विशेष ध्यान देगी।

महिलाओं की स्थिति में आधारभूत परिवर्तन लाने के लिए शिक्षा का उपयोग किया जायेगा। स्त्री निरक्षरता तथा प्रारम्भिक शिक्षा तक महिलाओं की पहुँच के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करने के कार्य को द्रुतगामी प्राथमिकता दी जायेगी।

अनुसूचित जातियों एवं जन जातियों के शैक्षिक विकास की मुख्य बात उनको अन्य जातियों के समान लाना है। इसके लिए प्रोत्साहन, पूर्वमैट्रिक छात्रवृत्ति योजना,

लगातार सूक्ष्म योजना, अनुसूचित जातियों के अध्यापकों की नियुक्ति तथा अनुसूचित जाति क्षेत्रों में स्कूलों, बाल–बाड़ियों तथा प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों की स्थापना आदि उपायों को किया जायेगा।

शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े सभी लोगों को, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, उपयुक्त प्रोत्साहन दिया जायेगा। पर्वतीय व रेगिस्तानी जिलों, दूरवर्ती व अगम्य क्षेत्रों तथा द्वीपों में शिक्षा संस्थाओं का वांछित जाल फैलाया जायेगा।

शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े अल्पसंख्यकों की शिक्षा पर अधिक ध्यान दिया जायेगा।

अपंगों के लिए जिला मुख्यालयों में विशेष स्कूल खोले जायेंगे, उनके व्यवसायिक प्रशिक्षण की पर्याप्त व्यवस्था की जायेगी, तथा अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम को इस तरह से पुर्नगठित किया जायेगा कि अध्यापक अपंग छात्रों की समस्याओं से निबट सके।

सतत् शिक्षा के लिए केन्द्र स्थापित करके, नियोक्ताओं, ट्रेड संघों व सम्बन्धित सरकारी संस्थाओं के द्वारा, मजदूर शिक्षा के द्वारा, रेडियो, टेलीविजन फिल्म, जनसंचार माध्यमों के उपयोग के द्वारा, दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रमों के द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में प्रौढ़ एवं सतत शिक्षा के एक व्यापक कार्यक्रम को लागू किया जायेगा।

खण्ड पाँच

विभिन्न स्तरों पर शैक्षिक पुर्नगठन

पूर्व बाल्यकाल परिचर्या व शिक्षा

पोषण, स्वास्थ्य तथा सामाजिक, मानसिक, शारीरिक, नैतिक व संवेगात्मक विकास की दृष्टि से पूर्व बाल्यकाल परिचय तथा शिक्षा (ECCE) को उच्च प्राथमिकता दी जायेगी तथा इसे यथा सम्भव एकीकृत बाल सेवा (ICDS) कार्यक्रमों से जोड़ा जायेगा।

प्रारम्भिक शिक्षा

प्रारम्भिक शिक्षा में दो बातों (1) 14 वर्ष की आयु तक के बालकों के सार्वभौकिक स्थायित्व एवं (2) शिक्षा की गुणवत्ता में पर्याप्त सुधार पर जोर दिया जायेगा।

माध्यमिक शिक्षा :

माध्यमिक शिक्षा तक पहुंच को बढ़ाया जायेगा जिससे वर्तमान में छूट गये क्षेत्र भी माध्यमिक शिक्षा की पहुँच के अन्दर हो सके।

विशिष्ट योग्यता या अभिवृत्ति वाले बालकों के लिए गति निर्धारक स्कूल (Pace Setting School) देश के विभिन्न भागों में खोले जायेंगे।

व्यवसायीकरण :

व्यवसायीकरण शिक्षा के व्यवस्थित, योजनाबद्ध तथा दृढ़ता से लागू कार्यक्रम प्रस्तावित शैक्षिक पुर्नगठन के लिए आवश्यक है।

व्यवसायिक पाठ्यक्रम या संस्थाओं की स्थापना करने का उत्तरदायित्व सरकार एवं सरकारी व गैर सरकारी क्षेत्रों में नियोक्ताओं पर होगा।

नवसाक्षरों, प्राथमिक शिक्षा प्राप्त युवकों, स्कूल छोड़ देने वालों, कार्यरत व्यक्तियों तथा बेरोजगार या अर्ध बेरोजगार व्यक्तियों को व्यवसायिक शिक्षा के अनौपचारिक, गत्यात्मक तथा आवश्यकताओं पर आधारित कार्यक्रम भी उपलब्ध कराये जायेंगे।

सन् 1990 तक उच्च माध्यमिक छात्रों के दस प्रतिशत को तथा सन् 1995 तक पच्चीस प्रतिशत को व्यवसायिक पाठ्यक्रम देने का प्रस्ताव रखा गया था।

उच्च शिक्षा

वर्तमान उच्च शिक्षा संस्थाओं के एकीकरण तथा सुविधाओं के विस्तार पर जोर दिया जायेगा। उच्च शिक्षा व्यवस्था को ह्रास से बचाने के लिए शीघ्र उपाय किये जायेंगे।

पाठ्यक्रमों तथा कार्यक्रमों को पुनः रचित करना होगा। भाषायी योग्यता पर विशेष ध्यान दिया जायेगा।

संस्थाओं में न्यूनतम सुविधाओं का प्राविधान किया जायेगा तथा प्रवेश को क्षमता के अनुसार नियन्त्रित किया जायेगा।

विश्वविद्यालयों के अनुसन्धान कार्य को अधिक सहायता दी जायेगी तथा उच्च गुणवत्ता को सुनिश्चित करने के उपाय किये जायेंगे।

खुला विश्वविद्यालय व दूर अधिगम

उच्च शिक्षा के अवसरों को बढ़ाने तथा शिक्षा को जनतान्त्रिक करने के साधन के रूप में खुला विश्वविद्यालय प्रणाली आरम्भ की गई है।

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय खुला विश्वविद्यालय को सुदृढ़ किया जायेगा।

डिग्री की विलगता

चुने हुए क्षेत्रों में रोजगार को डिग्री से विलग करने की शुरूआत की जायेगी।

ग्रामीण विश्वविद्यालय

ग्रामीण विश्वविद्यालय का नया पैटर्न विकसित किया जायेगा। गाँधी जी की बेसिक शिक्षा की संस्थाओं तथा कार्यक्रमों को सहायता दी जायेगी।

खण्ड छः

तकनीकी तथा प्रबन्ध शिक्षा

तकनीकी तथा प्रबन्ध शिक्षा के पुर्नगठन में 20वीं शताब्दी के अन्त तक की अनुमानित परिस्थितियों, विशेषकर, अर्थव्यवस्था, सामाजिक वातावरण उत्पादन व प्रबन्ध प्रक्रियाओं में होने वोले सम्भावित परिवर्तन, ज्ञान की तीव्र गति से बढ़ोत्तरी तथा विज्ञान व तकनीकी की विराट उन्नति को ध्यान में रखना होगा।

कम्प्यूटरों का प्रारम्भिक ज्ञान तथा उनके उपयोग का प्रशिक्षण प्रोफेशनल शिक्षा का एक अंग होगा।

महिलाओं, आर्थिक व सामाजिक रूप से कमजोर वर्गों तथा विकलांगों के लाभ के लिए तकनीकी शिक्षा के उपयुक्त औपचारिक तथा अनौपचारिक कार्यक्रम बनाये जायेंगे।

तकनीकी व प्रबन्ध शिक्षा अधिक व्यय साध्य है, इसलिए लागत प्रभावशाली के लिए तथा श्रेष्ठता बढ़ाने के लिए उपाय किये जायेंगे।

प्रोफेशनल संघों को प्रोत्साहित एवं तैयार किया जायेगा।

खण्ड सात

शिक्षा प्रणाली का क्रियान्वयन

सर्वोच्च बौद्धिकता, लक्ष्य की गम्भीरता तथा नवाचार व सृजनशीलता के लिए आवश्यक स्वतन्त्रता के वातावरण में शिक्षा का प्रबन्ध करने की आवश्यकता है।

सभी अध्यापकों को पढ़ाना चाहिए तथा सभी छात्रों को पढ़ना चाहिए।

अध्यापकों का अधिक उत्तरदायित्व, सुधरी छात्र सेवाएँ तथा व्यवहार के स्वीकृत मानकों पर जोर, संस्थाओं में अधिक सुविधाएँ तथा राष्ट्रीय या राज्यी मानदण्डों व मानकों के अनुरूप संस्थाओं का मूल्यांकन करने की व्यवस्था करनी होगी।

खण्ड आठ

शिक्षा के पाठ्यक्रम तथा प्रक्रिया का अभिनवीकरण

शिक्षा के पाठ्यक्रम तथा प्रक्रियाओं को सांस्कृतिक पाठ्यवस्तु से सुदृढ़ किया जायेगा।

शिक्षा को सार्वभौमिक तथा सनातन मूल्यों को बढ़ावा देना चाहिये।

पुस्तकों की गुणवत्ता सुधारने, अध्ययन आदतों को बढ़ाने, तथा रचनात्मक लेखन को प्रोत्साहित करने के उपाय किये जायेंगे।

वर्तमान पुस्तकालयों के सुधार तथा नयों की स्थापना के लिए राष्ट्रव्यापी आन्दोलन चलाया जायेगा।

सूचनाओं के प्रसारण, अध्यापकों के प्रशिक्षण, गुणवत्ता को बढ़ाने, कला एवं संस्कृति के प्रति जागरूकता बढ़ाने, मूल्यों का विकास करने में शैक्षिक तकनीकी का प्रयोग किया जायेगा।

हिंसा, अलगाववाद आदि को बढ़ाने वाली तथा घातक प्रभाव वाली प्रवृत्तियों पर फिल्मों, रेडियो, टेलीविजन तथा अन्य जनसंचार साधनों में अंकुश लगाया जायेगा।

कार्य अनुभव, जिसे सभी स्तरों की शिक्षा का अनावश्यक अंग माना जाता है, को सुधार रूप से तैयार किये गये कार्यक्रमों के द्वारा प्रदान किया जाता है।

विज्ञान शिक्षा को इस तरह से सुदृढ़ करना होगा कि यह बालकों में जिज्ञासा, सृजनशीलता, वस्तुनिष्ठता जैसी योग्यताओं तथा मूल्यों को विकसित करें।

खेलकूद तथा शारीरिक शिक्षा अधिगम–प्रक्रिया के अभिन्न अंग हैं तथा इनको मूल्यांकन में शामिल किया जाना चाहिए।

युवकों को शिक्षा संस्थाओं के माध्यम से राष्ट्रीय तथा सामाजिक विकास के कार्य में सम्मिलित होने के अवसर दिये जाने चाहिए। छात्रों को एन0 एस0 एस0 एन0 सी0 सी0 जैसी योजनाओं में से किसी एक में भाग लेना होगा।

छात्रों के विकास का मापन करने की वैध एवं विश्वसनीय विधि सुनिश्चित करने तथा शिक्षण–अधिगम में सुधार का साधन बनाने के लिए परीक्षा में परिवर्तन करने होंगे।

खण्ड नौ

अध्यापक

अध्यापकों को रचनात्मक एवं सृजनात्मक दिशा में प्रोत्साहित एवं प्रेरित करने वाली परिस्थितियों के लिए तैयार करने के लिए सरकार व समुदाय को प्रयास करना चाहिये।

श्रेष्ठता, वस्तुनिष्ठता तथा आवश्यकता से अनुरूपता को सुनिश्चित करने के लिए अध्यापक चयन विधियों को पुर्नगठित करना चाहिए। अध्यापकों का वेतन तथा सेवा शर्तें उनके सामाजिक तथा प्रोफेशनल उत्तरदायित्वों के अनुरूप तथा इस प्रोफेशन में प्रतिभाओं को आकर्षित करने योग्य होने चाहिए। सम्पूर्ण राष्ट्र में एक समान वेतन तथा शर्तों के प्रयास किये जायेंगे।

प्रारम्भिक स्कूलं शिक्षकों तथा अनौपचारिक व प्रौढ़ शिक्षा में कार्यरत व्यक्तियों के लिए पूर्व–सेवा एवं सेवारत पाठ्यक्रम आयोजित करने के लिए जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (DIET) स्थापित किये जायेंगे।

खण्ड दस

शिक्षा का प्रबन्ध

शिक्षा की योजना एवं प्रबन्ध प्रणाली में परिवर्तन को उच्च प्राथमिकता दी जायेगी। दीर्घकालीन योजना बनाने, विकेन्द्रीकरण व शिक्षा संस्थाओं की स्वायत्ता की भावना का निर्माण, योजना व प्रबन्ध में महिलाओं की सहभागित, उद्देश्यों व मानकों के सम्बन्ध में उत्तरदायित्व, इस परिवर्तन में निर्देशक बिन्दु होंगे।

शिक्षा की उचितं प्रबन्ध संरचना में अखिल भारतीय सेवा के ढंग पर भारतीय शिक्षा सेवा (IES) की स्थापना को सम्मिलित करना होगा।

शिक्षा नियोजको, प्रशासकों तथा संस्थाओं के प्रधानों के प्रशिक्षण को विशेष प्राथमिकता दी जायेगी।

गैर सरकारी एवं स्वैच्छिक प्रयासों को प्रोत्साहित किया जायेगा। इसके साथ–साथ शिक्षा को व्यापार करने के लिए खोली जाने वाली संस्थाओं की स्थापना को रोकने के कदम उठाये जायेंगे।

खण्ड ग्यारह

संसाधन तथा समीक्षा

दान, उपहार, शुल्क आदि की सहायता से संसाधनों को अधिकतम सम्भव बढ़ाया जायेगा। अनुसन्धान तथा तकनीकी व वैज्ञानिक जनशक्ति के विकास में लगी हुई संस्थाएँ, अपने उपभोक्ता के प्रतिष्ठानों पर कर लगाकर, संसाधन जुटा सकती है।

शिक्षा को राष्ट्रीय विकास एवं संघर्ष के लिए निवेश का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र माना जायेगा। आठवीं पंचवर्षीय योजना से शिक्षा निवेश को एकरूप ढंग से राष्ट्रीय आय के छः प्रतिशत से अधिक करने को सुनिश्चित किया जायेगा।

नई नीति के विभिन्न प्राविधानों के क्रियान्वयन की प्रत्येक पाँच वर्ष बाद समीक्षा की जानी चाहिए। क्रियान्वयन में हुई प्रगति तथा समय–समय पर दृष्टिगोचर प्रवृत्ति के जानने के लिए अल्प अन्तराल पर मूल्यांकन भी किया जायेगा।

खण्ड बारह

भावी स्वरूप

भारतीय शिक्षा का भावी स्वरूप इतना जटिल होगा कि इसे ठीक–ठीक आँकना सम्भव नहीं है।

मुख्य कार्य शिक्षा प्रणाली के निचले स्तर का सुदृढ़ करना है जिसमें इस शताब्दी के अन्त तक लगभग एक अरब लोग होंगे। यह भी सुनिश्चित करना होगा कि शिक्षा प्रणाली के सबसे ऊपरी स्तर के लोग विश्व के श्रेष्ठतम व्यक्तियों में सम्मिलित हो।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के विवेचन से स्पष्ट है कि यह नीति काफी अंशों में पूर्ववर्ती शिक्षा नीति से मिलती–जुलती है। वास्तव में जब तक शासन पद्धति में, जन–आवश्यकताओं में या सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों में कोई आमूल–चूल परिवर्तन नहीं होता है तब तक नई नीति पर पुरानी नीति की स्पष्ट छाप रहती है। नई नीति से अभिप्रायः पूर्णरूपेण नवीन नीति से न होकर वरन पुरानी नीति की कमियों के दूर करके नई परिस्थितियों के अनुरूप उसे नूतन रूप देना होता है। नई नीति वास्तव में पुरानी नीति का ही परिमार्जित रूप होती है। इसलिए शिक्षा नीति 1986 का पुरानी नीति से साम्य स्वाभाविक

एवं तर्कसंगत ही प्रतीत होता है। परन्तु इसके साथ–साथ नई नीति अपने साथ अनेक नये संकल्पों के लेकर आती है। नई शिक्षा नीति के साथ भी यह सत्य है।

उत्तर प्रदेश शासन ने नयी शिक्षानीति पर राज्य स्तरीय विचार गोष्ठी 1 नवम्बर 1985 से 3 नवम्बर 1985 तक लखनऊ में आयोजित की, जिसके सुझाव और संस्तुतियाँ केन्द्रीय शासन को प्रेषित किये। उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा नीति के कियान्वयन हेतु जुलाई 1986 में निम्न समितियॉ गठित की गयी हैं।

सारणी – 2

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के क्रियान्वयन हेतु समितियाँ

समिति	समिति संख्या
प्राथमिक शिक्षा / पूर्व प्राथमिक शिक्षा	1
अनौपचारिक शिक्षा	2
प्रौढ़ एवं सतत् शिक्षा	3
माध्यमिक शिक्षा (विकलांगों की शिक्षा पद्धति)	4
शिक्षा का व्यवसायीकरण	5
महिला शिक्षा समिति	6
परीक्षा पद्धति में सुधार	7
शिक्षक प्रशिक्षण	8
उच्च शिक्षा	9
वित्तीय साधनों की व्यवस्था	10
पाठ्यक्रम एवं पुस्तकों का निर्माण	11
प्राविधिक शिक्षा	12

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के क्रियान्वयन के विभिन्न पहलुओं पर निर्णय लेने और उनके अनुश्रवण के लिएं मंत्रीपरिषद की एक उपसमिति का गठन किया गया है इसके

अलावा मुख्य सचिव की अध्यक्षता में सम्बन्धित विषयों की भी एक समिति गठित की गयी है जो मंत्री परिषद की उपसमिति के विचारार्थ प्रस्तावों को अंतिम रूप प्रदान करती है।

उत्तर प्रदेश के आदेश संख्या 2809/15–3–86–61 (46) 85 दिनांक 19.07. 86 द्वारा गठित समिति संख्या 6 (राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 महिला समिति की आख्या) ने डा0 उर्मिला किशोर के संयोजकत्व में महिला शिक्षा के उत्थान, विकास तथा उन्नयन एवं कार्यान्वियन हेतु 9 मार्च 1987 को विस्तृत आख्या प्रस्तुत की है। इस समिति ने नवीं पंचवर्षीय योजना तक महिला शिक्षा में निर्धारित तथा सम्बद्ध कार्यक्रमों को प्रस्तावित किया है। तथा ग्रामीण क्षेत्रों के बालक विद्यालय भवनों में द्विपाली में बालिका उच्चतर माध्यमिक विद्यालय खोलने हेतु मान्यता के नियम में शिथलीकरण का प्रस्ताव भी विचारार्थ प्रेषित किया है। इसके अतिरिक्त भी बालिका विद्यालयों की स्थापना के लिए नियमों एवं मानकों को शिथिल एवं सरेल किये जाने हेतु प्रस्ताव दिये गये।

भारत एवं उत्तर प्रदेश स्तर पर गठित प्रमुख शिक्षा समितियाँ

प्रस्तुत शोध में शोधकर्त्री द्वारा यह प्रयास किया गया है। कि शिक्षा के स्तरों में सुध ाार हेतु समय–समय पर जो शिक्षा नीति एवं शिक्षा प्रणाली के पुर्नगठन के लिए अनेक आयोगों एवं समितियों का गठन किया गया, उनका विवेचन किया जाय। केन्द्र सरकार के अतिरिक्त अनेक राज्यों ने भी शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर विभिन्न पक्षों की जाँच तथा पुर्नगठन के लिए अनेक समितियों का गठन किया गया। जिनका वर्णन यहाँ किया जाना समीचीन होगा। प्रस्तुत शोध में स्वतन्त्र भारत में गठित कुछ प्रमुख शैक्षिक समितियों का विवेचन उत्तर प्रदेश के विशेष संदर्भ में किया जाना उचित समझा गया। जिसे तालिका बद्ध किया गया है जो अग्रांकित है–

सारणी ३

अखिल भारतीय/उत्तर प्रदेश स्तर पर गठित प्रमुख शिक्षा समितियाँ

समयावधि	शैक्षिक समिति का नाम	वर्ष	समिति के अध्यक्ष	कार्यक्षेत्र	प्रचलित नाम
स्वतन्त्रता के बाद	१. माध्यमिक शिक्षा पुर्नगठन समिति	मार्च १९५२	आचार्य नरेन्द्रदेव	उत्तर प्रदेश में माध्यमिक शिक्षा	आचार्य नरेन्द्र देव समिति
	२. स्त्री शिक्षा पर राष्ट्रीय समिति	सितम्बर १९५७	श्रीमती दुर्गा बाई देशमुख	प्राथमिक, माध्यमिक एवं प्रौढ़ शिक्षा स्तर (बालिका शिक्षा के विभिन्न पक्षों)	देशमुख समिति
	३. धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा समिति	१९५६	श्री प्रकाश	प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा स्तर पर धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा	श्री प्रकाश समिति
	४. संवेगात्मक एकता समिति	मई १९६१	डा० सम्पूर्णानन्द	शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देना	डा० सम्पूर्णानन्द समिति
	५. हंसा मेहता समिति	१ नवम्बर १९६१	हंसा मेहता	शिक्षा के सभी स्तरों पर स्त्री शिक्षा के उन्नयन।	हंसा मेहता समिति
	६. १०+२+३ राष्ट्रीय समिति	१९७३	श्री पी०डी० शुक्ला	१०+२+३ की संरचना को राष्ट्रीय स्तर पर लागू करना एवं व्यय का अनुमान लगाना।	पी० डी० शुक्ला समिति
	७. ईश्वर भाई पटेल समिति	१९७७	श्री ईश्वर भाई जें० पटेल कुलपति गुजरात वि०वि० अहमदाबाद	N.C.E.R.T. द्वारा तैयार पाठ्यक्रम एवं पाठ्य पुस्तकों का पुनरीक्षण	पटेल समिति
	८. राष्ट्रीय पुनरीक्षण समिति	१९७७–७८	डा० मालकॉम एस० आदि सेषैया कुलपति मद्रास विश्वविद्यालय	+२ स्तर की शिक्षा के पाठ्यक्रम की जाँच।	आदिसेसैया समिति
	९. समीक्षा समिति	मई १९९०	आचार्य राममूर्ति	१९८६ की राष्ट्र शिक्षा नीति की समीक्षा	आचार्य राममूर्ति समिति
	१०. राष्ट्रीय सलाहकार समिति	१९९३	प्रो० यशपाल पूर्व अध्यक्ष विश्वविद्यालय अनुदान आयेगा।	स्कूली छत्रों का शैक्षिक बोझ कम करना।	प्रो० यशपाल समिति

आचार्य नरेन्द्र देव समिति (1952-53)

(Achrya Narendra Dev Committee 1952-53)

माध्यमिक शिक्षा में परिवर्तन व सुधार करने के लिए सन् 1948 में उत्तर प्रदेश के शिक्षा विभाग ने एक प्रान्तीय शिक्षा योजना प्रारम्भ की थी। परन्तु माध्यमिक शिक्षा के तीव्र विकास तथा आर्थिक कठिनाइयों के कारण यह योजना उचित ढंग से क्रियान्वित न हो सकी। ऐसी स्थिति में उत्तर प्रदेश सरकार ने अपने राज्य में माध्यमिक शिक्षा की प्रगति तथा सन् 1948 की शिक्षा योजना के क्रियान्वयन की जाँच के लिए आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में एक "माध्यमिक शिक्षा पुर्नगठन समिति" (Secondary Education Reorganization Committee) का गठन मार्च सन् 1952 में किया। इस समिति को आचार्य नरेन्द्र देव समिति (द्वितीय) के नाम से जाना जाता है। समिति ने माध्यमिक शिक्षा के विभिन्न पक्षों यथा–पाठ्यक्रम, तकनीकी शिक्षा, परीक्षा प्रणाली, स्कूल प्रबन्ध आदि के सम्बन्ध में अनेक महत्वपूर्ण सुझाव दिए। कुछ प्रमुख सुझाव है–

पाठ्यक्रम(Curriculum): •

1. माध्यमिक स्तर पर संस्कृत को हिन्दी के साथ अनिवार्य कर दिया जाये।
2. हिन्दी के अतिरिक्त एक अन्य आधुनिक भारतीय भाषा अथवा आधुनिक विदेशी भाषा को माध्यमिक स्तर पर अनिवार्य कर देना चाहिए।
3. कक्षा 9 व 10 में गणित को एक अनिवार्य विषय रखा जाये, जबकि कक्षा 11 व 12 में वैकल्पिक विषय कर दिया जाने चाहिए।
4. लड़कियों के लिए कक्षा 9 व 10 में भी गणित एक वैकल्पिक विषय ही होना चाहिए परन्तु गृहविज्ञान के एक अनिवार्य विषय कर दिया जाना चाहिए।
5. प्राथमिक, बेसिक तथा जूनियर हाई स्कूल के पाठ्यक्रमों में सुधार करके माध्यमिक शिक्षा से इनकी एकरूपता व समन्वय समुचित ढंग से स्थापित किया जाना चाहिए।

तकनीकी विद्यालय

1. तकनीकी स्कूलों में तकनीकी शिक्षा के साथ–साथ सामान्य शिक्षा भी दी जाये।
2. उद्योग तथा शिक्षा विभाग में उचित समन्वय के लिए एक बोर्ड बनाया जाये।

3. तकनीकी संस्थाओं को खोलते समय भौगोलिक उपयुक्तता व अन्य आवश्यक बातों का समुचित ढंग से ध्यान रखा जाये।

4. प्रत्येक जिले में कम से कम एक पॉलिटेक्निक स्कूल खोला जाये।

5. तकनीकी शिक्षा निःशुल्क प्रदान की जानी चाहिए।

परामर्श

1. छात्रों को विषय चयन में मार्गदर्शन करने के लिए मनोवैज्ञानिक परीक्षण तैयार किया जाये।

2. प्रत्येक जिले में मनोवैज्ञानिक केन्द्र खोले जायें।

3. माध्यमिक स्कूलों के शिक्षकों को मनोवैज्ञानिक जाँच के लिए प्रशिक्षित किया जाये।

4. छात्रों का संचयी लेखा (Commulative Record) रखा जाये तथा उनकी रूचि का भी अध्ययन किया जाना चाहिए।

5. इलाहाबाद के मनोवैज्ञानिक ब्यूरो को सुधारा जाये।

माध्यमिक शिक्षा का पुर्नगठन

1. उच्चतम माध्यमिक स्तर पर कक्षा 9, 10 व 11 का तीनवर्षीय पाठ्यक्रम रखा जाये।

2. 16 वर्ष की आयु से कम के छात्र–छात्राओं को उच्चतर माध्यमिक परीक्षाओं में सम्मिलित होने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

3. कक्षा 12 को डिग्री कोर्स में मिलाकर तीनवर्षीय डिग्री पाठ्यक्रम कर दिया जाये।

4. प्रत्येक विद्यालय में कम से कम 200 दिन शिक्षण कार्य हों।

5. प्रत्येक 20 या 30 छात्रों पर एक शिक्षक संरक्षक (Tutor-Guardian) हो।

6. छात्र और अध्यापकों के परस्पर सम्बन्ध घनिष्ठ बनाएं जायें।

विद्यालय प्रबन्ध

1. सहायता प्राप्त विद्यालयों के प्रबन्ध को सुधारा जाये।

2. अयोग्य प्रबन्ध समितियों को समाप्त करके सरकारी प्रशासक नियुक्त कर दिया जाये।

3. प्रधान अध्यापक तथा अध्यापकों के प्रतिनिधि को प्रबन्ध समिति में रखा जाय।

4. प्रबन्ध समिति में अधिक से अधिक 12 सदस्य हों तथा इसका चुनाव प्रत्येक तीन वर्ष के बाद हो।
5. अध्यापक प्रतिनिधि वरिष्ठता के क्रम में प्रत्येक वर्ष बदल दिया जाये।

पाठ्यपुस्तक

1. पाठ्य पुस्तकों को स्वीकृत करने की प्रणाली समाप्त कर दी जाय।
2. केवल पाठ्यक्रम निर्धारित कर दिया जाय तथा प्रधान अध्यापक विषय अध्यापक से परामर्श करके अपने विद्यालय के लिए पाठ्य पुस्तक का निर्धारण कर लें।
3. शिक्षा विभाग पाठ्य पुस्तक चयन में सहायता व निर्देशन के लिए कुछ पुस्तकों की सूची प्रकाशित कर दिया करें।
4. एक बार चयनित पुस्तकें कम से कम तीन वर्ष तक चलती रहनी चाहिए।
5. सरकार स्वयं पुस्तक प्रकाशित न करें, परन्तु उच्च स्तरीय पुस्तकों को उपलब्ध कराने के उत्तरदायित्व का निर्वाह करें।

उपरोक्त के अवलोकन से स्पष्ट है कि आचार्य नरेन्द्र देव समिति ने माध्यमिक शिक्षा प्रणाली में सुधार करने के लिए एक विस्तृत व उपयोगी प्रतिवेदन प्रस्तुत किया।

दुर्गाबाई देशमुख समिति (1957-59)

(Durgabai Deshmukh Committee 1957-59)

जुलाई 1957 में योजना आयोग के शैक्षिक दल ने "प्राथमिक, माध्यमिक तथा प्रौढ़ शिक्षा स्तरों पर लड़कियों की शिक्षा के विभिन्न पक्षों का अध्ययन करने तथा यह देखने के लिए कि क्या वर्तमान शिक्षा प्रणाली लड़कियों को एक प्रसन्न व उपयोगी जीवन जीने के योग्य बनाने में सहायता कर रही है, "एक समिति का गठन करने का सुझाव दिया। अध्यक्षा के नाम पर इस समिति को देशमुख समिति भी कहा जाता है। इस समिति में निम्न सदस्य थे–

अध्यक्ष – श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख, अध्यक्षा, केन्द्रीय समाज कल्याण परिषद, नई दिल्ली।

सदस्यः

1. कु0 एस0 पान्दीकर
2. श्री पी0 ए0 माथुर

3. श्रीमती कुलसुम सायानी

4. श्री जे0 पी0 नायक

5. श्रीमती सहरा अहमद

6. श्रीमती ओ0 सी0 श्रीनिवासन

7. कु0 सरोजनी राजन

8. डा0 फुलरेनू गुहा

इस समिति को निम्न कार्य सौपे गए थे–

1. प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तरों पर स्त्री शिक्षा के प्रसार के लिए उपाय सुझाना।
2. लड़कियों की शिक्षा में अपव्यय की समस्या का अध्ययन करना।
3. ऐसी प्रौढ़ महिलाएं जो या तो अशिक्षित हैं अथवा जिन्होंने अल्प शिक्षा पाई है तथा जिनके लिए पुनः शिक्षा को जारी करने की आवश्यकता है, की समस्याओं का अध्ययन करना।
4. नारी शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत स्वैच्छिक संगठनों के क्रियाकलापों तथा सुविधाओं का सर्वेक्षण करना।
5. व्यवसायिक प्रशिक्षण प्रदान करके अधिक संख्या में महिलाओं को व्यवसाय में जाने के लिए प्रोत्साहित करने की सम्भावना तथा तरीकों पर विचार करना।

समिति ने स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में पर्याप्त विचार–विमर्श करने के उपरान्त स्त्री शिक्षा के प्रोत्साहन हेतु एक विस्तृत सुझाव प्रस्तुत किया। इनमें से कुछ प्रमुख सुझाव अग्रांकित है–

1. स्त्री शिक्षा को काफी लम्बे समय तक शिक्षा की एक बड़ी तथ विशिष्ट समस्या के रूप में देखा जाना चाहिए।
2. यथासम्भव शीघ्रता से कन्या व महिला शिक्षा की राष्ट्रीय परिषद गठित की जानी चाहिए।
3. राज्य सरकारों को इस प्रकार की राज्य परिषदें गठित करनी चाहिए।
4. योजना आयोग को महिला शक्ति की आवश्यकताओं का समय–समय पर अनुमान लगाना चाहिए।

5. लड़कियों की शिक्षा के लिए अर्द्ध सरकारी संस्थाओं, स्थानीय संस्थाओं, स्वैच्छिक संगठनों, अध्यापक संघों तथा जन सामान्य का सहयोग प्राप्त करना आवश्यक होगा।
6. ग्रामीण तथा शहरी सभी क्षेत्रों के निर्धन अभिभावकों की लड़कियों को शिक्षा के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।
7. अनुपातिक स्तर पर लड़कियों का अधिक नामांकन वाले तथा अधिक औसत उपस्थिति वाले गाँव को पुरस्कृत करने की योजना चलाई जानी चाहिए।
8. मिडिल स्कूल स्तर पर अधिकाधिक सह–शिक्षा संस्थायें खोली जानी चाहिए।
9. माध्यमिक स्तर पर लड़कियों के लिए अलग विद्यालय विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में खोले जाने चाहिए।
10. सभी लड़कियों को मिडिल स्तर की शिक्षा निःशुल्क दी जानी चाहिए।
11. लड़कियों को मिडिल तथा माध्यमिक स्कूल जाने के लिए यथासम्भव निःशुल्क अथवा सहायक यातायात सुविधा उपलब्ध करानी चाहिए।
12. प्राथमिक स्तर पर लड़के व लड़कियों के लिए समान पाठ्यक्रम होना चाहिए, परन्तु पाठ्यक्रम को लड़कियों के लिए अधिक उपयुक्त बनाने की दृष्टि से संगीत, चित्रकला, सिलाई, कढ़ाई, पाक कला आदि का प्राविधान किया जा सकता है।
13. मिडिल स्कूल स्तर तथा विशेष रूप से माध्यमिक स्तर पर लड़के तथा लड़कियों के पाठ्यक्रम में विभेद करने की आवश्यकता है।
14. महिला अध्यापकों के लिए प्रशिक्षण संस्थाओं को स्थापित करने की आवश्यकता है।
15. शहरी महिलाओं को ग्रामीण स्कूलों में अध्यापन कार्य स्वीकार करने के लिए प्रोत्साहित करने हेतु आवास उपलब्ध कराना चाहिए तथा ग्रामीण भत्ता देना चाहिए।
16. अध्यापिकाओं के लिए अध्यापन व्यवसाय में प्रवेश की अधिकतम आयु से छूट दी जानी चाहिए।
17. महिलाओं के अल्पावधि रोजगार दिये जाने चाहिए।
18. छात्रवृत्तियों आदि के द्वारा लड़कियों को वाणिज्य, अभियांत्रिकी, कृषि तथा चिकित्सा के विश्वविद्यालय स्तरीय पाठ्यक्रमों के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

19. कार्यालयों तथा अन्य संगठनों में लड़कियों के काम करने के लिए उचित माहौल बनाने के लिए जन आन्दोलन चलाने चाहिए।

20. प्रौढ़ महिलाओं के लिए मिडिल स्कूल तथा हाई स्कूल परीक्षाओं की तैयारी हेतु सघन पाठ्यक्रम चलाने चाहिए।

21. महिलाओं के व्यवसायिक प्रशिक्षण के लिए भी सघन पाठ्यक्रम चलाये जाने चाहिए।

22. महिलाओं की शिक्षा के विकास के लिए स्वैच्छिक संगठनों की सेवायें ली जानी चाहिए।

23. लड़कियों की शिक्षा संस्थाओं को सहायता अनुदान देने की शर्तों को सरल बनाया जाना चाहिए।

24. अपव्यय की समस्या के अध्ययन के लिए अखिल भारतीय स्तर पर अध्ययन करने के लिए शिक्षा मंत्रालय को कार्य करना चाहिए।

25. कक्षा 1 में अवरोधन को दूर करने के लिए **(अ)** सभी प्रवेश सत्र के प्रारम्भ में किये जाने चाहिए, **(ब)** उपस्थिति बनाए रखने के लिए अध्यापक को विशेष रूप से उत्तरदायी बनाना चाहिए, **(स)** प्रवेश आयु बढ़ाकर 6+ कर देनी चाहिए तथा **(द)** शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाना चाहिए।

26. कक्षा 2 से 5 तक में होने वाले अवरोधन को **(अ)** छात्रों की उपस्थिति बढ़ा कर, **(ब)** शिक्षण के स्तर के उन्नत करके, **(स)** आंतरिक परीक्षा प्रणाली लागू करके तथा **(द)** गरीब बच्चों को किताबें व अन्य शैक्षिक उपकरण देकर कम किया जा सकता है।

27. प्राथमिक स्तर पर लगभग 65 प्रतिशत आर्थिक कारणों से होता है जिसे अल्पकालीन शिक्षा का प्राविधान करके समाप्त किया जा सकता है।

28. प्राथमिक स्तर पर लगभग 25 से 30 प्रतिशत अपव्यय अभिभावकों की उदासीनता के कारण होता है जिसे शैक्षिक प्रचार तथा अनिवार्य शिक्षा कानून को कठोरता से लागू करके दूर किया जा सकता है।

29. अध्यापकों के वेतन में वृद्धि की जानी चाहिए। विभिन्न प्रकार के विद्यालयों में कार्यरत अध्यापकों के वेतन भत्तों में कोई अंतर नहीं होना चाहिए।

30. सभी अध्यापकों के पेंशन–भविष्यनिधि बीमा की त्रीलाभ योजना का लाभ दिया जाना चाहिए।

उपरोक्त सुझावों के अवलोकन से स्पष्ट है कि दुर्गाबाई देशमुख समिति ने लड़कियों की शिक्षा के महत्व, आवश्यकता व प्रसार, पाठ्यक्रम, प्रशासन, अध्यापक, प्रशिक्षण, अपव्यय व अवरोधन तथा अध्यापिकाओं के वेतन–भत्तों व अन्य लाभों के सम्बन्ध में अनेक महत्वपूर्ण संस्तुतियाँ प्रस्तुत की।

श्री प्रकाश समिति (1959)

(Shri Prakash Committee - 1959)

सन् 1959 में शिक्षा मन्त्रालय भारत सरकार के द्वारा श्री श्रीप्रकाश की अध्यक्षता में धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा की समस्या पर विचार करने के लिए एक धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा समिति का गठन किया गया। सीमित के अध्यक्ष के नाम पर इस समिति को श्री प्रकाश समिति के नाम से जाना जाता है। समिति के सदस्य निम्नवत् थे–

अध्यक्ष – श्री श्रीप्रकाश, राज्यपाल बम्बई।

सदस्यः

1. श्री जी0 सी0 चटर्जी, कुलपति, राजस्थान विश्वविद्यालय
2. श्री ए0 ए0 ए0 फायजी, कुलपति, जम्मू व कश्मीर विश्वविद्यालय
3. श्री पी0 एन0 कृपाल, सहसचिव, शिक्षा, भारत सरकार

समिति को दिये गये प्रमुख कार्य निम्नवत थे–

1. शिक्षा संस्थाओं में नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा के विशेष प्राविधान करने की वांछनीयता तथा सम्भावना पर विचार करना।
2. यदि ऐसा करना सम्भव व वांछनीय हो तब **(अ)** शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर इसकी पाठ्यवस्तु निर्धारित करना, तथा **(ब)** सामान्य पाठ्यक्रम में इसके स्थान पर विचा करना।

1. शिक्षा संस्थाओं में नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों का शिक्षण करना वांछनीय है। इस दिशा में विशेष प्राविधान करना कुछ सीमाओं तक सम्भव है।
2. नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों की इस शिक्षा के पाठ्यवस्तु में महान धार्मिक विभूतियों के जीवनवृत्तों तथा उपदेशों का तुलनात्मक व समुचित अध्ययन सम्मिलित किया जाना चाहिए।

3. जनसंचार साधनों जैसे पोस्टर, वार्ता, रेडियो व सिनेमा तथा स्वैच्छिक संगठनों के द्वारा घरों के भौतिक रखरखाव व मनोवैज्ञानिक माहौल की कमियों व दोषों को बताया जाना चाहिए जिससे उन्हें दूर किया जा सके।

4. जैसा कि विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने बताया है, यह वांछनीय होगा कि प्रत्येक शिक्षा संस्था के प्रतिदिन का कार्य का प्रारम्भ कुछ मिनटों के मौन ध्यान से किया जाये।

5. प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालय, सभी स्तरों के लिए उपयुक्त पुस्तकें तैयार की जानी चाहिए जिनमें सभी धर्मों के विचारों को तुलनात्मक व सहानुभूति ढंग से वर्णित करने के साथ–साथ महान धार्मिक विभूतियों, सन्तों व दार्शनिकों के जीवन व उपदेशों को समाहित किया जाये।

6. पाठ्योत्तर क्रियाओं के रूप में योग्य, अनुभवी व्यक्तियों के अन्तर–धार्मिक समझ पर व्याख्यान देने के लिए बुलाया जाना चाहिए। नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों में रूचि बढ़ाने के लिए शैक्षिक वार्ताएं व समूह वार्ताएं आयोजित की जा सकती हैं।

7. अच्छे तौर–तरीके सिखाने तथा आदर–सत्कार की भावना बढ़ाने पर जोर दिया जाना चाहिए।

8. सभी स्तरों पर किसी न किसी प्रकार की शारीरिक शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिए। श्रम के प्रति आदर तथा समाज–सेवा को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

समिति के द्वारा दी गई उपरोक्त संस्तुतियों के अवलोकन से स्पष्ट है कि समिति ने विभिन्न धर्मों, दर्शनों तथा आचारों की समन्वित शिक्षा देने का पक्ष लिया। वस्तुतः समिति किसी विशेष धार्मिक शिक्षा के पक्ष में न होकर चरित्र–निर्माण तथा सुयोग्य नागरिक बनाने के लिए आवश्यक शिक्षा देने के पक्ष में थी। व्यापक उपद्रवों तथा जीवन की अस्तव्यस्तता को समाप्त करने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक था। आज के परिदृश्य में श्री प्रकाश समिति की सिफारिशें अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा उपयोगी प्रतीत होती है। गिरते नैतिक चरित्र का उन्नयन करके सनातन मूल्यों की रक्षा के लिए शिक्षा संस्थाओं में धर्म निरपेक्ष प्रकृति के धार्मिक व नैतिक ज्ञान की शिक्षा प्रदान की महती आवश्यकता प्रतीत होती है।

डा0 सम्पूर्णानन्द समिति (1961)

(Dr. Sampurnanand Committee - 1961)

नवम्बर सन् 1960 में हुई शिक्षा मन्त्रियों की कांफ्रेस में देश में हो रही विघटनकारी गतिविधियों की चर्चा हुई तथा महसूस किया गया कि यदि इस प्रकार की प्रवृत्तियों की रोकथाम नहीं की गई तो यह देश की एकता के लिए एक बड़ा खतरा बन जायेगा। इस पृष्ठभूमि में शिक्षा की भूमिका के महत्व को स्वीकार करते हुए कहा गया कि इन विघटनकारी प्रवृत्तियों के कम करने तथा राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने के लिए शिक्षा का उपयोग किया जाना चाहिए। इस कांफ्रेस ने इस समस्या का अध्ययन करने तथा राष्ट्रीय एकता को प्रोत्साहित करने के उपायों पर विचार करने के लिए एक समिति का गठन करने का सुझाव दिया। तब मई 1961 में भारत सरकार के शिक्षण मन्त्रालय ने डा0 सम्पूर्णानन्द की अध्यक्षता में संवेगात्मक्र एकता पर समिति का गठन किया। जिसे सम्पूर्णानन्द समिति के नाम से जाना जाता है। इस समिति के सदस्य निम्नवत् थे–

अध्यक्ष – डा0 सम्पूर्णानन्द

सदस्य:

1. श्रीमती इन्दिरा गांधी
2. प्रो0 टी0 एम0 अडवाणी
3. प्रो0 हीरेन मुखर्जी
4. श्री0 एम0 हेनरी सेमुअल
5. प्रो0 एम0 एन0 श्रीनिवास
6. भाई जोध सिंह
7. श्री ए0 इ0 टी0 बारी
8. श्री अशोक मेहता
9. श्री ए0 ए0 ए0 फायजी

इस समिति को दिया गया कार्य निम्नवत था–

1. राष्ट्रीय जीवन में संवेगात्मक एकता को बढ़ाने में शिक्षा की भूमिका का अध्ययन करना तथा इसके मार्ग की बाधाओं को जानना।

2. उपरोक्त अध्ययन के परिप्रेक्ष्य में संवेगात्मक एकता को सुदृढ़ करने के लिए युवाओं तथा छात्रों के लिए सकारात्मक कार्यक्रमों को सुझाना।

समिति ने संवेगात्मक एकता के सुदृढ़ीकरण में शिक्षा की जीवन्त भूमिका को स्वीकार करते हुए कहा कि शिक्षा न केवल छात्रों को ज्ञान प्रदान करती है वरन् छात्रों के व्यक्तित्व के सभी पक्षों का विकास करती है। शिक्षा को छात्रों के दृष्टिकोण को विस्तृत करना चाहिए तथा भाई चारे, राष्ट्रीयता, त्याग व सहनशीलता की भावना को बढ़ाना चाहिए जिससे निहित स्वार्थी की प्रवृत्ति को समाप्त किया जा सकें।

समिति के द्वारा की गई प्रमुख संस्तुतियाँ निम्नवत थी–

1. पाठ्यक्रमों को धर्मनिरपेक्ष राज्य की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाया जाना चाहिए। प्राथमिक स्तर पर कहानियों, कविताओं, लोकगीतों, राष्ट्रगान, अन्य राष्ट्रीय गीतों तथा सामाजिक अध्ययन के महत्व पर जोर दिया गया। माध्यमिक स्तर पर भाषा व साहित्य, सामाजिक अध्ययन, नैतिक व धार्मिक शिक्षा तथा पाठ्यसहगामी क्रियाओं के सम्मिलित करना चाहिए। विश्वविद्यालय स्तर पर विभिन्न सामाजिक विज्ञानों, भाषाओं व साहित्य, संस्कृति तथा कला के अध्ययन का सुझाव दिया गया।
2. पाठ्यक्रम में पाठ्यसहगामी क्रियाओं का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया। संतुलित व सुसमायोजित व्यक्तित्व के विकास में पाठ्यसहगामी क्रियाओं का सार्थक योगदान होता है। ये भाईचारे व एकीकरण की भावना को बढ़ाती हैं, दृष्टिकोण को व्यापक बनाती हैं तथा दया व सहनशीलता को विकसित करती है। त्यौहारों व राष्ट्रीय महत्व की घटनाओं का मिलजुलकर आयोजन करना, खेल, शैक्षिक भ्रमण, पिकनिक, एन0सी0सी0 स्काउटिंग व गाइडिंग, छात्र शिविर, वाद–विवाद, नाटक, युवा उत्सव आदि पर जोर दिया गया। श्रव्य–दृव्य साधन जैसे फिल्म, रेडियो व दूरदर्शन आदि के प्रयोग का भी सुझाव दिया गया।
3. प्राथमिक, माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय, सभी स्तरों पर सामाजिक अध्ययन की शिक्षा दी जानी चाहिए। इसके अन्तर्गत भौगोलिक ज्ञान, देश की ऐतिहासिक व सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि तथा विश्व ज्ञान दिया जाना चाहिए। सामाजिक अध्ययन की पुस्तकों में देश तथा विश्व के महान व्यक्तियों के जीवन–वृत्तों व कार्यों तथा रामायण व महाभारत जैसी प्राचीन पुस्तकों की कहानियों को सम्मिलित किया जाना चाहिए।

4. क्योंकि पाठ्य पुस्तकें संवेगात्मक एकता को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं, इसलिए पाठ्य पुस्तकों में सुधार करने की आवश्यकता है। इतिहास की पाठ्य पुस्तकों को तैयार करते समय इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि तथ्यों को गलत ढंग से अथवा तोड़—मरोड़ कर बढ़ा—चढ़ा कर प्रस्तुत न किया जाये। प्राथमिक स्तर की पाठ्य पुस्तकों में चित्रों तथा उद्धरणों का उपयोग किया जाना चाहिए।
5. हाई स्कूल स्तर पर हिन्दी को देवनागरी लिपि में पढ़ाया जाना चाहिए। विश्वविद्यालय स्तर पर दो सम्पर्क भाषाएँ, हिन्दी व अंग्रेजी, को पढ़ाया जाना चाहिए। अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी का प्रसार करने के लिए हिन्दी पुस्तकों को रोमन लिपि में प्रकाशित करना चाहिए। सम्पूर्ण भारत में अन्तर्राष्ट्रीय अंकों का प्रयोग किया जाना चाहिए।
6. स्कूल बच्चों के लिए वेशभूषा का निर्धारण होना चाहिए। परन्तु सम्पूर्ण भारत के लिए एक समान वेशभूषा आवश्यक नहीं है।
7. बच्चों को एक स्तर तथा अनुशासित ढंग से राष्ट्रगान गाने की शिक्षा दी जानी चाहिए। राष्ट्र गान के अर्थ को समझाया जाना चाहिए। राष्ट्र गान गाये जाते समय अनुशासित ढंग से खड़े रहने की शिक्षा भी दी जानी चाहिए।
8. छात्रों को राष्ट्रीय ध्वज के इतिहास को बताया जाना चाहिए।
9. राष्ट्रीय दिवस जैसे 26 जनवरी, 15 अगस्त व 2 अक्टूबर को स्कूलों में सभी छात्रों व अध्यापकों तथा समुदाय के साथ मनाया जाना चाहिए।
10. समय—समय पर राष्ट्रीय एकता से सम्बन्धित वार्ताएं करानी चाहिए।
11. वर्ष में कम से कम दो बार छात्रों से स्वयं को राष्ट्र व अन्य कर्तव्य भावना की शपथ ली जानी चाहिए।

शपथ का प्रारूप निम्नवत् हो सकता है—

"भारत मेरा देश है। सभी भारतीय मेरे भाई व बहन हैं। मैं अपने देश को प्यार करता हूँ तथा मुझे समृद्ध तथा विविधपूर्ण सांस्कृतिक विरासत पर गर्व है। मैं सदैव इसके योग्य बनने का प्रयास करूँगा। मैं अपने माता—पिता, अध्यापकों तथा सभी बुजुर्गों का सम्मान करूँगा तथा सभी से सौजन्य से बात करूँगा। मैं पशुओं के प्रति दयालु रहूँगा। अपने देश तथा जनता के प्रति समर्पण की मैं शपथ लेता हूँ। उनके सुख तथा समृद्धि में ही मेरी प्रसन्नता निहित है।"

12. विभिन्न राज्यों में पढ़ने वाले छात्रों के लिए अन्य राज्यों के भ्रमणों का आयोजन किया जाना चाहिए। राज्यों के द्वारा युवा छात्रावासों की स्थापना की जानी चाहिए।
13. विद्यालय प्राँगणों की स्वच्छता के कार्यों में छात्रों का सहयोग लेना चाहिए।
14. शिक्षा संस्थाओं में छात्रों के प्रवेश में जाति पर कोई ध्यान नहीं दिया जाना चाहिए।
15. अध्यापकों के लिए सामाजिक अध्ययन तथा भाषा की हैन्डबुक्स प्रकाशित की जानी चाहिए।
16. देश के बारे में छात्रों की जानकारी बढ़ाने के लिए प्रोजेक्टों का संचालन किया जा सकता है।
17. विशिष्ट अध्यापकों को समय–समय पर विभिन्न विश्वविद्यालयों में भेजा जाना चाहिए जिससे सभी जगहों के छात्र उनके ज्ञान व अनुभव का लाभ उठा सकें।

हंसा मेहता समिति (1964)

(Hansa Mehta Committee - 1964)

राष्ट्रीय स्त्री शिक्षा परिषद ने 10 मई 1961 की अपनी बैठक में अपनी अध्यक्षता में इस बात के लिए अधिकृत किया कि वह शिक्षा के सभी स्तरों पर लड़कियों के पाठ्यक्रम की समस्या पर विस्तार से विचार करने के लिए एक समिति का गठन करें। तब 1 नवम्बर 1961 को राष्ट्रीय स्त्री शिक्षा परिषद की अध्यक्ष श्रीमती द्राक्षा सरन ने शिक्षा मन्त्रालय के परामर्श से श्रीमती हंसा मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया जिसे हंसा मेहता समिति के नाम से जाना जाता है।

इस समिति के ग्यारह सदस्य निम्नवत् थे–

अध्यक्ष – श्रीमती हंसा मेहता

सदस्य:

1. कु0 एस0 पानन्दीकर
2. कु0 एस0 सेन
3. कु0 एस0 पंकाजान
4. कु0 के0 सब्बरवाल

5. श्रीमती एस0 राय
6. श्रीमती चिना नायक
7. श्रीमती बी0 ताराबाई
8. श्री पी0 एन0 माथुर
9. श्री टी0 सी0 शंकरामेनन
10. श्रीमती वी0 मूर्ले

इस समिति को निम्न कार्य सौंपा गया–

1. स्कूली शिक्षा के वर्तमान पाठ्यक्रम की जाँच करना तथा देखना कि यह महिलाओं की व्यक्तिगत तथा सामाजिक आवश्यकताओं का ध्यान किस सीमा तक करता है।
2. सामान्य शिक्षा के आवश्यक सुधार के लिए सुझाव देना।
3. माध्यमिक स्तर पर पूर्व–व्यवसायिक प्रकृति के विभेदीकृत पाठ्यक्रमों की आवश्यकता पर विचार करना।
4. लड़कियों के लिए सर्वाधिक उपयुक्त रोजगारों के प्रकारों की जाँच करना।

हंसा मेहता समिति के द्वारा की गई कुछ प्रमुख सिफारिशें निम्नवत् थीं–

1. समिति ने लड़के–लड़कियों के बीच शारीरिक, बौद्धिक व मनोवैज्ञानिक विशेषताओं के अन्तर होने की परम्परागत धारणा को मिथ्या मानते हुए कहा कि लड़के लड़कियों की शैक्षिक व व्यवसायिक उपलब्धियों में दृष्टिगोचित अन्तर वस्तुतः उपयुक्त अवसरों की कमी अथवा परम्परागत सांस्कृतिक दृष्टिकोण के कारण होता है।
2. संविधान में लड़के व लड़कियों को समान माना है, इसलिए लड़के तथा लड़कियों की शिक्षा के अन्तर को तेती से कम करना चाहिए।
3. लड़के–लड़कियों के बीच अन्तर से सम्बन्धित वैज्ञानिक ज्ञान देने तथा एक दूसरे के प्रति उचित दृष्टिकोण विकसित करने के लिए सघन प्रयास किये जाने चाहिए।
4. प्राथमिक स्तर पर सह शिक्षा को सामान्यतः अपनाया जाना चाहिए।
5. माध्यमिक तथा कालेज स्तर पर प्रबन्धकों तथा अभिभावकों को पूर्ण छूट होनी चाहिए कि

वे चाहे तो सहशिक्षा संस्थाएं संस्थापित करें तथा चाहे लड़के–लड़कियों के लिए अलग–अलग संस्थाएं खोले।

6. लड़कों वाली माध्यमिक तथा कालेज स्तरीय संस्थाओं में महिला अध्यापकों को नियुक्त किये जाने का प्रयास करना चाहिए।

7. प्राथमिक तथा मिडिल स्कूल पर लड़के तथा लड़कियों के पाठयक्रम में कोई विभेद नहीं किया जाना चाहिए।

8. माध्यमिक स्तर पर प्रचलित अभिरूचियों व क्षमताओं के अनुरूप विभेदीकृत पाठ्यक्रम की नीति लड़कियों की विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती है।

9. माध्यमिक स्तर पर लड़कियों के लिए गृह विज्ञान, ललित कलाओं, संगीत आदि के विभेदीकृत पाठ्यक्रम तेजी से प्रारम्भ करने चाहिए।

10. माध्यमिक स्तर पर गृह विज्ञान शिक्षा की कमियों को दूर करना चाहिए। पाठ्य पुस्तकों की कमी, अध्यापकों की कमी, विश्वविद्यालयों की स्वीकृति की कमी तथा पाठ्यक्रमों की त्रुटिपूर्ण अभिविन्यास कुछ ऐसी प्रमुख कमियाँ हैं जिन पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

11. मिडिल तथा माध्यमिक स्तर पर यौन शिक्षा दिया जाना आवश्यक है।

12. माध्यमिक स्तर पर गणित अथवा विज्ञान का अध्ययन करने वाली छात्राओं को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

13. गणित तथा विज्ञान की महिला अध्यापिकाओं को तैयार करने के लिए विशेष प्रयास किये जाने चाहिए।

14. महिलाओं के त्यौहारों, लड़कियों के खेलों, महान नारियों के जीवन–वृत्तों आदि प्रकरणों को सम्मिलित करके लड़कियों की आवश्यकताओं, अनुभवों तथा समस्याओं पर भाषा तथा सामाजिक अध्ययन की पुस्तकों में उचित ध्यान देना चाहिए।

15. पाठ्य पुस्तकों के माध्यम से लड़के–लड़कियों में एक दूसरे के प्रति उचित दृष्टिकोण विकसित करना चाहिए।

16. माध्यमिक तथा उच्चं शिक्षा स्तरों पर लड़कियों के लिए व्यवसायिक पाठ्यक्रमों को बढ़ाया जाना चाहिए।

17. यथा सम्भव अधिकाधिक रोजगारों में बड़ी संख्या में महिलाओं को अंशकालीन ढंग से करने की सम्भावनाओं को देखा जाना चाहिए।

हंसा मेहता समिति के द्वारा प्रस्तुत किये गये सुझावों के अवलोकन से स्पष्ट है कि इस समिति ने लड़कियों की शिक्षा को प्रोत्साहित करने पर बल दिया। लड़कियों के लिए अलग पाठ्यक्रम के विचार को निरूत्साहित करते हुए समिति ने लड़कियों के लिए विज्ञान व गणित की शिक्षा तथा व्यवसायिक प्रशिक्षण की आवश्यकता पर बल देने की संस्तुति की।

भारत सरकार के द्वारा गठित स्त्रियों की स्थिति पर समिति 1971–74 के प्रतिवेदन जिसका शीर्षक समानता की ओर था, के अध्याय छः में स्त्रियों की शिक्षा, सह–शिक्षा पाठ्यक्रम, यौन शिक्षा से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण सुझाव दिये गये थे।

ईश्वरभाई पटेल समीक्षा समिति (1977)

(Ishwarbhai Patel Committee - 1977)

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद शिक्षा के समुचित प्रबन्ध के लिए प्रमुख शिक्षा अयोगों एवं समितियों को समय की आवश्यकतानुसार समय–समय पर गठन किया गया। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (NCERT) के द्वारा तैयार किये गये पाठ्यक्रम व पाठ्य पुस्तकों के पुनरीक्षण (Review) के लिए वर्ष 1977 में तत्कालीन केन्द्रीय शिक्षा मंत्री ने NCERT के अध्यक्ष की हैसियत से श्री ईश्वर भाई जे0 पटेल की अध्यक्षता में एक पुनरीक्षण समिति (Review Committee) का गठन किया। इस समिति का नाम ''दस वर्षीय स्कूल पाठ्यक्रम पुनरीक्षण समिति'' (Review Committee on the curriculum for the ten year school) था, परन्तु इसके अध्यक्ष श्री ईश्वर भाई पटेल थे, इसलिए इसे 'पटेल' समिति भी कहा जाता है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद के द्वारा तैयार किया गया पाठ्यक्रम पाठ्यपुस्तकों से विशेषकर कार्य अनुभव को सभी स्तरों पर शिक्षण अधिगम में उचित स्थान न देने के प्रश्न को लेकर जनसामान्य, अध्यापक, अभिभावक, तथा छात्रों में तीव्र असन्तुष्टि थी। इसलिए पाठ्यक्रम व पाठ्य पुस्तकों व पाठ्य पुस्तकों के वस्तुनिष्ठ आंकलन के लिए यह पुनरीक्षण समिति बनायी गई थी। इस समिति के निम्न सदस्य इस प्रकार थे–

अध्यक्ष–श्री ईश्वर भाई जे0 पटेल

कुलपति गुजरात विश्व विद्यालय अध्यक्ष ।

सदस्य :

1. प्रो0 रामलाल पारीख।
2. श्री एम0 ई0टी0 बोरो।
3. श्रीमती शान्ती कबीर।
4. प्रो0 एस0 एम0 चटर्जी।
5. श्री एस0 एम0 चटर्जी।
6. डा0 श्रीमती चित्रा नायक।
7. डा0 ए0 के0 नारायनन नाम्बियार।
8. डा0 एस0 एन0 मेहरोत्रा।
9. श्री यू0टी0 भेलेण्डे।
10. श्री एस0 पी0 सिंह भण्डारी।
11. श्री मनुभाई पांचोली।
12. डा0 जी0 एल0 बख्शी।
13. श्रीमती लोतिका रजम।
14. डा0 (कु0) ए0 नन्दा।
15. डा0 आर0 सी0 शर्मा।
16. श्री एस0 एन0 मनोर।
17. श्री राना प्रताप।
18. श्री आर0 के0 मेहता।
19. श्री आर0 आर0 ब्याला।
20. श्री आर0 पी0 सिंहल।
21. श्री बबिया नायडू।
22. श्री ए0 एल सुब्रहमन्यम।
23. श्री जी0 एस0 ढिल्लो।

24. श्रीमती आर0 कुमार।

25. प्रो0 बी0 सरन।

26. डा0 मनमोहन सिंह अरोरा।

27. प्रो0 बी0 एस0 पारेख।

28. प्रो0 अनिल विद्यालंकार।

सदस्य सचिवः

डा0 ए0 एन0 बोसए डीन (समन्यवय) रा0 शै0 अनु0 प्रशिक्षण परिषद नई दिल्ली।

समिति के कार्यः

श्री ईश्वर भाई पटेल की अध्यक्षता में गठित पाठ्यक्रम पुनरीक्षण समिति को निम्न कार्य सौपें गये–

1. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान प्रशिक्षण परिषद (NCERT) द्वारा तैयार किया गया दस वर्षीय स्कूल पाठ्यक्रम को स्तरवार व विषयवार उद्देश्यों का पुनरीक्षण करना।
2. बिन्दु एक के सम्बन्ध में पाठ्यक्रम एवं पाठ्य पुस्तकों की जाँच करना।
3. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान प्रशिक्षण परिषद के उपरोक्त वर्णित दस्तावेज में दी गयी अध्ययन प्रणाली की जाँच करना तथा उपर्युक्त संशोधन सुझाना।
4. अध्ययन की वर्तमान प्रणाली की जाँच करना।

समिति के सुझावः

उपरोक्त बिन्दुओं पर जाँच के फलस्वरूप समिति ने अनेक बैठकों के उपरान्त निम्नलिखित सुझाव दिये–

1. शिक्षा को व्यक्ति को एक नागरिक का उत्तरदायित्व सफलतापूर्वक पूरा करने तथा जन्मजात योग्यताओं, सृजनात्मक उद्यामों को करने की सामर्थ्य तथा प्रकृति व व्यक्तियों के परस्पर मिलन से मिले जीवन का आनन्द लेने की योग्यता विकसित करके एक अच्छा जीवन जीने के लिए आवश्यक ज्ञान, कौशल, आदत, दृष्टिकोण तथा मूल्यों को प्राप्त करने के योग्य बनांना चाहिए।
2. अधिगम प्रणाली को औपचारिक तथा अनौपचारिक ढंग कुछ संस्थागत कुछ व्यक्तिगत

से व्यवस्थित किया ज़ाना चाहिए। संस्थागत व्यवस्था इतनी कठोर नहीं होनी चाहिए कि पढ़ने के इच्छुक छात्र उनका आंशिक उपयोग को बाद में पढ़ने के लिए संस्थाओं में अथवा अनौपचारिक ढंग से व्यवस्था की जानी चाहिए।

3. शिक्षा प्रणाली के दृष्टिकोणों तथा मूल्यों को सिखाना चाहिए, जिससे प्रत्येक व्यक्ति में समाजवाद, धर्म निरपेक्षता तथा प्रजातंत्र के प्रत्ययों का विकास हो सके तथा संविधान में वर्णित सभी न्याय, स्वतंत्रता, समानता व भाई चारे के सिद्धान्तों को अपना सके।
4. संविधान में किये गये प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के संकल्प की दृष्टि से प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्य अन्य स्तरों की शिक्षा के उद्देश्यों से भिन्न होने चाहिए।

प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्यः

इस समिति ने प्राथमिक शिक्षा कक्षा से लेकर 8 तक के निम्न उद्देश्य सुझाये हैं–

1. औपचारिक अधिगम के साधन अर्थात् साक्षरता, अंक ज्ञान व शारीरिक कौशल अर्जित करना।
2. सामाजिक व प्राकृतिक विज्ञानों के क्षेत्र मे अवलोकन, अध्ययन व प्रयोग के द्वारा ज्ञान प्राप्त करना।
3. खेलकूद के द्वारा शारीरिक शक्ति तथा समूह भावना का विकास करना।
4. समाजोपयोगी उत्पादक कार्य के नियोजन व क्रियान्वयन के कौशलों के अर्जित करना।
5. सोद्देश्य अवलोकन का कौशल अर्जित करना।
6. परिवार, विद्यालय तथा समुदाय में सहयोगात्मक व्यवहार की आदत बनाना।
7. कलात्मक–क्रियाओं व प्रकृति के अवलोकन के द्वारा सौन्दर्य बोध तथा सृजनात्मक का विवाद करना।
8. अन्य धर्मों क्षेत्रों व देशों के व्यक्तियों की संस्कृति व जीवन शैली की सराहना की आदतों तथा कमजोर व वंचित लोगों की सेवा के लिए तत्परता को बढ़ाकर सामाजिक उत्तरदायित्व का विकास करना।
9. सामुदायिक जीवन की उत्पादक व अन्य प्रक्रियाओं में भाग लेने तथा समुदाय की सेवा करने की इच्छा को विकसित करना।

माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्यः

इस समिति ने माध्यमिक शिक्षा के निम्न उद्देश्य सुझाएं हैं–

1. स्व–अधिगम के कौशलों तथा आदतों की अर्जित करना।
2. विज्ञान, गणित, सामाजिक विज्ञान, भाषाएं तथा समाजोपयोगी उत्पादन श्रम से मुक्त व्यापक आहार वाली सामान्य शिक्षा अर्जित करना।
3. सहयोग पूर्ण जीवन तथा शारीरिक उपयुक्ता बनाये रखने के लिए खेल कूद आदि में सहभागिता की आदत अर्जित करना।
4. कलात्मक क्रियाओं में सहभागिता के द्वारा सौन्दर्य बोध तथा सृजनात्मकता विकसित करना।
5. स्कूल के बाहर के जगत में विश्वसनीय प्रवेश के लिए कार्य संसार को जानना तथा जीवन की वास्तविकताओं को समझना।
6. स्कूल तथा समुदाय के सामाजिक क्रिया–कलापों में इस प्रकार से सहभाग करना कि जनतान्त्रिक मूल्य विकसित हो सके तथा निर्धन व वंचित वर्ग की सेवा के द्वारा समानता की प्रति के लिए कार्य हो सके।

समिति के अनुसार–

स्कूल शिक्षा के विभिन्न स्तरों के लिए संरचना, पाठ्यक्रम प्रारूप तथा समय आवंटन निम्नानुसार होना चाहिए–

<u>कक्षा पाँच तक</u>

1.	एक भाषा	20%	20%
2.	गणित	20%	20%
3.	वातावरणीय अध्ययन (सामाजिक अध्ययन, प्रकृति अध्ययन व स्वास्थ्य शिक्षा)	20 %	
4.	समाजोपयोगी उत्पादक कार्य	20%	
5.	खेल तथा संगीत, नृत्य व चित्रकला जैसी सृजनात्मक क्रियाएं	20%	

कक्षा पाँच से आठ तक

1.	भाषाएं	7 घण्टा प्रति सप्ताह
2.	गणित	4 घण्टा प्रति सप्ताह
3.	इतिहास, नागरिक शास्त्र तथा भूगोल	4 घण्टा प्रति सप्ताह
4.	विज्ञान का एकीकृत पाठ्यक्रम	4 घण्टा प्रति सप्ताह
5.	कला (संगीत, नृत्य, चित्रकला)	3 घण्टा प्रति सप्ताह
6.	समाजोपयोगी उत्पादक कार्य तथा सामुदायिक सेवा	6 घण्टा प्रति सप्ताह
7.	खेल, शारीरिक शिक्षा तथा निर्देशित अध्ययन	4 घण्टा प्रति सप्ताह
		कुल = 32 घंटा/प्रति सप्ताह

कक्षा आठ से दस तक:

1.	भाषाएं	8 घण्टा प्रति सप्ताह
2.	गणित (विकल्प एक या विकल्प दो)	4 घण्टा प्रति सप्ताह
3.	विज्ञान	5 घण्टा प्रति सप्ताह
4.	इतिहास, नागरिक शास्त्र तथा भूगोल	3 घण्टा प्रति सप्ताह
5.	कला, गृहविज्ञान, कृषि, वाणिज्य, अर्थशास्त्र, समाज	2 घण्टा प्रति सप्ताह
6.	समाजोपयोगी उत्पादक कार्य तथा सामुदायिक सेवा	6 घण्टा प्रति सप्ताह
7.	खेल, शारीरिक शिक्षा तथा निर्देशित अध्ययन	4 घण्टा प्रति सप्ताह
		कुल = 32 घण्टा प्रति सप्ताह

6. समाजोपयोगी उत्पादक कार्य को (SUPW) ऐसे सोद्देश्य, सार्थक, शारीरिक कार्य के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसकी परिणति समुदाय के लिए उपयोगी वस्तुओं तथा सेवाओं के रूप में होती हैं।

7. समाजोपयोगी उत्पादक कार्य का उद्देश्य बच्चों को कक्षा में तथा इससे बाहर सामाजिक व आर्थिक क्रियाकलापों में सहयोग करने के अवसर प्रदान करना है।

8. उत्पादक शारीरिक कार्य परिस्थितियों का चयन–

   1. स्वास्थ्य व पोषण
   2. भोजन
   3. आवास
   4. वस्त्र
   5. संस्कृति व मनोरंजन
   6. सामुदायिक कार्य व समाज सेवा नामक छः क्षेत्रों से किया जा सकता है।

9. समाजोपयोगी उत्पादक कार्य (SUPW) के अध्यापकों को अन्य अध्यापकों के समान दर्जा दिया जाना चाहिए, विभिन्न क्रियाओं के लिए प्रशिक्षित व्यक्तियों को अंशकालीन रोजगार देने का प्राविधान होना चाहिए, समाजोपयोगी उत्पादक कार्य के लिए राज्यों के शिक्षा विभागों में कक्ष होने चाहिए तथा अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के लिए समाजोपयोगी उत्पादक कार्य की पाठ्य वस्तु को राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान प्रशिक्षण परिषद के द्वारा तैयार किया जाना चाहिए।

उपरोक्त में अतिरिक्त ईश्वर भाई पटेल पुनरीक्षण समिति ने अपने प्रतिवेदन (Report) में विभिन्न कक्षाओं के लिए विभिन्न विषयों की विस्तृत पाठ्य वस्तु को भी सुझाया।

***आदिसेषैया राष्ट्रीय शिक्षा समिति* (1977-78)**

(Adiseshaiah National Education Committee - 1977-78)

(मद्रास विश्व विद्यालय)

भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देश की शैक्षिक स्थिति को सुधारने के लिए व चल रहे पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तकों में परिवर्तन के उद्‌देश्य से आदिसेषैया समिति 1977–78 में गठित की गयी। जिसकी अध्यक्षंता डा0 आदिसेषैया ने की। अतः डा0 आदिसेषैया की अध्यक्षता में गठित समिति को भी राष्ट्रीय पुनरीक्षिण समिति का नाम दिया गया। यद्यपि इस समिति का नाम +2 पाठ्यक्रम के लिए राष्ट्रीय पुनरीक्षण समिति (National Review Committee for the plus two curriculum) था, परन्तु इसे आदिसेषैया के नाम से जाना जाता है। NCERT के द्वारा प्रकाशित उच्च माध्यमिक शिक्षा तथा इसका व्यावसायीकरण नामक

दस्तावेज में शिक्षा के व्यावसायिक से सम्बन्धित अनेक समाजोपयोगी उत्पादक कार्य के संदर्भ में भी +2 स्तर के पाठ्यक्रम में सुधार करने की आवश्यकता महसूस की गयी। इसके अतिरिक्त आने वाली छठीं पंचवर्षीय योजना में समाहित किये गये राष्ट्रीय उद्देश्यों तथा प्राथमिकताओं के अनुरूप उच्च माध्यमिक स्तर की शिक्षा के पाठ्यक्रम को संशोधित करना आवश्यक था। इसीलिए इस राष्ट्रीय पुनरीक्षण समिति का गठन किया गया। इस समिति के निम्न सदस्य थे–

अध्यक्ष – डा0 मालकॉम एस0 आदिसेषैया, कुलपति, मद्रास विश्वविद्यालय।

सदस्य संयोजक – डा0 आर0 पी0 सिंघल, अध्यक्ष सेन्ट्रल बोर्ड ऑफ सेकेण्डरी एजूकेशन, नई दिल्ली।

सदस्य –

1. डा0 ईश्वर भाईह जी0 पटेल।
2. प्रो0 ए0 एन0 बोस।
3. डा0 शिव मंगल सिंह सुमन।
4. डा0 अमरीक सिंह।
5. श्री पी0 आर0 नायक।
6. श्री एम0 पी0 राजगोपाल।
7. श्री वी0 आर0 रेड्डी।
8. श्री डी0 एम0 सुफ्थांकर।
9. प्रो0 यू0 एस0 सिंह।
10. श्री बी0 के0 सिंह।
11. श्री वाई सरन।
12. श्री ए0 ई0 टी0 बौठी।
13. प्रो0 सी0 वी0 गोविन्द राव।
14. श्रीमती शान्ता।
15. श्री एन0 टी0 बलराज

16. डा0 ओ0 पी0 गौतम

17. श्रीमती के0 एस0 भाटिया।

18. श्री मनु भाई पांचोली।

19. डा0 (श्रीमती) राजम्मल जी0 देवदास।

20. डा0 वी0 जी0 भिडे

21. श्री एल0 ए0 व्यास

22. श्री के0 वैयारमण

23. श्री एम0 पी0 छाया।

24. श्री एस0 के0 लाहिरी।

25. श्री डी0 के0 गुप्ता।

पुनरीक्षण समिति को प्राप्त कार्यः

इस समिति द्वारा सुझाए गये कार्य निम्न लिखित हैं–

1. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान प्रशिक्षण परिषद (NCERT) के द्वारा प्रकाशित "उच्च माध्यमिक शिक्षा तथा इसका व्यवसायिक" नामक दस्तावेज का पुनरीक्षण कराना तथा इसमें सुधार के सुझाव देना।
2. सी0 बी0 एस0 ई0 (CBSE) तथा कुछ राज्य परिषदों के पाठ्यक्रमों का अध्ययन चुने हुये व्यवसायों के विशेष संदर्भ में करना तथा उपयुक्त पाठ्यक्रम सुझाना।
3. माध्यमिक / उच्च माध्यमिक स्तर पर व्यवसायीकरण को प्रारम्भ करने के लिए कार्यान्वयन योजना सुझाना।

उपरोक्त कार्यों के पहले समिति ने चार कार्यकारी दलों का गठन किया तथा विचार विमर्श के उपरान्त अपना प्रतिवेदन (Report) फरवरी 1978 सीखने व करने के लिए समाज की ओर ("Learning to do; Towards A Learning and Working Society") शीर्षक दिया गया।

समिति द्वारा प्रस्तुत संस्तुतियाँ / सिफारिशेः

डा0 आदिसेषैया समिति द्वारा गठित पुनरीक्षण समिति द्वारा कुछ प्रमुख संस्तुतियाँ शैक्षिक ढाँचे सुधार हेतु प्रस्तुत की गयी जो इस प्रकार है–

1. दो वर्षीय उच्च माध्यमिक शिक्षा स्तर में प्रवेश लेने वाले आधे छात्रों के लिए औपचारिक शिक्षाका समापन बिन्दु होने के कारण भी महत्वपूर्ण है।

2. उच्च माध्यमिक शिक्षा तथा उच्च शिक्षा के बीच सेतु होने के कारण भी महत्वपूर्ण है। यह स्तर स्कूल शिक्षा प्रणाली की निर्णायक है। तथा विश्वविद्यालय अधिनियम का पूर्व कथन करती है।

3. उच्च माध्यमिक शिक्षा स्तर बाल्यावस्था से युवावस्था की ओर परिवर्तन का समय (Transition Period) होने के कारण भी महत्वपूर्ण ही मानव व्यक्तित्व के विकास में यह अवधि अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

4. उच्च माध्यमिक शिक्षा को सतत (Continuity) व अर्न्तराष्ट्रीय सहभागिता (International Sharing) के सिद्धान्तों के साथ–साथ बेरोजगारी उन्मूलन, गरीबी हटाने, ग्रामीण विकास तथा प्रौढ़ साक्षरता के राष्ट्रीय तथ्यों के अनुकूल होना चाहिए।

5. उच्च माध्यमिक स्तर पर अधिगम की दो शाखाएं सामान्य शिक्षा धारी (General Education Spectrum) तथा व्यावसायिक धारा (Vocationalised Spectrum) होनी चाहिए।

6. व्यावसायिक धारा से तात्पर्य तकनीकों सम्बन्धी विज्ञानों आदि के अध्ययन अथवा अन्य प्रयोगात्मक कार्यों के किसी एक अथवा अनेक कौशलों को सीखना है। यूनेस्को के शब्दों में व्यावसायीकृत शिक्षा में आर्थिक व सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के रोजगारों से सम्बन्धित तकनीकियों व सम्बन्धित विद्वानों का अध्ययन तथा प्रयोगात्मक कौशलों, अभिरूचियों, अवबोध व ज्ञान का अध्ययन समाहित रहता है।

7. कक्षा आठ के उपरान्त जन परीक्षा लेने तथा व्यावसायीकृत शिक्ष को नौ से प्रारम्भ करने का विचार वांछनीय नहीं है।

8. सामान्य शिक्षा धारा में समय का विभाजन इस प्रकार होना चाहिए–

1.	भाषा	15 प्रतिशत
2.	समाजोपयोगी उत्पाद कार्य	15 प्रतिशत
3.	चयनित विषय (तीन)	70 प्रतिशत

9. चयनित विषयों में भाषाएं (अनिवार्य भाषा के अतिरिक्त) गणित, अर्थशास्त्र, रसायन शास्त्र, राजनीति विज्ञान, भूगोल, जीव विज्ञान, समाजशास्त्र, दर्शनशास्त्र, इतिहास,

ललित कलाएं, शारीरिक शिक्षा, वाणिज्य व लेखा, मनोविज्ञान, भौतिकी तथा सह विज्ञान में से कोई तीन हो सकते हैं।

10. इसी प्रकार व्यावसायीकृत भाषा के समय का विभाजन निम्नवत् चाहिए—

भाषा	15 प्रतिशत
सामान्य आधार पाठ्यक्रम	15 प्रतिशत
चयनित विषय	70 प्रतिशत

11. सामान्य आधार पाठ्यक्रम (General Foundation Course) व्यावसायीकृत धारा के छात्रों को जीवन तथा इतिहास का ज्ञान प्रदान करेगा। यह छात्रों को ऐसा ज्ञान प्रदान करेगा, जिससे उनका दृष्टिकोण विस्तृत हो ताकि वे किसी कार्य को स्वयं सफलता पूर्वक कर सकें।

12. व्यावसायीकृत चयनित विषयों में भूमि व जल संरक्षण, कृषि यन्त्र मरम्मत व रखरखाव अन्न संग्रह, कृषि—आधारित उद्योग, कृषि रसायन, पशुपालन, भूमि परीक्षण, सहकारिता, विपणन, लघु कृषि प्रबन्ध, ईंधन, मधुमक्खी पालन, कृषि अर्थ शास्त्र, जंगल उत्पादन, वाणिज्यिक फसल, रेशम कीड़ा पालन, कृषि भौतिकी, कृषि रसायन, पशु खुराक, बैंकिग, कार्यालय प्रबन्ध, टंकण, टेलीफोन आपरेटर, कार्यालय यन्त्र चालक, विपणन, विक्रेता, चिकित्सा—तकनीशियन, पुस्तकालय, प्राथमिक अध्यापक, शैक्षिक खिलौना निर्माण, वस्त्र धुलाई, टैक्सटाइल, डिजानिंग, फोटोग्राफी आदि कार्य/विषय हो सकते हैं।

13. छात्रों को सामान्य शिक्षा धारा अथवा व्यवसायीकृत धारा में जाने के लिए पर्याप्त नम्यता (Flexibility) होनी चाहिए। इन दोनों धाराओं में अनेक विपर्ययन बिन्दु (Cross-Over Points) होने चाहिए।

14. सत्र प्रारूप तथा (Semester Pattern) तथा क्रेडिट प्रणाली (Credit System) को अपनाया जाना चाहिए।

उपर्युक्त सिफारिशों के अतिरिक्त इस पुनरीक्षण समिति ने + 2 स्तर पर विभिन्न विषयों के लिए प्रतिशत विषय वस्तु की विस्तृत रूपरेखा भी प्रस्तुत की है। अतः इस समिति से + 2 स्तर पर पाठ्यक्रम व विषयों के चयन में जो सुझाव प्रस्तुत किये वह शिक्षा जगत को एवं भावी युवा पीढ़ी को शिक्षित एवं रोजगारोन्मुखी शिक्षा प्रदान करने में सहायक सिद्ध होंगे।

आचार्य राममूर्ति शिक्षा समीक्षा समिति - 1990

(Acharya Rammurti Education Committee - 1990)

समिति के गठन की आवश्यकता

भारत एक प्रजातान्त्रिक देश होने की दृष्टि से समय–समय पर देश में जनता की माँग के अनुरूप राजनैतिक एवं शैक्षिक ढाँचे में परिवर्तन होता रहा है। इसी के रहते वर्ष 1986 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी द्वारा घोषित 'नई शिक्षा नीति' के परिवर्तन की माँग वर्ष 1989 में गठित नयी राष्ट्रीय मोर्चा सरकार से की जाने लगी। इस माँग को ध्यान में रखकर ही 7 मई 1990 को केन्द्रीय राष्ट्रीय मोर्चा सरकार ने सन् 1986 की 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति' की समीक्षा करके उसमें आवश्यक परिवर्तनों के सम्बन्ध में सुझाव देने के लिए 'आचार्य राममूर्ति' की अध्यक्षता में एक सत्रह सदस्यीय समीक्षा समिति का गठन किया। इस समिति के अन्य सदस्य निम्नलिखित थे–

अध्यक्ष – आचार्य राममूर्ति जी

सदस्य :

1. प्रो0 सी0 एन0 आर0 राव
2. डा0 सुखदेव सिंह
3. डा0 एम0 सतापा
4. डा0 आवैद सिद्दकी
5. डा0 भाष्कर राय चौधरी
6. श्री एम0 जी0 भारवाडेकर
7. प्रो0 ऊषा मेहता
8. प्रो0 सच्चिदानन्द मूर्ति
9. डा0 अनिल सदगोपाल
10. फादर टी0 वी0 कुनुकल
11. प्रो0 मृणाल गिरि
12. डा0 विद्यानिवास मिश्र

13. डा0 एस0 जेड0 कासिम

14. श्री वेद व्यास

15. श्री मनुभाई पांचोली

सदस्य सचिव – श्री एस0 गोपालन

इस प्रकार उक्त सत्रह सदस्यीय समिति को निम्न विषयों को समीक्षा हेतु रखा गया जो निम्नवत् थे –

(अ) राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 तथा इसके कार्यान्वयन की समीक्षा करना।

(ब) नीति के संशोधन के सम्बंध में संसतुति करना।

(स) संशोधित नीति के समयबद्ध कार्यान्वयन के लिए आवश्यक कार्यवाही सुझाना।

उपसमितियों का गठनः

उपरोक्त सौपें गये विषयों पर समीक्षा करने के लिए आचार्य राममूर्ति समीक्षा समिति ने निम्न छः उपसमितियों का गठन किया जो इस प्रकार है–

1. पहुंच, समता तथा सर्वीकरण
2. शिक्षा और काम का अधिकार
3. शिक्षा की कोटि और मानदण्ड
4. राष्ट्रीय एकता, मूल्य शिक्षा और चरित्र निर्माण
5. संसाधन और प्रबन्ध
6. ग्राम शिक्षा

उपरोक्त छह समिति के गठन के उपरान्त मुख्य समितियाँ तथा उप समितियों की बैठकों, पृष्ठ भूमिका प्रलेखों की समीक्षा, शिक्षा विशेषज्ञों से परामर्श नागरिकों के विचारों की समीक्षा व क्षेत्र अध्ययन के आधार पर समिति ने अपनी रिपोर्ट 26 दिसम्बर 1990 को प्रस्तुत कर दी।

समिति के मानक सिद्धान्तः

आचार्य राममूर्ति समिति ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 तथा इसके कार्यान्वयन की समीक्षा करते समय अपने मार्ग दर्शन के लिए कुछ प्रमुख सिद्धान्तों का अनुसरण किया जो निम्नवत् थे–

1. समता तथा सामाजिक न्याय
2. सभी स्तरों पर शिक्षा प्रबन्ध का विकेन्द्रीकरण
3. सहभागी शिक्षा व्यवस्था की स्थापना
4. प्रबुद्ध तथा मानवीय समाज के सृजन के लिए अनिवार्य मूल्यों में रूचि उत्पन्न करना।
5. काम का अधिकार

उपरोक्त सिद्धान्तों के रहते आचार्य राममूर्ति समिति ने प्रस्तुत की गयी अपनी रिपोर्ट/प्रतिवेदन में मुख्य पाठ को निम्न सोलह अध्यायों में विभाजित किया है जो निम्नवत् है–

1. कार्य विधि तथा प्रक्रिया
2. दृष्टिकोण
3. शिक्षा की भूमिका, उद्देश्य एवं मूल्य
4. समता, सामाजिक न्याय और शिक्षा
   - क) शिक्षा और नारी समानता
   - ख) अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा अन्य शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए शिक्षा।
   - ग) विकलांगों के लिए शिक्षा।
   - घ) सार्वजनिक स्कूल प्रणाली
   - ङ) नवोदय विद्यालय
5. शिशु देखभाल और शिक्षा
6. प्रारम्भिक शिक्षा का सर्वीकरण
7. प्रौढ़ और अनुवर्ती शिक्षा
8. शिक्षा और काम का अधिकार
9. उच्च शिक्षा
10. तकनीकी और प्रबन्ध शिक्षा
11. शिक्षा में भाषाओं का स्थान

12. शिक्षा की विषयवस्तु और प्रक्रिया

13. शिक्षक और छात्र

14. विकेन्द्रीकरण और सहभागी प्रबन्ध

15. शिक्षा के लिए संसाधन

16. उपसंहार

उपर्युक्त सोलह अध्यायों को दृष्टिगत रखते हुये गठित छह उप समितियों के द्वारा प्रस्तुत आख्याओं पर विचार विमर्श करने के उपरान्त आचार्य राममूर्ति समिति ने अपना प्रतिवेदन/रिपोर्ट "प्रबुद्ध एवं मानवीय समाज की ओर" नामक शीर्षक से प्रस्तुत किया।

समिति द्वारा प्रस्तुत सुझाव

इस समीक्षा समिति के द्वारा कुछ निम्न सुझाव प्रमुख रूप से प्रस्तुत किये गये –

शिक्षा की भूमिका, उद्देश्य एवं मूल्य

वर्तमान प्रजातान्त्रिक समाज में शिक्षा की भूमिका, उद्देश्य तथा मूल्यों के सम्बन्ध में समीक्षा समिति ने निम्न बातें रखी–

1. महात्मा गांधी का सूत्र वाक्य "शिक्षा का उद्देश्य अहिंसक एवं शोषण रहित सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था की स्थापना करना है।" आज भी प्रासंगिक है।
2. शिक्षा को शक्ति ग्रहण करने तथा सामाजिक परिवर्तन के साधन की प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है।
3. शिक्षा को व्यक्ति की सूचनापरक तकनीकी ज्ञान का दृढ़ आधार प्रदान करना चाहिए।
4. विकास के साधन के रूप में शिक्षा सच्ची मुक्ति का अनुभव, मुक्त होने की प्रक्रिया होनी चाहिए।
5. शिक्षा एक बहु आयामी प्रक्रिया है। इसका उद्देश्य व्यक्ति के विकास के साथ–साथ राष्ट्रीय उद्देश्य तथा लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए छात्र की सहायता करना होना चाहिए।
6. पढ़ने वाले बच्चों के समुदाय तथा उसकी समस्याओं का स्कूल से अलगाव समाप्त करने के लिए प्रत्येक स्कूल को अनिवार्य तथा वास्तविक अर्थ में सामुदायिक स्कूल बनाना चाहिए।

समिति ने महिलाओं/बालिकाओं के विकास की उत्तरोत्तर बुद्धि हेतु व उनके शैक्षिक जगत को स्वर्णिम बनाने की दृष्टि से निम्न सुझाव प्रस्तुत किये–

1. लड़कियों के लिए शिक्षा की सुलभता सुनिश्चित करने के लिए पानी, चारा व ईंधन को आसानी से सुलभ कराने, बाल्यावस्था में प्रारम्भिक देखभाल व शिक्षा की व्यापक व प्रभावी उपलब्ध कराने व बस्ती के दायरे में ही स्कूल की सुविधाएं उपलब्ध कराने के प्रयास किये जाने चाहिए।
2. क्षेत्रीय असमानता को सुधारे जाने की आवश्यकता है।
3. लिंग आधारित पक्षपात को दूर करने के लिए पाठ्यचर्या तथा पाठ्य पुस्तकों में महिलाओं की भूमिका तथा योगदान को उभारना चाहिए तथा लिंग भेद से सम्बन्धित रूढ़िवादी धारणा को समाप्त किया जाना चाहिए।
4. लड़के तथा लड़कियों की पाठ्यचर्या में किसी प्रकार का कोई अन्तर नहीं होना चाहिए।
5. लड़कियों में गठित तथा विज्ञान की शिक्षा को अधिक प्रोत्साहित करने का प्रयास किया जाना चाहिए।
6. संचार माध्यमों को राष्ट्रीय शिक्षा नीति में निरूपित लिंग सम्बन्धी समानता तथा महिलाओं के अधिकारों को प्रोत्साहित करना चाहिए।
7. महिलाओं के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण की योजना बनायी जानी चाहिए तथा गैर परम्परागत देशों में महिलाओं के व्यावसायिक प्रशिक्षण को प्रोत्साहित किया जाय।
8. अध्यापकों में लिंग आधारित पूर्वाग्रह पूर्ण रूढ़िवादिता को समाप्त करने के लिए शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों की समालोचनात्मक मूल्यांकन करने तथा उन्हें पुर्ननवीनीकरण की आवश्यकता है।
9. विश्वविद्यालयों तथा मान्यता प्राप्त सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान संस्थानों में महिलाओं के अध्ययन केन्द्र खोले जाने चाहिए।
10. विश्वविद्यालय स्तरीय पाठ्यक्रमों में महिलाओं के आयामों को जोड़ना चाहिए।

11. शैक्षिक व्यवस्था क्रम में महिलाओं का प्रतिनिधित्व बढ़ाने के लिए महिलाओं की भर्ती, सेवा प्रक्रिया, मूल्यांकन के मापदण्ड, पदोन्नति, दिशा–निर्देश आदि के लिए विशेष प्राविधान किये जाने चाहिए।

12. महिला प्रौढ़ शिक्षा के लिए बड़े पैमाने पर कार्यक्रम चलाये जाय। जिससे महिलाओं की निरक्षरता को समाप्त किया जा सके।

13. महिलाओं की शिक्षा के लिए योजना बनाने, उसे कार्यान्वित करने तथा स्कूल आधारित कार्यक्रमों के आन्तरिक अनुरक्षण का दायित्व पंचायती राजव्यवस्था में शैक्षिक संकल्पों को सौपा जाय।

अनुसूचित जाति, जनजाति व शैक्षिक रूप से पिछड़े अन्य वर्गों की शिक्षा

(Education of S.Cs., S.Ts. & Other Educationally Backward Classes)

शिक्षा के क्षेत्र में अनुसूचित जातियों व जनजातियों तथा अन्य पिछड़े वर्गों की साक्षरता दरों, व इन साक्षरता दरों में अन्तर एवं विभिन्न स्तरों पर इनके नामांकन व स्कूल छोड़ने वाले बच्चों की दरों आदि का विश्लेषण करके समीक्षा समिति ने निम्न सिफारिशें इस सम्बन्ध में प्रस्तुत की है–

1. विभिन्न राज्यों में कार्यान्वित विभिन्न प्रोत्साहन योजनाओं के अर्न्तगत स्कूलों में अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जन जाति के बच्चों के नामांकन व प्रवेश की चालू स्थिति क्या है इस बात की जॉच की जानी चाहिए।
2. जिन बस्तियों में अभी तक स्कूल नहीं हैं ऐसी बस्तियों में स्कूल खोले जाने चाहिए।
3. अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति के छात्रों को परीक्षा के लिए तैयार करने की योजना का पुर्नगठन किया जाय तथा इसे दो तीन महीने की अवधि तक सीमित रखने के स्थान पर सम्पूर्ण शिक्षा सत्र के दौरान चालू रखा जाय।
4. पिछड़े क्षेत्रों में पुस्तकालय युक्त स्कूल खोले जांय।
5. बच्चों में सभी प्रकार की प्रतिभा या योग्यताओं का विकास करने के लिए विशेष कार्यक्रम आयोजित किये जाने चाहिए।
6. शैक्षिक कार्यक्रमों के सम्बन्ध में व्यापक जानकारी उपलब्ध कराने के लिए प्रत्येक राज्य में एक–एक फोकस एजेन्सी बनाई जानी चाहिए।

7. शैक्षिक रूप से पिछड़े लोगों की पाठ्यचर्या में शिक्षा के हर स्तर पर विज्ञान, गणित, मौखिक व लिखित अभिव्यक्ति, पिछड़े वर्गों का इतिहास समाज विज्ञान, स्वतन्त्रता संग्राम, राष्ट्रीय जीवन व विकास से इन समुदायों का योगदान एवं राष्ट्रीय जीवन व विकास में इन वर्गों की महिलाओं की भूमिका पर जोर दिया जाना चाहिए।
8. यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि सरकारी व सहायता प्राप्त स्कूलों में अनुसूचित जाति व जन जाति समुदायों में क्रमशः 15 तथा 7.5 प्रतिशत शिक्षिकों की भर्ती अनिवार्य रूप से हो।
9. जनजातीय सांस्कृतिक पहचान को सामान्य सांस्कृतिक विरासत में शामिल किया जाना चाहिए जो कोर पाठ्यचर्या का एक अंश है।
10. अल्प संख्यकों के द्वारा चलाये जा रहे शैक्षिक संस्थानों को मान्यता प्रदान करने तथा इनकी गुणवत्ता को सुनिश्चित करने के लिए जारी निर्देशों का मानीटर करने के लिए भारत सरकार को एक स्थायी मशीनरी स्थापित करनी चाहिए।
11. अल्पसंख्यक संस्थानों के प्राचार्य, प्रबन्धकों तथा शिक्षकों के लिए विकेन्द्रित आधार पर अभिविन्यास कार्यक्रमों का नियोजन राज्य स्तर पर राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान प्रशिक्षण परिषद (NCERT) तथा उपराज्य स्तर पर जिला शिक्षण व प्रशिक्षण संस्थान (DIET), अध्यापक शिक्षा महाविद्यालय (CTE) तथा शिक्षा में अध्ययन संस्थान (IASE) के द्वारा किया जाना चाहिए।
12. मुक्त विश्वविद्यालयों में विशेष प्रशिक्षण देने के लिए दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम केन्द्र स्थापित किये जाने चाहिए।

***विकलांगों के लिए शिक्षा* (Education for Handicappeds)**

इस समीक्षा समिति ने विकलांगों के लिए बनाये गये शैक्षिक कार्यक्रमों व अध्ययन करने के उपरान्त निम्न सिफारिशें प्रस्तुत की–

1. विकलांग बच्चों की समस्याओं उनके विस्तार तथा प्रकार के सम्बन्ध में लोगों को अवगत कराया जाना चाहिए।
2. विकलांग बच्चों के लिए शैक्षिक तन्त्र लोचदार होना चाहिए। ऐसे बच्चों के लिए विशेष स्कूलों तथा सामान्य स्कूलों में विशेष कक्षाओं आदि की व्यवस्था होनी चाहिए।

3. श्रवण शक्ति विहीन व अंधे बच्चों के लिए विशेष प्रकार की शिक्षा व्यवस्था की जानी चाहिए।
4. मानसिक रूप से मन्द बच्चों के लिए विशेष प्रकार की पाठ्यचर्या विकसित की जानी चाहिए।
5. सेवापूर्व शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में विकलांगों की शिक्षा को शिक्षाशास्त्र तथा पद्धति का अभिन्न अंग बनाया जाय।
6. शिक्षक प्रशिक्षण कालेजों में विकलांग बच्चों को पढ़ाने के लिए विशेष पाठ्यक्रम चलाये जाने चाहिए।
7. विकलांग बच्चों के लिए उपलब्ध उपकरणों से सम्बन्धित सूचना के प्रचार–प्रसार की आवश्यकता है।
8. विशेष स्कूलों की भूमिका स्पस्ट रूप से निर्धारित की जानी चाहिए।

***सार्वजनिक स्कूल प्रणाली* (Common School System)**

शैक्षिक क्षेत्र में समानता तथा सामाजिक न्याय लाने के कार्य में सार्वजनिक स्कूल प्रणाली को पहला कदम मानते हुये समीक्षा समिति ने निम्न सुझाव प्रस्तुत किये हैं–

1. प्राथमिक शिक्षा के लिए पर्याप्त अधिक धन की व्यवस्था की जानी चाहिए।
2. पिछड़े इलाकों, शहरी गन्दी बस्तियों, आदिवासी क्षेत्रों, पर्वतीय इलाकों, रेगिस्तानी व दलदली भूभागों, सूखा व बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों, तरीय इलाकों व द्वीप समूहों में स्कूली तन्त्र को सुधार करने के लिए विशेष आवंटनों का प्राविधान किया जाना चाहिए।
3. प्राथमिक स्तर पर सबके लिए शिक्षा मातृभाषा के माध्यम से सुनिश्चित करने, माध्यमिक स्तर पर क्षेत्रीय भाषाओं में शिक्षण को प्रोत्साहित करने तथा मातृभाषा व क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम के अतिरिक्त अन्य माध्यम से शिक्षा देने वाले स्कूलों को सरकारी सहायता बन्द करने का प्रयास करना चाहिए।
4. सार्वजनिक स्कूल प्रणाली की दस वर्ष की अवधि में चरण बद्ध ढंग से कार्यान्वित किया जाना चाहिए।
5. मंहगे निजी स्कूलों को सार्वजनिक स्कूल प्रणाली में सम्मिलित करने की सम्भावनाओं की खोज की जानी चाहिए।

नवोदय विद्यालय (Navodaya Vidhyalaya)

समीक्षा समिति ने नवोदय विद्यालय योजना की संकल्पना दर्शन, अभिकल्प, कार्यान्वयन तथा इसके पक्ष–विपक्ष के सम्बन्ध में व्यक्त किये गये तर्कों पर विचार करने के उपरान्त निम्न विकल्प स्वरूप प्रस्तुत किये हैं–

1. भविष्य में नवोदय विद्यालयों के खोलने की आवश्यकता नहीं है। व 261 नवोदय विद्यालयों का पुर्नगठन किया जाय व 1992–93 के अन्त में योजना की समीक्षा की जाय।
2. तत्कालीन मौजूदा सभी 261 नवोदय विद्यालयों को राज्यों को हस्तांतरित कर दिया जाय तथा वे उन्हें आंध्र प्रदेश के नमूने पर आवासी केन्द्रों के रूप में चलाये।
3. नवोदय विद्यालय योजना को एक व्यापक प्रतिभा, विकास तथा गति निर्धारण नवोदय विद्यालय कार्यक्रम में परिवर्तित कर दिया जाय।

शिशु देखभाल तथा शिक्षा (Early Childhood Care & Education)

शिशु देखभाल तथा शिक्षा के क्षेत्र में समिति ने निम्न सुझाव प्रस्तुत किये हैं–

1. संतुलित विकास को बढ़ावा देने के साधन के रूप में शिशु देखभाल तथा शिक्षा प्रत्येक बच्चे का जन्म सिद्ध अधिकार है। बच्चों की शिक्षा के लिए संवैधानिक निवेश (अनुच्छेद 45) का क्षेत्र बढ़ा देना चाहिए ताकि इसमें शिशु देखभाल तथा शिक्षा भी शामिल हो सके।
2. शिशु देखभाल तथा शिक्षा कार्यक्रम को शिक्षा के सभी क्षेत्रों जैसे स्त्री शिक्षा, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति की शिक्षा, प्रारम्भिक शिक्षा, व्यवसायिक शिक्षा, विषय वस्तु व प्रक्रिया, अध्यापक प्रशिक्षण, उच्च शिक्षा आदि में उचित स्थान मिलना चाहिए।
3. शिशु देखभाल तथा शिक्षा को न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम में शामिल करना चाहिए।
4. जहाँ सम्भव हो, शिशु देखभाल तथा शिक्षा केन्द्रों को प्राथमिक स्कूलों से जोड़ना चाहिए।
5. इस क्षेत्र में नवाचारी तथा प्रयोगात्मक मॉडलों को प्रोत्साहन देना चाहिए।
6. शिशुओं की देखभाल तथा शिक्षा से सम्बन्धित समस्याओं के बारे में सार्वजनिक जानकारी के लिए संचार माध्यमों का उपयोग किया जाना चाहिए।

प्रारम्भिक शिक्षा का सर्वीकरण

(Universalization of Elementary Education)

इस समीक्षा समिति ने शिक्षा से सम्बन्धित विभिन्नों बिन्दुओं पर अपने स्तर से जाँच कर प्रारम्भिक शिक्षा के सम्बन्ध में निम्न सुझाव प्रस्तुत किये हैं–

1. स्कूली शिक्षा की गुणवत्ता के सुधार के लिए शिक्षक समुदाय तथा सामाजिक पर्यावरण जैसे कारकों की भूमिका पर बल देना चाहिए।
2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति के पैरा 5.5 में नामांकन व स्थायित्व के सर्वीकरण तथा शैक्षिक गुणवत्ता में सुधार के साथ–साथ सेवाओं की उपलब्धता, स्कूल व समुदाय के बीच सम्बन्ध तथा शैक्षिक आयोजन व प्रबन्ध की विकेन्द्रीकृत व सहभागी प्रणाली नामक तीन बातों को जोड़ दिया जाना चाहिए।
3. अनौपचारिक तथा औपचारिक पद्धतियों को समयावधि में इस प्रकार एकीकृत किया जाय कि उनके संवर्ग आधारित संरचना तथा प्रबन्ध संरचना समन्वित होकर एक हो जाय।
4. एक अवधि के अन्दर औपचारिक स्कूल शिक्षा को औपचारिक कर दिया जाये। इस हेतु स्कूल का समय व दिन आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर दिये जाय।
5. नामांकन आँकड़ों की विश्वसनीयता संदिग्ध होने के कारण नामांकन व प्रतिधारण दोनों में ही सतत् सुधार करने का प्रयास किया जाय।
6. आपरेशन ब्लैक बोर्ड को प्रारम्भिक शिक्षा की एक प्रमुख योजना का रूप दिया जाना चाहिए।
7. प्राथमिक स्कूल, मिडिल स्कूल तथा इनसे जुड़े पैरा स्कूल बड़ी संख्या में खोले जाने चाहिए।
8. राष्ट्रीय शिक्षा नीति के पैरा 5.6 में उल्लिखित बाल केन्द्रित उपागम की असंगताओं का निवारण किया जाना चाहिए।

प्रौढ़ तथा अनुवर्ती शिक्षा **(Adult & Follow-up Education)**

इस सम्बन्ध में समीक्षा समिति ने निम्न सिफारिशें प्रस्तुत की हैं–

1. प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रमों को स्वास्थ्य, पोषण, आवास तथा रोजगार सम्बन्धी आवश्यकताओं के संदर्भ में रखकर देखा जाना चाहिए।
2. जन अभियान नीति तथा महिला समस्या मॉडल का सोद्देश्य मूल्यांकन किया जाना चाहिए।
3. राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के मूल्यांकन हेतु एक निष्पक्ष अध्ययन दल स्थापित किया जाना चाहिए।
4. शिक्षा विभाग को ग्रामीण, विकास विभाग तथा श्रम मंत्रालय के साथ तालमेल रखना चाहिए एवं वयस्क निरक्षरों में व्यावसायिक कुशलता के लिए कार्यक्रम तैयार करने चाहिए।
5. नव साक्षरों को ऐसे वातावरण में रखा जाये, जिसमें वे साक्षरता का लगातार उपयोग कर सकें।
6. शैक्षिक नियोजन व संसाधनों के आवंटन के समय प्रारम्भिक शिक्षा के सर्वीकरण को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए। जिससे कोई भी बालक निरक्षर वयस्क के रूप में बड़ा न हो सके।

***शिक्षा तथा काम का अधिकार* (Education and Right of Work)**

व्यवसायिक शिक्षा तथा शिक्षा के व्यवसायीकरण के उपरान्त समीक्षा समिति ने निम्न विचार प्रस्तुत किये–

1. व्यवसायिक पाठ्यक्रमों को शुरू करने के सम्बन्ध में अनियमिताओं को समाप्त किया जाना चाहिए।
2. कार्यानुभव/समाजोपयोगी उत्पाद कार्य को अनिवार्य रूप से विभिन्न विषयों के साथ, विषय तथा अध्यापन दोनों ही स्तरों पर जोड़ देना चाहिए।
3. कक्षा 9 से 12 तक के लिए संचालित व्यवसायिक शिक्षा के एकीकृत स्वरूप की स्थापना की जानी चाहिए।
4. माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक दोनों ही स्तरों पर प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों का पुर्ननिर्माण किया जाना चाहिए।

उच्च शिक्षा (Higher Education)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में उच्च शिक्षा विषयक बिन्दुओं पर विचार करने के उपरान्त समिति ने निम्न सुझाव प्रस्तुत किये हैं–

1. विश्वविद्यालयों को स्नातक स्तरीय परीक्षाओं के संचालन के उत्तर दायित्व से युक्त किया जाना चाहिए जिससे वे अनुसंधान के अलावा स्नातकोत्तर, डाक्टरेट उपाधि तथा डाक्टरेट पश्चात् अध्ययनों पर ध्यान केन्द्रित कर सकें।
2. सरकार को विश्व विद्यालयों के प्रबन्ध के सम्बन्ध में ज्ञानम समिति की रिपोर्ट पर शीघ्र निर्णय लेना चाहिए।
3. भारत सरकार को भी केन्द्रीय विश्व विद्यालय खोलने के ठोस औचित्य के बिना ऐसे विश्व विद्यालय न खोलकर उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए।
4. विश्व विद्यालय अनुदान आयोग का पुर्नगठन किया जाना चाहिए। समस्याओं के विकेन्द्रीकृत नियमन के लिए आयोग के क्षेत्रीय कार्यालय भी होने चाहिए।
5. पाठ्यचर्या विकास व पाठ्यक्रम गठन की पूरी प्रक्रिया को विकेन्द्रीकृत करने की सम्भावना की जाँच की जानी चाहिए।
6. विश्व विद्यालयों तथा कालेजों के वेतनमानों के साथ–साथ लागू होने वाली शर्तों को वस्तुतः कहाँ तक कार्यान्वित किया गया है, इसकी तत्काल जाँच की जानी चाहिए।
7. भौतिक अनुसन्धान हेतु क्षेत्रों के चयन में उत्कृष्टता प्राप्त करने और भारत में तथा भारतीय विद्वानों की विशेषज्ञता का लाभ उठाने के मानदण्ड बनाना चाहिए।
8. भावी उपयोग कर्ताओं के साथ सम्पर्क स्थापित करके तथा उनके साथ संयुक्त ढंग से कार्यक्रम चलाकर अनुसंधान परिणामों के सम्भव उपयोग को सुनिश्चित किया जाना चाहिए।
9. विश्व विद्यालयों को सम्बन्धित क्षेत्रों के विकास समस्याओं में अपने को शामिल करना चाहिए। विश्वविद्यालय प्रणाली का नारा होना चाहिए–"विश्वज्ञान गाँव में ध्यान"।
10. ग्रामीण विश्वविद्यालयों तथा संस्थानों को सहायता दी जानी चाहिए। परन्तु उन्हें राज्य शिक्षा परिषदों के अर्न्तगत लाया जाना चाहिए।

11. राज्य कृषि विश्वविद्यालयों को ग्रामीण विकास हेतु केन्द्रों/संस्थानों की स्थापना करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

12. उच्च शिक्षा केन्द्रों के न्यायिक मामलों के निपटाने के लिए विधि आयोग के द्वारा की गयी सिफारिशों पर सरकार को शीघ्र निर्णय लेना चाहिए।

तकनीकी और प्रबन्ध शिक्षा (Technical & Management Education)

इस सम्बन्ध में समीक्षा समिति ने निम्न सुझाव प्रस्तुत किये हैं—

1. विशेष महत्व के क्षेत्र की योजनाओं का विस्तृत मूल्यांकन एक राष्ट्रीय विशेषज्ञ समिति के द्वारा किया जाना चाहिए।
2. सामुदायिक पालीटेकनिकों के मूल्यांकन सम्बन्धी 'कालबाग समिति' (1987) की रिपोर्ट में की गयी वित्तीय आवश्यकताओं को अधुनातन कर दिया जाना चाहिए।
3. अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद (AICTE) के क्षेत्रीय कार्यालयों के अध्यक्ष वरिष्ठ व्यक्ति होने चाहिए ताकि उच्च शिक्षाधिकारियों से तालमेल बैठाकर ये अपने दायित्वों को प्रभावी ढंग से निभा सकें।
4. आई0 आई0 टी0 समीक्षा समिति के द्वारा 1986 में दी गयी रिपोर्ट पर ध्यानपूर्वक विचार कर अविलम्ब निर्णय लेना चाहिए।
5. सभी स्तर पर गुणवत्ता तथा मानक के सुधार की कार्यवाही की जानी चाहिए।
6. प्रतिभा पलायन होने से रोकने के उपाय किये जाने चाहिए।
7. अनुसंधान तथा विकास (R & D) को प्रोत्साहन देना चाहिए।
8. प्रौद्योगिकी की चौकसी तथा जनशक्ति आवश्यकताओं का मूल्यांकन किया जाना चाहिए।
9. अनुवर्ती शिक्षा तथा पुर्नप्रशिक्षण कार्यक्रम चलाये जाने चाहिए।
10. अनुसूचित जाति व जनजाति महिलाओं तथा विकलांगों के लिए विशेष कार्यक्रम चलाये जाने चाहिए

_शिक्षा में भाषाओं का स्थान_ (Place of Languages in Education)

समीक्षा समिति ने भाषाओं को शिक्षा का मूलाधार मानते हुये भाषाओं के सम्बन्ध में कहा

कि शिक्षा नीति में भाषाओं की स्पष्ट व्यवस्था की जानी चाहिए। इस सम्बन्ध में निम्न सुझाव दिये हैं–

1. भारतीय भाषाओं में विश्वविद्यालय स्तरीय पुस्तकों का निमार्ण मुख्यतः विश्व विद्यालयों पर छोड़ देना चाहिए।
2. छात्रों के सभी स्तरों पर क्षेत्रीय भाषा के माध्यम से परीक्षाएं देने की छूट दी जानी चाहिए।
3. त्रिभाषा सूत्र के कार्यान्वियन में कठिनाईयों तथा विषमताओं के बावजूद यह सूत्र अपनी परीक्षा में सफल हुआ है इसको समान तथा बुद्धि संगत रूप से कार्यान्वित किया जाना चाहिए।
4. हिन्दी प्रोन्नति तथा प्रसार के प्रयासों के मजबूत व एकीकृत करने के लिए केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान तथा वैज्ञानिक व तकनीकी शब्दावली आयोग को मिलाकर एक स्वायत्त अकाद्मिक संस्था में परिवर्तित किया जा सकता है।
5. स्कूल प्रणाली में सामाजिक विज्ञानों के रूप में शास्त्रीय भाषाओं का अध्ययन उपलब्ध कराया जाना चाहिए।
6. संस्कृत शिक्षा के आकदमिक स्तरों के निर्धारण, रखरखाव तथा समन्यवय का कार्य करने के लिए एक राष्ट्रीय स्तर के अभिकरण की आवश्यकता की राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान को मजबूत किया जा सकता है उसका स्तर बढ़ाया जा सकता है व उसे राष्ट्रीय स्तर के आयोग का दर्जा दिया जा सकता है।
7. अल्प संख्यकों को मातृभाषा में शिक्षा दिये जाने के लिए प्रबन्ध किये जाने चाहिए।
8. उर्दू प्रोन्नति ब्यूरो को स्वायत्त बनाने की जाफरी कमेटी की सिफारिश से सहमति व्यक्त करते हुए कहा गया है कि अकादमिक संस्थाओं को भारत रारकार के अधीनिस्थ कार्यालयों की सख्तियों से मुक्त किया जाना चाहिए।
9. सिंधी भाषा विकास बोर्ड की स्थापना की जानी चाहिए। गोरखाली, संथोली, मैथिली तथा भोजपुरी जैसी अन्तर्राष्ट्रीय भाषाओं के विकास और प्रोन्नति के लिए भी विशेष उपाय दिये जाने चाहिए।
10. तर्क संगत नियमों पर आधारित एक नूतन भाषायी सर्वेक्षण होना चाहिए।

11. देश में अनुवाद सम्बन्धी कार्य प्रणालियों के प्रशिक्षण दिये जाने के लिए एक राष्ट्रीय स्तर की सुविधा स्थापित की जानी चाहिए।

12. भारतीय भाषाओं के प्रौद्योगिक विकास नामक परियोजना के तहत शिक्षा विभाग को भाषाओं के विकास हेतु प्रौद्योगिकी के प्रयोग के विशिष्ट उप–परियोजनाएं शुरू करनी चाहिए।

शिक्षा की विषय वस्तु और प्रक्रिया (Content and Process of Education)

1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर पुर्नविचार करते हुए समीक्षा समिति ने निम्न सुझाव प्रस्तुत किये हैं–

1. शिक्षा की सांस्कृतिक विषय वस्तु के अर्न्तगत न केवल भारत की समान सांस्कृतिक विरासत को वरन् भारत के विभिन्न भागों की विधोओं को प्रतिबिम्बित करने वाली सांस्कृतिक परम्पराओं को भी उसमें शामिल किया जाना चाहिए।
2. मूल्य प्रधान शिक्षा को पूरी शिक्षा प्रक्रिया एवं स्कूल वातावरण का अभिन्न अंग हो जाना चाहिए।
3. प्रजातंत्र, धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद, वैज्ञानिक स्वाभाव, लिंग आधारित समानता, ईमानदारी, निष्ठा, साहस, निष्पक्षता एवं सभी प्रकार के जीवधारियों, विभिन्न संस्कृतियों व भाषाओं के प्रति सम्मान जैसे आधारभूत मूल्यों का शिक्षा की विषयवस्तु एवं प्रक्रिया में व्यापक रूप से उल्लेख होना चाहिए।
4. अनुभव के आधार पर सरकार को सारे शिक्षा प्रौद्योगिकी कार्यक्रम का पुनरावलोकन करना चाहिए।
5. सन् 1968 तथा 1986 में प्रवर्तित स्थिर व स्थापित भाषा नीति को सार्थक ढंग से कार्यान्वित करने के लिए उपाय किये जाने चाहिए।
6. कम्प्यूटर शिक्षा के विस्तार में एक सावधानीपूर्ण नीति का अनुसरण करना आवश्यक है।
7. कार्यानुभव/समाजोपयोगी उत्पादक कार्य को पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग बनाया जाना चाहिए।
8. विज्ञान और गणित के अध्ययन–अध्यापन में परम्परागत ज्ञान को विकसित किया जाना चाहिए।

9. विज्ञान की पढ़ाई का उद्देश्य केवल वैज्ञानिक स्वभाव विकसित करना होना चाहिए। वैज्ञानिक विधि को ज्ञान प्राप्ति में साधन के रूप में इस्तेमाल किया जाना चाहिए।
10. भाषाओं के लिए शिक्षा संस्थाओं तथा उसके बाहर राष्ट्रीय व सामाजिक विकास के कार्यों में भाग लेने के अवसर जुटाने का दायित्व मुख्यतः शिक्षा विभाग का होना चाहिए।
11. एरोबिक्स का शैक्षिक व विकासात्मक मूल्य अधिक है इसलिए इसे शारीरिक शिक्षा का अभिन्न अंग बनाया जाना चाहिए।
12. राष्ट्रीय एकता शिविर इस प्रकार से आयोजित किये जाने चाहिए कि युवाओं को जनजातियों तथा सुविधाओं से वंचित जनता से मिलने का अवसर मिल सके।
13. परीक्षा सुधार पैकेज में सेमेस्टर पद्धति, अनवरत आन्तरिक मूल्यांकन, क्रेडिट संचयन आदि को सम्मिलित किया जाना चाहिए।
14. छात्रों में पढ़ने की आदत तथा स्वाध्याय की क्षमता विकसित की जानी चाहिए।
15. सम्पूर्ण पाठ्यक्रम को पुर्नगठित करके न केवल संज्ञानात्मक क्षेत्र के सभी आयामों पर बल दिया जाना चाहिए वरन् भावात्मक क्षेत्र व मनोचालक कौशल पर भी पर्याप्त बल दिया जाना चाहिए।

***शिक्षक और छात्र* (Teachers & Students)**

शिक्षकों तथा छात्रों के सम्बन्ध में समीक्षा समिति ने निम्न सुझाव प्रस्तुत किये हैं–

1. शिक्षक शिक्षा के लिए छात्र का चयन कठोर अभिरूचि तथा उपलब्धि के द्वारा नियमित करना होगा न कि केवल विश्वविद्यालय की श्रेणी या अंकों में।
2. प्रशिक्षण कार्यक्रम सक्षमता आधारित होना चाहिए।
3. शिक्षक शिक्षा की प्रथम डिग्री पत्राचार कार्यक्रम के माध्यम से प्रदान नहीं की जानी चाहिए।
4. शिक्षक–प्रशिक्षण कार्यक्रमों, विशेषकर प्रारम्भिक स्तर के शिक्षकों को नया रूप दिया जाना चाहिए।
5. प्रस्तावित शैक्षिक संकुल को उनके अधिकार क्षेत्रों में शिक्षकों के लिए सेवाकालीन शिक्षक–प्रशिक्षण कार्यक्रमों के समन्वयव व आयोजन की जिम्मेदारी दी जा सकती है।

6. जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों को अपना अनुसंधान तथा प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करने की पूर्ण स्वायत्तता प्रदान की जानी चाहिए।
7. शिक्षकों की प्रभाविकता में वृद्धि करने के लिए उन्हें विभिन्न कल्याणकारी सुविधाएं प्रदान करनी चाहिए।
8. शिक्षा प्रणाली के भीतर तथा शिक्षा प्रणाली व अन्य सम्बद्ध क्षेत्रकों के बीच भी शिक्षकों की गतिशीलता को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
9. विश्व विद्यालय स्तर पर छात्र परिषदों की स्थापना की जानी चाहिए।
10. विश्व विद्यालयों तथा कालेजों में छात्र–रोजगार समितियों का गठन करना उचित होगा।

विकेन्द्रीकरण और सहभागी प्रबन्ध

(Decentralization & Participatry Management)

इस विषय के सम्बन्ध में समीक्षा समिति ने निम्न सुझाव प्रस्तुत किये हैं–

1. राज्य अपने स्तर पर शैक्षिक विकास के लिए जिला, खण्ड और ग्राम स्तर पर सार्थक योजना को सुविधाजनक बनाने के लिए उसकी रूपरेखा तैयार करें।
2. प्रारम्भिक शिक्षा के सर्वीकरण, स्कूल शिक्षा के व्यवसायीकरण तथा निरक्षर प्रौढ़ों के लिए शिक्षा की व्यवस्था करने जैसे व्यापक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए लक्ष्य वर्ष की निश्चित सीमा निर्धारित करनी चाहिए।
3. शैक्षिक विषय वस्तु से सम्बन्धित योजना का विवधीकरण कर देना चाहिए और अधिगम की वैकल्पिक रणनीतियों व स्कूलों के गैर औपचारिक व्यवहार आदि के मॉडल को भी पूरा अवसर मिलना चाहिए।
4. स्वैच्छिक संगठनों की सहभागिता सुनिश्चित करने के लिए यह अच्छा होगा कि सरकार उनके प्रयत्नों से आरम्भ किये गये कार्यों के अनुसार उन्हें सहायता दे ताकि वे सरकारी ढंग पर बनाये कार्यक्रम के अनुसार चलें।
5. मानव विकास मन्त्रालय के अधीन अलग–अलग विभागों की सेवा में तालमेल बैठाने के लिए मन्त्रालय के अर्न्तविभागीय समन्यवय के बारे में पुनरावलोकन करना चाहिए।

6. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के अन्तर्गत प्रारम्भ की गयी केन्द्रीय प्रायोजित योजनाओं के क्रियान्वयन की स्थिति की समीक्षा 1992–93 में की जानी चाहिए।

***शिक्षा के लिए संसाधन* (Resources of Education)**

संसाधनों के क्षेत्रीय आवंटनों में शिक्षा को अपेक्षाकृत कम प्राथमिकता दिये जाने की बात को स्वीकार करते हुये समीक्षा समिति ने निम्न सुझाव प्रस्तुत किये हैं–

1. स्नातकों का लाभ उठाने वाले नियोक्ताओं पर स्नातक कर लगाया जाना चाहिए।
2. शिक्षा के लिए सकल राष्ट्रीय उत्पाद के एक प्रतिशत की व्यवस्था होनी चाहिए।
3. सभी तकनीकी तथा व्यवसायिक शिक्षा को स्वपोषी बनाया जाना चाहिए।
4. शिक्षण शुल्क में वृद्धि का अनुपात छात्रों पर होने वाले आवर्ती व्यय और उनके माता–पिता की आय के स्तर को देखते हुए निर्धारित किया जा सकता है।
5. उच्च शिक्षा के लिए ऋण की व्यवस्था करने के लिए राष्ट्रीयकृत बैंकों को एक संकल्पबद्ध कार्यक्रम शुरू करने की आवश्यकता है।
6. औद्योगिकी विकास बैंक, औद्योगिक वित्त निगम और औद्योगिक ऋण व निवेश निगम आदि ऋणदायी संस्थाओं को विश्वविद्यालय में अनुसन्धान की प्रोत्साहित करने के कार्यक्रम शुरू करने चाहिए।
7. शिक्षा संस्थाओं में छात्रों, कर्मचारियों व अध्यापकों के लिए आवास सेवा में जीवन बीमा निगम द्वारा पैसा लगाया जाना अत्यन्त वांछनीय है।
8. आर्थिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए समुचित छात्रवृति की व्यवस्था की जानी चाहिए।
9. छात्रवृति योजनाओं का कार्यान्वयन सन्तोष जनक ढंग से किया जाना चाहिए।
10. शिक्षक के लिए संसाधन, जुटाने के अन्य उपायों का विधान करने, शिक्षा उपकर लगाने, परामर्श सेवा प्रदान करने आदि की व्यवस्था की जानी चाहिए।

उपर्युक्त बिन्दुओं के माध्यम से सन् 1990 में आचार्य राममूर्ति जी की अध्यक्षता में गठित समीक्षा समिति ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के द्वारा सुझाए गये बिन्दुओं को वर्तमान परिप्रेक्ष्य की आवश्यकतानुसार परिवर्तित कर विस्तृत रूप से विवेचना करते हुये अपने सुझाव प्रस्तुत

किये हैं। समिति के द्वारा की गई संस्तुतियॉ शिक्षा के क्षेत्र में संसाधनों की कमी की दृष्टि से अत्यन्त ही महत्वपूर्ण प्रतीत होती है। इस समिति ने उपलब्धा आधार संरचना के बेहतर प्रयोग के साथ–साथ लागत की दृष्टि से किफायत को ध्यान में रखकर अपनी संस्तुतियाँ प्रस्तुत की थी। राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा के मात्र चार वर्ष के उपरान्त उसकी समीक्षा करने के लिए समिति के गठन करने को अनेक लोगों ने इसे राजनीति से प्रेरित माना, क्योंकि सन् 1986 की शिक्षा नीति की घोषणा राजीव गाँधी के प्रधानमंत्रित्व काल में 'कांग्रेस सरकार' के द्वारा हूई थी जबकि समीक्षा समिति का गठन जनता सरकार के द्वारा किया गया था। समीक्षा समिति अपनी रिपोर्ट दे भी न सकी थी कि केन्द्र में सरकार का परिवर्तन हो गया व बाद में मध्यावधि चुनाव के फलस्वरूप केन्द्र में पुनः कांग्रेस सरकार बन गयी, जिसने 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति को पुनः लागू करने की घोषणा की।

कुछ भी क्यों न हो इस रिपोर्ट ने भारतीय शिक्षा के सम्बन्ध में व्यापक विचार–विमर्श किया। शिक्षा की समस्याओं का समाधान करने के लिए लीक से हटकर चिन्तन किया। आज के परिप्रेक्ष्य में शिक्षा नीति पर किये गये चिन्तन की सार्थकता सिद्ध हो सकती है तथा भावी शोध अध्ययन कर रहे शोधार्थी को इससे नये आयाम एवं सुझाव प्रस्तुत करने में नवीन चिन्तन मिला सकता है।

चतुर्थ अध्याय

स्वतंत्रता उपरांत गठित शिक्षा आयोगों की आवश्यकता एवं नीतिगत विवेचन

पूर्वपीठिका

भारत वर्ष में 1986 की नई शिक्षा नीति की अवधारणा 20वीं शताब्दी के द्वितीय दशक से प्रारम्भ हो गयी थी। जब शिक्षा मनीषियों और चिंतकों ने उच्च शिक्षा, विज्ञान और तकनीकी शिक्षा को अंग्रेजी शासन काल को शिक्षा व्यवस्था में प्रारम्भ करने का संकल्प किया। दिसम्बर 1923 में राजा राम मोहन राय ने तत्कालीन गवर्नर जनरल को यह सुझाव प्रेषित किया कि कलकत्ता में संस्कृत कालेज खोलने के स्थान पर वैज्ञानिक विषय यथा–गणित, रसायन शास्त्र, प्रकृति दर्शन तथा इसी प्रकार के अन्य उपयोगी वैज्ञानिक विषयों में शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था शासन करें और इसके लिए आवश्यक उपकरण ग्रन्थ तथा उपकरणों की व्यवस्था भी की जाये।[1] जेम्स मिला और लार्ड मैकाले ने भी भारत में अंग्रेजी शिक्षा पर विशेष बल देते हुए इस तथ्य को प्रतिपादित किया कि अंग्रेजी साहित्य की शिक्षा के साथ–साथ भारत के मूल निवासियों को विज्ञान की भी शिक्षा प्रदान की जाय। इसी संदर्भ में जून 1935 में कलकत्ता में एक चिकित्सा महाविद्यालय की स्थापना की गयी, जिसमें 20 वर्ष की अवस्था के 50 विद्यार्थियों का प्रवेश लिया गया। 1945 में इसी प्रकार का एक चिकित्सा महाविद्यालय बम्बई में स्थापित हुआ।[2] इसी की निरन्तरता में मद्रास में भी एक इंजीनियरिंग कालेज खोला गया इससे यह प्रतीत होता है कि अंग्रेजी शासन काल में शिक्षा के विकास के लिए अनेक प्रयास हुये किन्तु उनका मूल उद्देश्य अंग्रेजी राज्य को सशक्त करने के लिए ऐसे शिक्षित भारतीयों की आवश्यकता पर केन्द्रित था जहाँ शिक्षित भारतीय अंग्रेजी शासन को सुदृढ़ करने में अपना योगदान दे सकें। भारतीय राष्ट्रीयता के आन्दोलनों, 1914 का प्रथम विश्व युद्ध और 1943 के द्वितीय विश्व युद्ध ने ये सिद्ध कर दिया कि उच्च शिक्षा कार्यक्रम में इंजीनियरिंग एवं चिकित्सा की शिक्षा मंथर गति से चलती रही है। जिससे शिक्षा विधायकों की अपेक्षाएं पूरी नहीं हो सकीं हैं इस अवधि में मात्र पांच इंजीनियरिंग कालेज और वाइस मेडिकल कालेज अस्तित्व में थे।[3] 1935 में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड की स्थापना की गयी। जिसकी मूल उद्देश्य छात्रों में उच्चतर माध्यमिक स्तर पर प्राविधिक विषयों को शिक्षा में समाविष्ट करना था। और इसके लिए सर्वाधिक प्रयास वुड कमेटी की रिपोर्ट के आधार पर प्रस्तुत किया गया। वुड ने सामान्य शिक्षा और प्रशासन के विषय में तथा

---

1. Selection from Educational Records - Page 99
2. Selection from Educational Records - Volume - 2 Page 312 to 338
3. 1978 में प्रकाशित कामर्स पत्रिका की संदर्भ–संज्ञा 3526/12

स्पष्ट व्यावसायिक शिक्षा के विषय में अपनी संस्तुतियां व सुझाव प्रस्तुत किये थे, किन्तु उससे उच्च शिक्षा, वैज्ञानिक शिक्षा व तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में न तो कोई सुझाव थे और न ही कोई योजना। इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि उच्च शिक्षा के क्षेत्र में विज्ञान और तकनीकी विषयों के अध्यापन में तथा नई शिक्षा नीति के निर्धारण में यह रिपोर्ट प्रेरणास्पद नहीं रह सकी। लेकिन तकनीक़ी शिक्षा का अभ्योदय इसी रिपोर्ट के आधार पर हुआ। जिसके फलस्वरूप दिल्ली में एक पॉलिटेक्निक कॉलेज की स्थापना की गयी।

जब शासन की दृष्टि उच्च शिक्षा के विकास की ओर थी तभी एक ओर द्वितीय विश्वयुद्ध का विस्फोट प्रारम्भ हो चुका था और दूसरी ओर महात्मा गांधी ने अंग्रेजो भारत छोड़ो आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया था। परिणाम यह हुआ कि गांधी जी के आन्दोलन ने शिक्षा विषयक नीति को और पीछे कर दिया आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया था। राष्ट्रीय आन्दोलन के तीव्र हो जाने पर अंग्रेजी शासन व्यवस्था के अर्न्तगत शिक्षा के समस्त कार्य रोक दिये गये। 1937 तक देश में सत्रह विश्व विद्यालय थे और उनसे सम्बद्ध 366 महाविद्यालय तथा 1,26,228 विद्यार्थी की संख्या थी। जो विश्व विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में अध्ययन कर रहे थे। द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त 8 प्रदेशों में कांग्रेस मंत्री मण्डलों की स्थापना 1946 में हुयी और 1947 में भारत वर्ष को स्वतंत्र देश घोषित कर दिया गया। 1944 में जो सार्जेण्ट ने शिक्षा में विकास के लिए एक योजना बिट्रिश सरकार के सन्मुख प्रस्तुत की थी। जिसमें वे सभी उद्देश्य सम्मिलित थे जो बाद में 1984 में भारतीय शिक्षा पद्धति में लागू किये जाने हेतु प्रस्तावित किये गये थे। इस प्रस्तावों में निरक्षरता का उन्मूलन तथा प्रति 20 विद्यार्थियों पर जिन्होंने हायर सेकेण्डरी उत्तीर्ण कर लिया हो उन पर एक विद्यार्थी के अनुपात में उच्च शिक्षा दिये जाने का प्रस्ताव था। इसके साथ ही माध्यमिक शिक्षा में बहुउद्देशीय स्कूल तथा तकनीकी शिक्षा व्यवसाय और उद्योग, कृषि, ललित कलाएं और गृह विज्ञान जैसे विषयों में भी शिक्षा का प्रस्ताव किया गया था। इसका मूल उद्देश्य ये था कि विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा से हटा कर इन बहु उद्देशीय औद्योगिक शिक्षा की ओर मोड़ा जा सके। इसे 1953 में मुदालियर कमीशन की रिपोर्ट में उल्लिखित किया गया है।[1]

इतने पर भी प्राथमिक शिक्षा के दुर्गण, प्रौढ़ शिक्षा के प्रति उदासीनता और अनियोजित शिक्षा प्रसार से व्यवस्थित और उद्देश्य मूलक शिक्षा का हास होता गया। तथा अंशकालिक शिक्षा

---

1. मुदालियर कमीशन रिपोर्ट 1953

को प्रोत्साहन देने से, शिक्षा के स्तर में निरन्तर गिरावट आती गयी। गांधी जी भी बेसिक शिक्षा के द्वारा कुछ सुधार करना चाहते थे अन्ततः वे भी विफल रहे। और 14 वर्ष की अवस्था तक बच्चों को दी जाने वाली निःशुल्क शिक्षा एक स्वप्न बनकर रह गयी।

बुनियादी शिक्षा के विकास के लिए गांधी ने वर्धा शिक्षा सम्मेलन को आहूत किया और इसमें ही उन्होंने अपनी योजना को इस प्रकार परिभाषित किया है–

"देश की वर्तमान शिक्षापद्धति किसी भी तरह देश की आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकती है। इस शिक्षा द्वारा जो भी लाभ होता है उससे देश भर का कर देने वाला प्रमुख वर्ग वंचित रह जाता है। अतः प्राथमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम कम से कम 7 वर्ष का हो जिसके द्वारा मैट्रिक तक का ज्ञान दिया जाने पर इसमें अंग्रेजी के स्थान पर कोई अच्छा उद्योग जोड़ दिया जाय।"[1]

गांधी जी ने 31 जुलाई 1937 के अपने शिक्षा सम्बन्धी विचारों को प्रस्तुत किया है उनका मनतव्य है।

"बच्चे और मनुष्य को सम्पूर्ण शारीरिक मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियों के सर्वागीण विकास का नाम शिक्षा है। साक्षरता शिक्षा का प्रारम्भ और अन्त दोनों ही नहीं है। यह मात्र एक साधन है। जिसके द्वारा पुरूष और स्त्री को शिक्षित किया जाता है।"

इसी तारतम्य में गांधी जी से प्रभावित डा0 जाकिर हुसैन ने भी जामिया मिलिया दिल्ली में एक समिमि के अध्यक्ष की हैसियत से नयी तालीम की योजना बनायी। उनकी अध्यक्षता में गठित इस समिति को जाकिर हुसैन समिति कहा गया। इस समिति ने दो प्रतिवेदन प्रस्तुत किये। (1937 और 1938) पहली समिति के प्रतिवेदन में गांधी जी द्वारा प्रस्तावित वर्धा शिक्षा योजना को मूर्त रूप देकर उसके पाठ्यक्रम का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया।

द्वितीय प्रतिवेदन 1938 में हस्त शिल्प को अन्य विषयों के साथ सम्बन्धित कर शिक्षा योजना प्रस्तुत की गयी।

बुनियादी शिक्षा के उद्देश्य आर्थिक और नैतिक लक्ष्य को प्राप्त करना था। गांधी जी ने अपने आत्म कथा में स्पष्ट लिखा है "मैंने हृदय की संस्कृति और चरित्र निर्माण को सर्वोच्च स्थान दिया है।" गांधी जी सदैव संस्कृति के पोषक रहे हैं। और उनकी बुनियादी शिक्षा में

1. **Educational Reconstructions Page - 32**

सांस्कृतिक विकस प्रमुख है। उनका स्पष्ट मत है। "यदि किसी स्थिति में पहुँच कर एक पीढ़ी अपने पूर्वजों के प्रयासों को पूर्णतः अनभिज्ञ हो जाती है। अथवा उसे अपनी संस्कृति पर लज्जा आने लगती हो तो वह संस्कृति नष्ट हो जाती है।" गांधी जी के इस बुनियादी शिक्षा उद्देश्य में सर्वोदय समाज की स्थापना का लक्ष्य प्रमुख था।[1]

स्वतंत्र भारत में साक्षरता को प्रमुखता देते हुये एक व्यापक प्रचार–प्रसार की नीति प्रचलित की गयी उससे गांधी जी कभी भी सहमत नहीं थे। किन्तु किन कारणों से साक्षरता की प्रमुखता दी गयी यह अज्ञात है। गांधी जी का मत था सम्पूर्ण साक्षरता भारत के लिए एक अभिशाप है। पाप और कलंक है। इसे तुरन्त समाप्त कर देना चाहिए।[2] गांधी जी निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा में विश्वास करते थे। परतंत्र भारत के संविधान में चौदह वर्ष तक की अवस्था के बच्चों की राज्य द्वारा निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्राविधान रखा गया है।[3] वस्तुतः बुनियादी शिक्षा का मूल्यांकन करते समय और नयी शिक्षा नीति के निर्धारण में शिक्षाविदों ने विज्ञान और तकनीकी शिक्षा क विकास के लिए गांधी जी की शिक्षा पद्यति तथा जाकिर हुसैन समिति की हस्त शिल्प के प्रस्तावों को नकार सा दिया है। जबकि महात्मा गांधी ने कुटीर उद्योगों के विकास के लिए बुनियादी शिक्षा प्रतिफलित नहीं हो सकी और सर जान सार्जण्ट ने एक नयी शिक्षा योजना प्रस्तुत की तो यह आवश्यक प्रतीत होता है कि इस बुनियादी शिक्षा और सार्जण्ट समिति के प्रस्ताव के अन्तविरोधों के चलते हुये क्या कोई भी शिक्षा योजना का निर्माण किया जा सकता है। अतः सार्जण्ट समिति भी सिफारिशों का भी अध्ययन तुलनात्मक मूल्यांकन और आवश्यकतानुसार परिवर्तन का अध्ययन करना आवश्यक है। 1944 में जॉन साजेण्ट ने शिक्षा के विकास के लिए एक केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड की स्थापना की इस समिति के समक्ष जब यह योजना प्रस्तुत की गयी उससे शिक्षा के नये आयाम जाग्रत हुये। बेसिक शिक्षा को स्वीकार करते हुये उसने 17 वर्ष की अवस्था तक बच्चों को हाई स्कूल की शिक्षा देना प्रस्तावित किया, जिसमें बेसिक शिक्षा प्राप्त विद्यार्थियों के 20 प्रतिशत को हाईस्कूल तक शिक्षा दिये जाने की संस्तुति की ओर उनमें से भी 50 प्रतिशत बच्चों को निःशुल्क शिक्षा का प्राविधान था। यह सत्य है कि सर्जण्ट का यह शिक्षा प्रस्ताव भारत की राष्ट्रीय शिक्षा की प्रथम विस्तृत और व्यापक योजना है। तत्कालीन शिक्षा सचिव के0 जी0 सैयदन ने उसे स्वीकार करते हुये लिखा है कि यह शिक्षा योजना इस विश्वास पर आधारित हैं कि अन्य देशों में शिक्षा के विकास में जो सफलता प्राप्त की है उसे प्राप्त करने की भारत में भी प्रबल सम्भावनाएं हैं।[4] भारत सरकार में समय–समय पर जो शिक्षा आयोग नियुक्त किये गये हैं उनका विवरण अग्रांकित सारणी में दिया जा रहा है–

1. डॉ० एम०एस० पटेल – The Educational Philosophy and Mathematics
2. M. K. Gandhi - India of my Dreams - Page 181
3. Constitution of India - Artical 45
4. के० जी० सैय्यदन – Education Culture and Social Orders - Page 507

सारणी - 1

अखिल भारतीय शिक्षा - आयोग

समयावधि	आयोग का नाम	नियुक्ति वर्ष	आयोग के अध्यक्ष	कार्य क्षेत्र	प्रचलित नाम
स्वतन्त्रता के पूर्व	1. इण्डियन एजूकेशन कमीशन	1882	डब्ल्यू0 डब्ल्यू0 हण्टर	प्राथमिक, माध्यमिक तथा कालेज शिक्षा।	हण्टर आयोग
	2. इण्डियन एजूकेशन कमीशन	1902	रेले	विश्दविद्यालय शिक्षा	रेले आयोग
	3. कलकत्ता यूनिवर्सिटी कमीशन	1917	एम0ई0 सेडेलर	विश्वविद्यालय शिक्षा	सैडलर आयोग
स्वतन्त्रता के बाद	1. विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग	1948 – 49	सर्वपल्ली राधाकृष्णन	विश्वविद्यालय शिक्षा	राधाकृष्णन आयोग
	2. माध्यमिक शिक्षा आयोग	1952 – 53	ए0एल0 मुदालियर	माध्यमिक शिक्षा	मुदालियर आयोग
	3. संस्कृत आयोग	1956 – 57	सुनील कुमार चटर्जी	संस्कृत शिक्षा	
	4. शिक्षा आयोग	1964 – 66	डी0एस0 कोठारी	राष्ट्रीय शिक्षा	कोठारी आयोग
	5. अर्न्तराष्ट्रीय शिक्षा आयोग	1971 – 72	एडलर फोरे	अर्न्तराष्ट्रीय शिक्षा	लनिंग दुबी
	6. राष्ट्रीय शिक्षक आयोग	1982 – 83	डी0पी0 चड्योंपध्याय	स्कूल स्तर	
	7. राष्ट्रीय शिक्षक आयोग	1982 – 83	प्रो0 रईस अहमद	विश्वविद्यालय स्तर	

स्त्रौत 1. जे0सी अग्रवाल – डेवलपमेंट एण्ड प्लानिंग ऑफ एजूकेशन नयी दिल्ली, विकास पविलरिंग हाउस–1985

2. एस0के0 मूर्ति – कन्टेम्परेरी प्रबलम्स एण्ड ट्रेन्ड्रस इन एजूकेशन, लुधियाना, प्रकाश ब्रदर्स – 1979 ।

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग 1948-49

इस आयोग ने एक वर्ष की अवधि में 25 अगस्त 1949 को अपना प्रतिवेदन शासन को प्रस्तुत किया किन्तु इसके पूर्व आयोग ने आवश्यकतानुसार कुलपतियों, कुल सचिवों प्राचार्यों और देश के अन्याय विद्वानों, देश के मूर्धन्य विद्वानों से भी परामर्श किया था। इसमें आयोग भी संस्तुति बहुत व्यापक़ थी। जिनमें भारत में विश्वविद्यालयी शिक्षा के पूर्व शिक्षा के समस्त सोपानों पर भी विचार किया गया था। इस आयोग में पूर्व विश्वविद्यालय शिक्षा के सम्बन्ध में इस बात पर बल दिया कि पूर्ण शिक्षा 10+2 के आधार पर हो। और कुछ विषयों में विशेषीकरण शोध के विकसित छितिज और ज्ञान की सीमाओं का विस्तार किया जाय। कृषि उद्योग, विधि, चिकित्सा, विज्ञान और तकनीकी क्षेत्रों में भी औद्योगिक शिक्षा इकाईयाँ स्थापित की जायें। व्यापार और सामान्य प्रशासन तथा औद्योगिक सम्बन्ध की शिक्षा का मूल्यांकन विद्यार्थियों के द्वारा किये गये वर्ष भर के कार्य से किया जाय। विद्यार्थियों की सुख सुविधा व कल्याणार्थ छात्रवृत्तियों, हॉस्टल, पुस्तकालय और चिकित्सा सुविधाएं भी प्रदान किये जाने का प्रस्ताव किया गया। इसके साथ ही विद्यार्थियों को तीन भाषाओं का ज्ञान–क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अंग्रेजी भी कराना अनिवार्य था और यह भी प्रस्ताव में संयुक्त था कि कालान्तर में जहाँ तक सम्भव हो अंग्रेजी के स्थान पर भारतीय भाषाओं को स्थान दिया जाय। इस आयोग के प्रस्ताव में यह भी निश्चित किया गया कि ग्रामीण आवश्यकताओं के अनुसार कृषि, उद्योग तथा अन्य ग्रामीण व्यवसायों को जोड़कर ग्रामीण विश्वविद्यालय भी स्थापित किये जाय। इन विश्व विद्यालयों को स्वायतशासी विश्वविद्यालय बनाया जाय और इनके लिए संसाधन जुटाने का काम विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को और अन्त में सम्पूर्ण शिक्षा को भारत के संविधान की संवर्गी सूची में रखा जाय ताकि केन्द्रीय सरकार सामान्य नीति निर्धारण कर सके और राज्य सरकारें अपने प्रदेश की आवश्यकता के अनुसार उनका नियमन कर सकें।[1]

विश्वविद्यालय आयोग का परिसीमन

भारत सरकार ने आयोग से जिन क्षेत्रों में सुझाव देने के लिए निर्दिष्ट किया था उनको निश्चित संदर्भों में परिसीमित भी किया है। ये विषय आयोग के क्षेत्र में रखे गये, जिन पर विद्वानों ने 8 बिन्दु निर्धारित किये। जो इस प्रकार हैं–

---

1. राधाकृष्ण कमीशन रिपोर्ट – 1949

1. भारतीय विश्व विद्यालयों के संगठन नियन्त्रण कार्यक्षेत्र एवं विधान के सम्बन्ध में आवश्यक संशोधन और परिवर्तन करना।
2. विश्व विद्यालय शिक्षा की अवधि, माध्यम और पाठ्क्रम।
3. विश्व विद्यालय और सम्बद्ध महाविद्यालयों में शिक्षा एवं परीक्षा का उन्नयन।
4. भारत वर्ष में विश्व विद्यालय शिक्षा और अनुसंधानकार्य के उद्देश्यों का निर्धारण करना।
5. विश्व विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा का नियमन, संयोजन और उद्देश्य निर्धारण करना।
6. प्रादेशिक तथा तकनीकी और विषय विशेष के आधार पर विश्वविद्यालय की स्थापना करना।
7. शिक्षकों की योग्यताएं, सेवा शर्ते, वेतनमान, कार्य एवं अधिकार क्षेत्र को निर्धारण करना।
8. छात्रों में अनुशासन, छात्रावासों का नियमन और उप कक्षाओं का संयोजन करना।

उपर्युक्त संदर्भों में पर्याप्त जांच पड़ताल कर संसाधनों की व्याख्या और सरकार पर उसके अधिक दायित्व व निर्वहन करने के लिए इस आयोग ने जो संस्तुतियों की उनका विवरण सम्पूर्ण भारतीय परिवेश में दिया गया है।

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग की संस्तुतियाँ

भारतीय विश्व विद्यालयों का नियमन

आख्या के अध्याय–2 के अर्न्तगत राजनीतिक परिस्थतियों के बदलाव और मूल भावनाएँ परिवर्तन के कारण यह आवश्यक समझा गया कि प्रत्येक क्षेत्र में उच्च शिक्षा, साहित्यिक, वैज्ञानिक, तकनीकी और व्यवसायिक शिक्षा के आयाम बढ़ाये जायें जिससे के देश में आवश्यकताएं बीमारियाँ और अज्ञान को दूर किया जा सके।[1] जो केवल वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान से ही सम्भव था। भारत जैसा देश प्राकृतिक संसाधनों से परिपूर्ण है। और यहाँ का जन मानव भी बौद्धिक संचेतना और शारीरिक क्षमताओं से सम्पन्न था। यह केवल विश्वविद्यालयों के ही दायित्व हैं। कि इन सभी संसाधनों और मानवीय शक्तियों को वे सम्मिलित कर देश में एक आकस्मिक परिवर्तन की भावना को उत्पन्न करें। मात्र प्राचीनता के गौरव मान से देश का विश्राम सम्भव न जानकर भविष्य के लिए विचारशील प्रबुद्ध

---

1. आख्या – पृष्ठ संख्या 33 से उद्धत ।

नागरिकों की आवश्यकता को केवल विश्व विद्यालयों में ही उत्पन्न किया जा सकता है जो शब्द की जीवनी शक्ति हो, उक्त आख्या में यह स्पष्ट कहा गया है। कि विश्वविद्यालय बौद्धिक साहस के केन्द्र हैं।

पूर्व और पाश्चात्य के देशों के शिक्षा मनीषियों ने स्वीकार किया है कि शिक्षा का मूल उद्देश्य विश्व और जीवन शैली के समन्वित स्वरूप को प्रस्तुत करना है। इस उद्देश्य को मानवीय दृष्टिकोण, दूरदर्शिता और अन्यान्य विषयों के ज्ञान का समन्यवय कहा गया है। मनुष्य केवल विछिन्न सूचनाओं का केन्द्र नहीं है। विश्व के विभिन्न विषयों में अनुशासित बौद्धिक दर्शन के प्रति एक अमोध जिज्ञासा का पुज भी है। क्योंकि जीवन अपने विभिन्न स्वरूपों में सम्पूर्ण रूप से अभिव्यंक्त होता है। अतः जीवन को सम्पूर्णता का मापन बनाने के लिए शिक्षा का होना अनिवार्य है तथा उच्च शिक्षा जीवन शैली के साथ–साथ जीवन के महत्व उद्देश्यों को भी प्राप्त करने में सहायक होती है।

सामाजिक व्यवस्था के उद्देश्य की पूर्ति के लिए भी नितान्त आवश्यक है। क्योंकि शिक्षा का मूल उद्देश्य मनुष्य के विकास के साथ–साथ सामाजिक व्यवस्था ही है जिससे सभ्यताओं का विकास होता रहता है। हम अपनी स्वतंत्रता की सुरक्षा जब तक नहीं कर सकेत जब तक कि हम प्रजातांत्रिक व्यवस्था, सामाजिक न्याय स्वतंत्रता न्याय और भ्रातृ भाव जैसे उद्देश्यों की पूर्ति नहीं कर लेते और शिक्षा इन उद्देश्यों की प्राप्ति में व मनुष्य के बौद्धिक विकस की प्राप्ति में सहायक है कान्ट का कथन था कि ***"बाहरी कल्पना एक मधुर स्वप्न हो किन्तु उस कल्पना तक पहुँचने के लिए राजनीतिज्ञों और नागरिकों को समान रूप से निरन्तर प्रयास करते रहना चाहिए और विश्वविद्यालयों को इस महत आदर्शों की उपलब्धि के लिए बौद्धिक और न्याय संगत शिक्षा देकर मानवीय विकास में सहायक होना चाहिए समाज में परिवर्तनशीलता है। इस परिवर्तित और विकसित मानवीय संस्कृति की न्यूमैन ने 1852 में व्याख्यापित किया है–"*** व्योवहारिकता को यदि विश्वविद्यालयी पाठ्यक्रम में रखा जाय तो निश्चय ही समाज के सदस्य अच्छे नागरिक सिद्ध हो सकते हैं। कोई भी शिक्षा व्यवस्था न तो राज्य को क्षीण करती है। अपितु वह राज्य के परिवर्तनों को विकास की ओर ले जाती है।

बौद्धिक विकास की शिक्षा से और उसी के अनुरूप प्रशिक्षण देने से सामाजिक जीवन में औद्योगिक और व्यवसायिक विकास झलकने लगता है। अमेरिका के राष्ट्रपति टूनमैन का

कथन था कि हमारी राष्ट्रीय नीतियों का नियमन विशाल अनुभवशील व्यक्तियों के परिपक्व दृष्टिकोण और उचित निर्णय द्वारा किया जाना चाहिए। विश्व विद्यालयों का यह दायित्व है कि पुरूष और स्त्रियों के नेतृत्व के लिए तैयार करें तो उनका यह कर्तव्य भी है कि जैसे पुरूष और महिलाओं को विश्व साहित्य में उल्लिखित मानवीय अनुभवों का अध्ययन करें, नैतिक मूल्यों के परिणामों की प्रकृति को समझे तथा सामाजिक शक्तियों के मन्तव्य को भी जाने। इसके साथ–साथ जीवन की विविधता को समझें, चाहे वह भौतिक हो या सामाजिक अथवा आध्यात्मिक। विज्ञान का अध्ययन सभ्यताओं के विकास में सदा साधन बना रहा है। किन्तु वे समाज के मार्ग निर्देशन में सफल नहीं हुये हैं। हम निम्न सभ्यता में जीवित है। वह किसी औद्यागिक संस्थान में नहीं बनी हैं किन्तु वह मानवीय प्रयासों संवेदनाओं, वैज्ञानिक अध्ययनों और दार्शनिक गत चिन्तन का निरन्तर एक विकसित स्वरूप है।

भारत वर्ष एक समन्वित सांस्कृतिक इकाई है जिसमें अनेक दर्शन, मत, सम्प्रदाय और मानवीय अभिरूचियाँ सम्पूर्ण देश में व्याप्त हैं। ये वस्तुतः समय–समय पर होने वाले विकास ह्रास के ऐसे खण्ड हैं। जिन्हें संयोजित कर संस्कृति को जीवित रखा गया है। उदाहरणार्थ मुगलों के बिना देश के सांस्कृतिक समन्यवय की कल्पना व्यर्थ है। ताज महल को भी भारतीय संस्कृति से पृथक नहीं किया जा सकता और न ही मैकाले के शिक्षा विधान को । भारतीय संस्कृति तो एक जैसी जीवन्त इकाई है। जो निरन्तर विकसित ही होती रही है। और आज भी यह संस्कृति जीवन्त है। इकबाल के शब्दों में इसकी जीवन्तता की अभिव्यक्त किया गया है जबकि विश्व की अनेक सभ्यताएं महाकाल के गर्भ में समा गयी हैं।

यूनान, मिश्र, रोम सब मिट गये जहाँ से,

बाकी है लेकिन अब भी नामों निशां हमारा।।

अर्थात् प्राचीनतम यूनान मिश्र और रोम की सभ्यताएं जो कभी जगत प्रसिद्ध थी समाप्त हो गयी हैं। लेकिन भारतीय संस्कृति के स्वरूप में अनेकता में एकता के कारण यह संस्कृति अब भी जीवन्त है। विश्वविद्यालयी शिक्षा जीवन सम्पूर्णता को प्राप्त करने की एक अर्न्तप्रवाहित सरिता है। अनेक पुरूष और महिलाओं में भारतीय प्रानीचता के प्रति एक मोहक भ्रांति है। जो वे निरन्तर प्राचीनता का गुणगान करते रहते हैं। वास्तविकतायें हैं कि हमारे नवयुवक उन संवेगों से दूर जा पड़े हैं जो मनुष्य की न्याय, नीति और मानव मूल्यों के उन्नयन में सहायक होते हैं। प्राचीन कला की सांस्कृतिक विरासतें ग्रन्थों का अध्ययन, मूर्ति

किले आदि आस्थाएं तो उत्पन्न करते हैं। किन्तु वे इतनी क्षणिक होती हैं कि उनसे वर्तमान विकास सम्भव नहीं हैं। भारत की सांस्कृतिक गति कभी क्षीण नहीं हुयी है। वर्तमान युग में वैज्ञानिक विकास से मानवीय सभ्यता का विकास न्याय और मानव मूल्यों ने प्रति आस्था गहन हो गयी है। जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण है आज के युग में मानवाधिकार के लिए अर्न्तराष्ट्रीय संघ स्थापित है और इन सांस्कृतिक मूल्यों के लिए भारत आज भी विश्व विख्यात है।

माध्यमिक शिक्षा आयोग 1952-53

भारत में माध्यमिक शिक्षा के सम्बन्ध में अनेक आयोग स्वतन्त्रता से पूर्व गठित किए गए थे। ये आयोग 1882, विश्ववद्यालय आयोग 1902, सैडलर कमीशन 1917 और विश्वविद्यालय आयोग (स्ववंत्रता के बाद) 1948–49 बने जिन्होंने थोड़ा बहुत माध्यमिक शिक्षा पर भी प्रकाश डाला किन्तु स्वतंत्रता के बाद विधिवत् माध्यमिक शिक्षा सुधार के लिए बनाया गया। शिक्षा में विविधता का समावेश करने के लिए सामाजिक नियमन, जीवन सम्बद्धता और पाठ्यक्रम के विषयों का परस्पर सम्बन्धों को व्यापकता तथा माध्यमिक शिक्षकों के अधिक महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली बनाने के लिए एक नए आर्यों का गठन किया गया। 1949 एवं 1951 में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद के अनुग्रह पर केन्द्रीय सरकार ने परिपत्र संख्या एफ–9/5–52 बी (प) दिनाक 23 सितम्बर 1952 को डा0 मुदालियर[1] की अध्यक्षता में माध यमिक शिक्षा आयोग का गठन.किया इस आयोग में निम्नलिखित रुदस्य थे–

अध्यक्ष : डा0 ए0 लक्ष्मण स्वामी मुदालियर, कुलपति मद्रास विश्व विद्यालय।

सदस्य : जॉन क्रिस्टी, प्राचार्य जीजस कालेज, आक्सफोण्ड विश्वविद्यालय डा0 कैनेथ रस्ट विलियम्स साउदर्थ रीजन एजू0 बोर्ड एटलाटां। श्रीमती हंसा मेहता, कुलपति बड़ोदा विश्वविद्यालय जे0ए0 तारापोरवाला, निदेशक, मुम्बई सरकार डा0 के0 एन0 श्रीमाली प्राचार्य, विद्या भवन टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज उदयपुर एम0 टी0 व्यास, प्राचार्य न्यू एरा स्कूल मुम्बई।

सदस्य सचिव : ए0 एन0 वसु से0 इ0 आफ एजू दिल्ली।

महासचिव : एम0 एस0 एम0 टी0 एजू0 आफीसर शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार ।

---

1. शिक्षा मंत्रालय माध्यिम शिक्षा बोर्ड, नई दिल्ली 1953

आयोग से अपेक्षा की गई कि वह अपनी आख्या सुसंगत एव सुसंगठित माध्यमिक शिक्षा प्रणाली के लिए प्रस्तुत करें। जून 1953 में यह आख्या भारत सरकार के समक्ष प्रस्तुत की गई। आयोग की जाँच अध्ययन और सुझाव के बिन्दु निम्नलिखित थे जिन संदर्भों में आयोग को कार्य करना था।

अ. समग्र रूप से भारत की माध्यमिक शिक्षा व्यवस्था की वर्तमान स्थिति पर विचार करना।

ब. माध्यमिक शिक्षा के पुर्नगठन और उन्नयन के लिये विशेष रूप से निम्न बिन्दुओं पर केन्द्रित होकर सुझाव प्रस्तुत करना।

1. माध्यम शिक्षा के उद्देश्य, संगठन और नियंत्रण पर विचार।

2. प्राथमिक बेसिक और माध्यमिक शिक्षा का परस्पर सम्बन्ध था।

3. विभिन्न प्रकार के माध्यमिक शिक्षा विद्यालयों का अन्तं सम्बन्ध था।

4. अन्य कोई विशेष समस्या।

इस आख्या (Report) में 15 अध्याय और 10 अनुवर्ती अध्याय हैं। ये अध्याय

(1) भूमिका

(2) वर्तमान स्थिति का संज्ञान प्राप्त करना

(3) उद्देश्य और लक्ष्य का पुर्नःगठन और पुर्नरचना

(4) माध्यमिक शिक्षा का नवीन पुर्नगठन

(5) भाषा का अध्ययन

(6) माध्यमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम

(7) शिक्षा की प्रक्रिया

(8) चरित्र निर्माण की शिक्षा

(9) माध्यम शिक्षा में निर्देशन

(10) विद्यार्थियों का स्वास्थ्य

(11) परीक्षा और मूल्यांकन की नवीन विधियाँ

(12) शिक्षक की उन्नति

(13) प्रशासन की समस्यायें

(14) वित्त और अर्थ प्रक्रिया

(15) माध्यमिक शिक्षा जैसा हम चाहते हैं।

उपर्युक्त 15 संदर्भों का अध्ययन अवलोकन कर जो निष्कर्ष आयोग ने निकाले वे महत्वपूर्ण और भारतीय शिक्षा के लिए उपादेय थे। भारतीय शिक्षा का स्वरूप लोकतान्त्रिक निर्धारित करते हुए आयोग ने नागरिकता के विकास किए जाने तथा नेतृत्व और व्यवहारिक कौशल के विकास के लिए सुझाव दिए जिससे व्यक्तित्व का विकास भी होगा और देश प्रेम की भावना व्यापक होगी। आयोग ने स्कूली शिक्षा के पुर्नगठन का भी सुझाव प्रस्तुत किया।

आयोग के अनुसार प्राथमिक या जूनियर बेसिक शिक्षा 4 वर्ष की, सीनियर बेसिक शिक्षा 3 वर्ष की, तथा उच्च माध्यमिक शिक्षा के लिए 4 वर्ष की समय सीमा निर्धारित की। इण्टरमीडिएट कक्षा को समाप्त कर एक वर्ष उच्च माध्यमिक शिक्षा तथा एक वर्ष डिग्री शिक्षा में मिलाने का भी सुझाव आयोग ने प्रस्तुत किया। व्यवहारिक तथा तकनीकी शिक्षा को मिलाकर बहुउद्देशीय स्कूल खोले जाने को भी आयोग ने प्रस्तावित किया कृषि शिक्षा के लिए राज्य सरकारों को निर्देश देने का सुझाव देते हुए आयोग का मानना था कि राज्य ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि शिक्षण की व्यवस्था करे। आवासीय विद्यालय भी यथा सम्भव ग्रामीण क्षेत्रों में ही खोले जाएं एवं शारीरिक रूप से विकलांगों के लिए भी बड़ी संख्या में स्कूल खोलने को प्रस्तावित किया गया। साथ ही कला विद्यालयों में गृह–विज्ञान की शिक्षा देने का भी सुझाव दिया गया। लड़कियों के लिए यथा संभव पृथक विद्यालय स्थापित किए जाने का भी आयोग ने सुझाव प्रस्तुत किया।

त्रिभाषा सूत्रों पर आधारित पाठ्यक्रम इस प्रकार तैयार किए जाएं कि मातृभाषा तथा एक प्रादेशिक भाषा और एक विदेशी भाषा में शिक्षण किया जाय। मिडिल स्कूल स्तर पर कम से कम दो भाषाओं को पढ़ाया जाना भी सुझाव में कहा गया जिनमें से एक मातृ भाषा अथवा एक क्षेत्रीय भाषा अनिवार्य होना चाहिए। एक समन्वित तथा विकासशील पाठ्यक्रम आयोग ने प्रस्तावित किया। तद्नुसार पाठ्यपुस्तकों की रचना राज्य स्तर पर पाठ्यपुस्तक मण्डल बनाकर करायी जाय।

शिक्षा पद्धति पर विचार करते हुए आयोग ने शिक्षण विधि को मूल्य आधारित बनाने का प्रस्ताव किया। प्रोजेक्ट विधि पर जोर देकर आयोग ने शिक्षण को विद्यार्थी के परिश्रम से जोड़े जाने पर बल

दिया। शिक्षण में नैतिक शिक्षा अनुशासन जैसे महत्वपूर्ण विषय भी हर स्तर पर जोड़े जाने का सुझाव भी प्रस्तुत किया गया। छात्रोपयोगी शिक्षणोत्तर कार्यक्रम, निर्देशन स्वास्थ शिक्षा तथा चिकित्सा सम्बन्धी सामान्य विषय भी छात्रों के हित में पाठ्यक्रम में जोड़े गए। अध्यापक मात्र वेतन भोगी कर्मचारी न रहे अपितु वहं छात्रों का मार्गदर्शक हो जिससे छात्र समस्याएं सहज हल की जा सकें।

आयोग ने तकनीकी शिक्षा एवं व्यवसायिक शिक्षा के हित में शिक्षा प्रस्ताव भी प्रस्तुत किए किन्तु इसके साथ ही केन्द्र भी राज्य शिक्षा बजट का कुछ भाग अवश्य ही आर्थिक रूप से वहन करे।

आयोग ने शिक्षा के उद्देश्य, उसका लोकतांत्रिक स्वरूप और नागरिकता, अनुशासन और देश प्रेम, व्यवसायिक उपादेयता, व्यक्तित्व और नेतृत्व आदि का उल्लेख अपनी रिपोर्ट के तीसरे अध्याय में विस्तार से वर्णित किया है। चौथे अध्याय में शिक्षा और शिक्षण से सम्बन्धित शिक्षा–संगठन, माध्यमिक शिक्षा में शिक्षण की अवधि तथा हाई स्कूल और हायर सेकेण्ड्री स्कूलों के सम्बन्धों पर विस्तृत चर्चा की गई है। विद्यालयों को मान्यता देने के पूर्व विद्यालय की स्थिति की भली भांत्ति जांच होना आवश्यक है तथा उसके उपरान्त ही मान्यता प्रदान की जाय। मान्यता के लिए निम्नलिखित विशेष स्थितियां अवश्य जांची जाय–

1. विद्यालय में समुचित स्थान की व्यवस्था।
2. उपकरण और उपस्करण।
3. शिक्षकों की योग्यता।
4. वेतन और ग्रेड।
5. वित्तीय संरक्षण व्यवस्था चाहे उसे प्रबन्ध दे या राज्य सरकार रिपोर्ट के अध्याय 4 में तकनीकी शिक्षा और व्यवसायिक शिक्षा का भी प्राविधान किया गया है।

आयोग ने अपनी रिपोर्ट के छठवें अध्याय में पाठ्यक्रम के विषय में विशुद्ध चर्चा करते हुये यह इंगित किया है कि पाठ्यक्रम में विविधता और वर्गीकरण होना अनिवार्य है जिससे कि व्यक्तिगत विभिन्नता और उसे स्वीकार करने में विद्यार्थियों को सुविधा हो सके। ऐसे विषय पाठ्यक्रम के अर्न्तगत न रखे जायें जिनसे विद्यार्थियों को कोई लाभ न हो, और उनकी रूचि भी उसमें न हो। एक अन्य प्रस्ताव में आयोग ने पाठ्यक्रम की उपयोगिता सामाजिक स्वरूप से स्वीकार करते हुये उसे लोकोपयोगी बनाने की संस्तुति की है। आयोग ने

विद्यार्थियों को निरन्तर अर्थानुमुख कार्यों से सामाजिक कार्यों की ओर भी व्यवस्था देने का निर्देश दिया है ताकि विद्यार्थी जन समुदाय के साथ मिलकर जनसमग्याओं को समझ सकें और उनके साथ भागीदारी कर सकें। पाठ्यक्रम के विषय परस्पर सम्बन्धित होना चाहिए जिससे चयनित विषयों के अध्ययन करने में विविध विषयों का भी ज्ञान होता रहे।

आयोग ने हाईस्कूल और हायर सेकेन्डरी स्कूल के पाठ्यक्रम निर्धारित करने में अनेक संस्तुतियाँ की है जिनसे कि विद्यार्थियों को अध्ययन करने में अर्न्तसम्बन्धित सुविधा प्राप्त हो सके।

1. मातृ भाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा अथवा दोनों को मिला–जुला कर ऐसी भाषा को माध्यम बनाया जाय, जिससे पाठ्यक्रम के विषयों का अध्ययन किया जा सके।
2. इनके अतिरिक्त एक भाषा ऐसी भी होनी चाहिए, जिनका उल्लेख नीचे किया जा रहा है–

   अ) जिन क्षेत्रों की मातृ भाषा हिन्दी नहीं है उन क्षेत्रों में हिन्दी भाषा के रूप में अवश्य पढ़ायी जाय।

   ब) जिन क्षेत्रों में मिडिल स्कूल तक अंग्रेजी नही पढ़ायी जाती है उन विद्यार्थियों को सामान्य अंग्रेजी का ज्ञान कराया जाय।

   स) जिन विद्यार्थियों ने प्रारम्भिक शिक्षण संस्था में अंग्रेजी पढ़ी हैं, उन्हें अंग्रेजी भाषा और साहित्य का ज्ञान कराया जाय।

   द) हिन्दी के अतिरिक्त एक भारतीय भाषा को पाठ्यक्रम में रखा जाय।

   य) अंग्रेजी के अतिरिक्त एक आधुनिक विदेशी भाषा और अन्त में कोई शास्त्रीय भाषा (प्राचीन भाषा) पढ़ायी जाय।

   र) इनके अतिरिक्त सामाज विज्ञान का विषय केवल प्रथम दो वर्षों में पढ़ाया जाय। और उनके साथ सामान्य विज्ञान और गणित भी पढ़ाया जाय।

   ल) उपरोक्त विभिन्न विषयों के अतिरिक्त एक विषय छात्रकला सम्बन्धी भी होना चाहिए जिसमें कताई बुनाई अथवा काष्ठ कारी धातु कार्य, सिलाई, बागवानी अथवा अन्य इसी प्रकार के उपयोगी कार्य भी पाठ्यक्रम में सम्मिलित किये जा सकते हैं उपर्युक्त विषयों को वर्ग के अनुसार भी विभाजित किया जा सकता है।

माध्यमिक शिक्षा आयोग ने ऐसे 7 वर्गों की संस्तुति की है जिनमें से विद्यार्थी किसी एक वर्ग को चुनकर अध्ययन कर सकता है–

9. ***सामान्य सामाजिक विज्ञानः*** इसमें एक प्राचीन भाषा इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र व नागरिक शास्त्र, मनोविज्ञान, गणित, संगीत अथवा घरेलू विज्ञान का अध्ययन किया जा सकता है।

2. ***विज्ञान वर्गः*** इसमें भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, जीव शास्त्र, भूगोल, गणित और शरीर विज्ञान का अध्ययन किया जा सकता हे।

3. ***तकनीकी विषयः*** इसमें व्यवहारिक गणित और रेखा गणित आधारित यान्त्रिकी व्यवहारिक विज्ञान तथा विद्युत विज्ञान सम्बन्धी विषय पढ़ाये जाने की संस्तुति की गयी।

4. ***वाणिज्यिक क्षेत्रः*** इस क्षेत्र में व्यवहारिक वाणिज्य, अंकगणित, लेखा–जोखा, व्यवसायिक भूगोल, अर्थशास्त्र तथा श्रुत लेख–द्रुत लेख, टाइपिंग आदि की व्यवस्था की संस्तुति की गयी।

5. ***कृषि विज्ञानः*** इस क्षेत्र में सामान्य कृषि कार्य, पशु संरक्षण उद्यान विज्ञान और कृषि रसायन तथा वनस्पति सम्बन्धी शिक्षा देने की संस्तुति की गयी।

6. ***ललित कलाएंः*** इस क्षेत्र में डिजाइन कला का इतिहास, पेन्टिग, मॉडल बनाना, संगीत व नृत्य आदि विषय विशेष रूप से लड़कियों के लिए निर्धारित किये गये।

7. ***गृह विज्ञानः*** इस वर्ग में महिलाओं को गृह विज्ञान, गृह सज्जा, पाक विद्या आदि का भी अध्ययन किये जाने की संस्तुति की गयी।

आयोग ने विद्यालयों के प्रबन्ध के लिए प्रबन्धक समूहों में भी कुछ सुझाव प्रस्तावित किये हैं, जिनमें उन्हें इस बात से रोका गया है कि वे विद्यार्थियों के प्रवेश में अनावश्यक रूप से हस्त क्षेप न करें। प्रबन्ध समितियों पर नियन्त्रण करने के लिए आयोग ने संस्तुति की कि प्रत्येक प्रबन्ध समिति सन् 1860 के अधिनियम के अर्न्तगत पंजीकृत हो।

आयोग ने यह भी संस्तुति की कि प्रत्येक विद्यालय का निरीक्षण किया जाय और 10 वर्ष के अनुभव प्राप्त अध्यापकों में से अथवा प्रधानाध्यापकों से अथवा प्रशिक्षण महा विद्यालयों में एक अध्यापकों में से ही विद्यालयों के निरीक्षण के लिए व्यक्ति चुने जायं और उनकी आख्या के अनुसार विद्यालय कार्य करें अन्यथा सम्बन्धित व्यक्ति को दण्ड भी दिया जाय।

जहां तक कार्य करने की अवधि का सम्बन्ध है। प्रत्येक विद्यालय में 200 कार्य दिवस होना चाहिए और कम से कम 35 प्रति सप्ताह, 45 मिनट पीरियड के अनुपात से शिक्षण कार्य किया जाय।

विद्यालयों की वित्त व्यवस्था के लिए यदि आवश्यक हो तो औद्योगिक शिक्षा पर कर भी लगाया जा सकता है अथवा प्रबन्ध समितियाँ इस वित्तीय व्यवस्था को स्वयं करें अथवा राज्य शासन से अनुदान लेकर शिक्षा–संस्थाएं संचालित करें।

इस प्रकार मुदालियर आयोग ने माध्यमिक शिक्षा के विभिन्न पक्षों को वैज्ञानिक आधार पर विभाजित और वर्गीकृत करके जो संस्तुतियाँ की हैं। वे स्वतन्त्र भारत को नागरिकों के लिए महत्वपूर्ण है। सम्भवतः यह व्यवस्था आज भी शिक्षा के क्षेत्र में संचालित है।

कोठारी आयोग **1964-66**

भारत सरकार ने 1964 में जिस आयोग की स्थापना की उस आयोग के **अध्यक्ष डा0 डी0 एस0 कोठारी** के नाम से जाना जाता है। इस आयोग की स्थापना गांधी जयन्ती अर्थात् 2 अक्टूबर 1964 को की गयी थी। आयोग ने 29 जून 1966 को अपनी आख्या भारत सरकार को सौंप दी थी। इन दो वर्षों की अवधि में आयोग ने प्राइमरी शिक्षा से लेकर विश्व विद्यालयी शिक्षा तक समस्याओं का अध्ययन करके जो प्रतिवेदन भारत सरकार को सौंपा उसमें पहली प्रमुख बात यह थी कि शिक्षा राष्ट्रीय विकास में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। आयोग ने अपनी आख्या को भी "राष्ट्रीय विकास और शिक्षा" शीर्षक देकर प्रतिवेदन प्रस्तुत किया था।

आयोग ने बारह समितियों और सात कार्यकारी समूह बनाकर लगभग नौ हजार स्त्री पुरूषों का साक्षात्कार किया। ये सभी व्यक्ति शिक्षा विज्ञान उद्योग और अन्य क्षेत्रों के ऐसे व्यक्ति थे जो राष्ट्रीय भावना से प्रेरित और समाज के विकास में रूचि रखते थे। इस अध्ययन में लगभग दो हजार चार सौ स्मृति लेख बनाये गये और आयोग के सदस्यों ने विभिन्न विश्व विद्यालयों का सौ दिन तक अवलोकन किया, तदोपरान्त उनका यह प्रतिवेदन भारत सरकार को सौपा गया। भारत सरकार इन तथ्यों से अवगत होने पर अस्वस्थय थी कि शिक्षा ही राष्ट्रीय सम्पन्नता और अच्छे सामाजिक जीवन के लिए आवश्यक है। भारत सरकार ने राष्ट्रीय विकास और शिक्षा शीर्षक नामक इस प्रतिवेदन को स्वीकार कर लिया।

आयोग का गठन

अध्यक्ष—डा0 डी0 एस0 काठोरी

चेयन मैन—विश्व विद्यालय अनुदान आयोग नई दिल्ली।

सदस्य— 1. श्री एस0 आर0 डेबूड, माध्यमिक शिक्षा आयोग के पूर्व निदेशक नई दिल्ली।

2. श्री एच0 एल0 एलविन, शिक्षा संस्थान लन्दन विश्वविद्यालय।
3. श्री आर0 ए0 गोपालास्वामी, निदेशक मानव संसाधन नई दिल्ली।
4. प्रो0 सदातोषी इहारा, बसेडा विश्व विद्यालय टोकियो जापान।
5. डा0 बी0 एस0 झॉ, कामनवेल्थ शिक्षा विभाग लन्दन विश्व विद्यालय।
6. श्री पी0 एस0 कृपाल, सचिव भारत सरकार शिक्षा मंत्रालय नई दिल्ली।
7. श्री एम0 वी0 माथुर कुलपति, राजस्थान विश्व विद्यालय।
8. डा0 बी0 पी0 पाल सचिव, कृषि मंत्रालय भारत सरकार
9. कु0 एस0 पनन्गीकर, शिक्षा विभाग कर्नाटक विश्व विद्यालय धारवाड़।
10. प्रो0 रोजर रेवले, निदेशक जनस्वास्थ्य विभाग हार्बड विश्व विद्यालय कैम्ब्रिज यू0 एस0 ए0।
11. डा0 के0जी0 सैय्यदीन, निदेशक सलाहकार भारत सरकार।
12. डा0 टी0 सैन, कुलपति, जादवपुर विश्वविद्यालय कलकत्ता।
13. प्रो0 एस0 ए0 सूमोस्की, मास्को विश्वविद्यालय मास्को।
14. श्री जीन तोमस, शिक्षा निरीक्षक शिक्षा विभाग फ्रांस (पेरिस)।
15. श्री जे0 पी0 नायक सदस्य सचिव शिक्षा आयोग पूना।
16. श्री जे0 एफ0 मेक्डूगल, सहायक निदेशक उच्च शिक्षा, यूनेस्को पेरिस, सहायक सचिव।

आयोग को प्रदत्त संदर्भ

भारत सरकार ने इस आयोग को कतिपय संदर्भ बिन्दु इंगित किये थे, जिस पर इस आयोग की अपनी संस्तुतियाँ देना थी–

1. शिक्षा का राष्ट्रीय स्वरूप।

2. सम्पूर्ण शिक्षा के विकास में सामान्य सिद्धान्त और नीतियाँ।

3. चिकित्सा और विधि शिक्षा के क्षेत्र में सामान्य ज्ञान और जागरूकता (तीसरे बिन्दु पर चिकित्सा और विधि शिक्षा में नीतिगत विवेचन नहीं माना गया।)

प्रतिवेदन में समायोजित प्रमुख बिन्दुओं की विवेचना

कोठारी आयोग ने अपने प्रतिवेदन में शिक्षा का राष्ट्रीय उद्देश्य शिक्षा में क्रांति, जनवादी शिक्षा पद्धति, शिक्षा का मूल केन्द्र वैज्ञानिक शिक्षा, कार्यानुभव व्यवसायिकता, शिक्षा की सामाजिक और राष्ट्रीय उन्नति, विद्यालयों की व्यवस्था, सामाजिक नैतिक व आध्यात्मिक दायित्व, धर्मनिरपेक्षता, विज्ञान और अहिंसा का समन्वित स्वरूप आदि मुख्य बिन्दुओं पर प्रकाश डालते हुये जो प्रतिवेदन प्रस्तुत किया वह भारतीय शिक्षा प्रणाली का समन्वित स्वरूप था।

शिक्षा और राष्ट्रीय उद्देश्य की प्रतिपूर्ति में पहले ही अनुच्छेद में राष्ट्रीय विकास, उन्नति, जन कल्याण और सुरक्षा की भावना से विद्यालयों में ऐसे विद्यार्थियों का निर्माण करना था जो देश के राष्ट्रीय विकास में सहायक हो सकें।

शिक्षा की क्रांति विषयक संदर्भों में यह प्रस्तावित किया गया कि देश के आधुनिकीकरण और लोकतांत्रिक, समाजवादी जनमानस को विकसित करने के लिए शिक्षा में क्रांति की नितान्त आवश्यकता है। शिक्षण की प्रणालियाँ भी आधुनिक और वैज्ञानिक स्वरूपों में विकसित होना चाहिए तदनुरूप शिक्षकों का चयन और उनका व्यवसायिक प्रशिक्षण शिक्षा संगठन में किया जाय। इसके लिए निम्नलिखित 3 बिन्दु स्पष्ट किया गये–

1. राष्ट्रीय विकास में आन्तरिक स्वरूप को वर्तमान जीवन संदर्भों में परिवर्तित किया जाय।

2. उन्नति की दिशाएं गुणवत्ता के आधार पर विकसित की जाएं।

3. शिक्षा का प्रसार जन संसाधन की आवश्यकताओं के अनुरूप व्यापक बनाया जाय (1.017)।

4. शिक्षा और संस्कृति का मूल आधार विज्ञान केन्द्रित होना चाहिए और विद्यालयी शिक्षा में इसका स्वरूप केन्द्रीय और आन्तरिक प्रस्तावित किया गया। सामाजिक विज्ञान के साथ विज्ञान का अर्न्तसम्बन्ध भी स्थापित किया जाय, जिससे कि विज्ञान की शिक्षा सामाजिक रूप से उपादेय हो सके (1.23)।

5. सामाजिक और राष्ट्रीय समन्यवय में शिक्षा के दायित्व को महत्वपूर्ण बताते हुये आयोग का मत था जन शिक्षा के लिए एक सामान्य विद्यालय प्रणाली होना चाहिए और प्रत्येक स्तर पर सामाजिक और राष्ट्रीय सेवाओं में समन्यवय स्थापित हो । इसके साथ ही वर्तमान भारतीय भाषाओं का और विशेषकर हिन्दी भाषा को यथा शोघ्र कार्यालयों में चाहे वे प्रदेश स्तर जो हो अथवा केन्द्र स्तर के अनिवार्य रूप से व्यववहार में लाने योग्य बनाया जाय। राष्ट्रीय संचेतना को विकसित करने के लिए हर सम्भव प्रयास शिक्षा के माध्यम से किये जाय। (1.35)

6. सामाजिक, नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों के संदर्भ में वर्तमान सामाजिक मूल्यों का जो ह्रास हुआ है उससे उत्पन्न सामाजिक अव्यवस्था, आर्थिक दुरावस्था, नैतिक मूल्य और आध यात्मिक स्वरूपों का पुर्ननिर्माण करना आवश्यक है। जिससे भारत की सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित रखा जा सके, और नैतिक मूल्यों को विकसित किया जा सके, यह दायित्व शिक्षकों और विद्यार्थियों के परस्पर नैतिक मूल्यों पर ही आधारित हो सकता है। अतः आयोग सहमत है कि राष्ट्रीय और सामाजिक समन्यवय में नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों को विकास किया जाय। गांधी जी की शिक्षा व्यवस्था में नैतिक मूल्यों और समाज की आध्यात्मिक रचना का विशेष महत्व था, जिसे वर्तमान संदर्भों में शिक्षा के गहनतम अध ययन और सांस्कृतिक साहित्य के अध्ययन से पूरा किया जा सकता है।

7. पंथ निरपेक्षता और धर्म के विषय में यह ज्ञातव्य है कि भारत एक बहु धर्म अनुयायियों का देश है और इसमें दो प्रकार की धाराएं विचारणीय हैं प्रदेश के विद्यालयों में धर्म के सिद्धान्त नहीं सिखाए जाना चाहिए किन्तु इस देश के समाज में अनेक धर्म, सम्प्रदाय और धर्म व्याप्त हैं केवल भारत में ही चार धर्मों को जन्म दिया है वैदिक धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म और सिक्ख धर्म इस्लाम और ईसाई मत विदेशों से भारत आये पारसी धर्म अनुयायी जो कभी फारस और ईरान में थे अब विश्व भर में कहीं न होकर केवल भारत में है देश के ऐसे समाज में–

1. धार्मिक शिक्षा
2. धर्म के विषय में शिक्षा, दो ऐसे बिन्दु हैं जिनको प्रथक–प्रथक कर अध्ययन करना विद्यालयों में आवश्यक है। धार्मिक शिक्षा का अर्थ बच्चों को धर्म सिद्धान्तों के विषय में ज्ञात कराना है। जबकि धर्मों के विषय में शिक्षा देना उनके बौद्धिक ज्ञान का विकास करना है। पहले मत से कट्टर पंथी धर्मानुयायी जन्म लेते हैं जबकि दूसरे से ज्ञानी। अतः विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा न देकर धर्म के विषय में ज्ञान कराना उनको अच्छी नागरिकता प्रदान कराने के समान है जो धर्म मतों को खुले रूप से समझ सकें।

आयोग ने अपने अध्ययन में इसका स्पष्ट उल्लेख किया है कि विज्ञान से उत्पन्न औद्योगिक क्रान्ति समाज की अनेकानेक आवश्यकताओं को पूरा किया है।

जबकि इसी वैज्ञानिक विकास में मनुष्य को भावना शून्य कर औद्योगिक क्रान्ति उत्पन्न की है। हम कभी भी ऐसे समाज की कल्पना नहीं कर सकते जो मात्र उद्योग केन्द्रित हो, इसके विपरीत हमें ऐसे समाज की संरचना करना आवश्यक है जिसके विपरीत हम मानवीय भावनाओं का आदर कर सकें, जो सत्य, अहिंसा और प्रेम पर आधारित हों। अहिंसा भारतीय संगठन का मूलाधार है। अतः विज्ञान के साथ अहिंसा का समन्यवय भारतीय के अनुरूप ही है।

आयोग की माध्यमिक शिक्षा विषयक प्रमुख संस्तुतियाँ

माध्यमिक शिक्षा आयोग ने अपने समस्त अध्ययन के उपरान्त जो संस्तुतियाँ की उससे माध्यमिक शिक्षा में आमूल परिवर्तन की दिशाएं भी निष्पादित होती है। प्रमुख संस्तुतियों का उल्लेख निम्नवत् किया गया है–

1. वैज्ञानिक शिक्षा माध्यमिक शिक्षा का मूलाधार और केन्द्र बिन्दु होना चाहिए।
2. कार्यानुभव की दृष्टि से विद्यालयों में इसे प्रमुखता मिलना चाहिए भले ही सामान्य शिक्षा की बात है अथवा व्यवसायिक शिक्षा की।
3. व्यवसायिक शिक्षा के स्वरूप को निर्धारित करते हुए उत्पादन से व्यवसाय को जोड़ने का एक कार्यक्रम इस प्रकार बनाया जाय कि माध्यमिक शिक्षा व्यवसाय केन्द्रित हो, जिसमें माध्यमिक स्तर पर कृषि और स्नातक स्तर पर तकनीकी शिक्षा विश्व विद्यालय में प्रदान की जाय।

4. सामान्य विद्यालय प्रणाली में लोकतांत्रिक विधि पर शिक्षा प्रदान की जाय और सभी स्कूल सामान्य स्तर पर बराबर समझे जायं।

5. प्रत्येक स्तर पर सामाजिक और राष्ट्रीय सेवा सभी प्रकार के विद्यालयों में लागू की जाय।

6. शिक्षा के सामान्य कार्यक्रम से एक दस वर्ष की शिक्षा योजना इस प्रकार बनायी जाय कि पहले सात–आठ वर्ष प्राथमिक स्तर पर हों और शेष दो–तीन वर्ष पूर्व माध्यमिक शिक्षा में व्यतीत किये जाये।

7. शिक्षा का विशेष विषय शिक्षा प्रणाली में 11वीं और 12वीं कक्षा में विशेष विषय का ज्ञान कराया जाय, जिसका प्रारम्भ 11वीं कक्षा के पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाय।

8. माध्यमिक शिक्षा स्तर पर दो वर्ष का पाठ्यक्रम विशेष रूप से स्कूलों में चलाया जाय, जिससे आने वाले बीस वर्षों में अर्थात् 1965 से 1985 तक इस प्रकार पूरा किया जाय कि शिक्षा का उद्देश्य पूरा किया जा सके।

9. विद्यालयों में अध्यापन का समय जो वर्तमान में 200 कार्य दिवसों का है उसे माध्यमिक स्तर पर 234 दिन अथवा 39 सप्ताह और विश्व विद्यालय स्तर पर प्राथमिक स्तर पर 216 कार्य दिवस अर्थात् 36 सप्ताह तक किया जाना उचित होगा।

10. इसी संदर्भ में विद्यालय अवकाश कम किये जायं। यह भी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती कि महापुरूषों के जन्म और निर्माण दिवसों पर विद्यालय बन्द रखे जाय, इन दिनों में राष्ट्रीय विकास की दृष्टि से अध्यापन और अध्ययन होना चाहिए।

11. विद्यालयों मे कार्य–समय बढ़ाने की क्षमता एक अध्यापन वर्ष में कम से कम 1000 घण्टे होने चाहिए, जिसे बढ़कर 1100 अथवा 1200 घण्टे किये जाने चाहिए।

12. विद्यालयों में अध्ययन के संसाधन अधिक से अधिक प्रयोग में लाये जायें। पुस्तकालय, प्रयोगशालाएं, कार्यशालाएं और दस्तकारी के उपकरण विद्यार्थियों के लिए पूरे वर्ष उपलब्ध ा हो और एक दिन में कम से कम उनका उपयोग 8 घण्टों तक किया जा सके।

13. स्नातक स्तर के विद्यालय अथवा उच्च माध्यमिक विद्यालय आस–पास के अनेक विद्यालयों से सम्बन्धित होना चाहिए, जिससे कि उच्च वर्ग के विद्यालय अपने सम्पर्क विद्यालयों में निर्देशन और मार्ग दर्शन कर सकने के लिए उपयोगी हो।

14. प्रत्येक विद्यालय में एक बुक–बैंक होना चाहिए, जिसका उपयोग माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी सफलता से कर सकें।

15. विद्यार्थियों को प्रोत्साहन देने के लिए समाज सेवी संस्थाएं अथवा सामाजिक संगठन, पुस्तक और लेखन सामग्री आदि का क्रय करने के लिए वजीफा भी प्रदान करते रहें, जिससे विद्यार्थियों की आवश्यकताओं की पूर्ति भी होती रहे। इसका मुख्य उद्देश्य बच्चों को प्रत्येक स्थिति में अध्ययन की ओर रूचि रखना है। प्रथम 15 प्रतिशत बच्चे इस कार्य के लिए चुन लिए जाएं और इन बच्चों को गरीबी के कारण शिक्षा से दूर न रहना पड़े।

16. मेघावी छात्रों को चुनना भी विद्यालयों में एक निरन्तर प्रक्रिया होना चाहिए जो परीक्षा के द्वारा सम्पन्न की जा सकती है। 7वीं और 8वीं कक्षा में तथा 10वीं कक्षा में ऐसा निर्वाचन किया जा सकता है और उन्हें आर्थिक सहायता पहुंचायी जा सकती है।

17. विद्यालयों में निवास की सुविधाएं भी यथा सम्भव उपलब्ध करायी जाएं, जिससे बच्चों में समाजगत भावना विकसित हों। नगर के 10 प्रतिशत विद्यालय इस कार्य के लिए भी चुने जाएं। वर्तमान में सरकार ने प्रयोग स्वरूप नवोदय विद्यालय योजना प्रारम्भ की हैं। जो ग्रामीण परिवेश में चलायी जा रही है। इस योजना के अर्न्तगत छात्रों–अध्यापकों और प्रध ाानाचार्य को एक ही परिसर में रहना अनिवार्य है।

18. जिन विद्यार्थियों को घरों में अध्ययन की सुविधा उपलब्ध नहीं हो पाती है उनके लिए उसी क्षेत्र में अध्ययन केन्द्र स्थापित किये जाने चाहिए ताकि वे अध्ययन की सुविधाओं से वंचित न रहें। ऐसे केन्द्रों पर वे सभी उपकरण यथा सम्भव उपलब्ध होने चाहिए जो विद्यालय में सामान्यतः उपलब्ध होते हैं।

19. अध्ययन के समय विद्यार्थी कुछ कमा भी सकें ऐसी योजना विद्यालयों में बनायी जाय ताकि कोई भी विद्यार्थी शिक्षा का अभाव अनुभव न कर सकें। इस प्रकार का प्रयोग जापान में हुआ है। और भाग्य से जापान के मूर्धन्य विद्वान प्रो0 'सदातोषी इहारा' इस आयोग के वरिष्ठ सदस्यों में से एक थे।

20. पिछड़े वर्ग की शिक्षा के लिए जिनमें जन जातियाँ भी सम्मिलित हैं। समानता के आधार पर राष्ट्रीय समन्यवय की शिक्षा दी जाना उचित है और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कोई भी व्यय किया जा सकता है।

21. प्रत्येक जिले में इसी प्रकार की एक विकास वादी योजना माध्यमिक विद्यालयों में बनायी जानी चाहिए।

22. प्रत्येक माध्यमिक विद्यालयों में विद्यार्थियों की संख्या 350 से 460 तक प्रवेश के लिए निर्धारित हो, ताकि प्रत्येक विद्यार्थी उपकरणों का उपयोग कर सकें।

23. नैतिक और धार्मिक शिक्षा को भी सामाजिक संचेतना के लिए किया जाना मानवीय मूल्यों के विकास के लिए आवश्यक है।

24. छात्रों की योग्यता का मूल्यांकन करना भी आवश्यक है ताकि विद्यार्थी लिखित व मौखिक परीक्षा में प्रतिस्पर्धा के आधर पर अध्ययन करें।

25. प्रत्येक प्रदेश और केन्द्र में ऐसे शिक्षा बोर्ड स्थापित हों जो प्रदेश और राष्ट्रीय स्तर पर विद्यार्थियों का मूल्यांकन कर सकें।

26. आयोग ने ये भी संस्तुति की कि अध्यापकों के लिए भारत सरकार एक ऐसी वेतन योजना बनाए जिससे सरकारी और गैर सरकारी विद्यालयों के अध्यापकों को समाान वेतन प्राप्त हो सके, फिर चाहे वह प्रबन्ध समितियों द्वारा अथवा राज्य सरकारों द्वारा नियोजित हों।

27. प्राथमिक, माध्यमिक और स्नातक स्तर के अध्यापकों के वेतन में 1, 2 व 3 का अनुपात होना चाहिए। अध्यापकों की सामान्य सेवा निवृत्ति 60 वर्ष की अवस्था पर होना चाहिए और अधिक से अधिक उनको 5 वर्ष की अवधि और बढ़ाये जाने का प्रावधान रखा जाय।

28. भारत सरकार को ऐसा प्राविधान भी करना चाहिए कि अध्यापकों की सेवाएं भारतीय शिक्षा सेवा के अर्न्तगत की जायं।

29. शिक्षा अधिनियम प्रत्येक प्रदेश में और केन्द्र शासित प्रदेशों में बनाये जाय, जिससे कि अध यापकों की सेवा सुरक्षा की गारन्टी की जा सके।

30. शिक्षा के ऊपर किया जाने वाला व्यय राष्ट्रीय नीति के अर्न्तगत वर्ष 1965–66 में 2. 9प्रतिशत है तो उसे 1985–86 में 6 प्रतिशत होना चाहिए।

31. आयोग ने प्रत्येक कक्षा के लिए माध्यमिक स्तर तक विद्यार्थियों की संख्या निर्धारित की हैं। प्राथमिक स्तर पर यह 50, मिडिल स्कूल में 45, उच्च माध्यमिक में 40 विद्यार्थी होने चाहिए, जबकि इसके विपरीत यह संख्या वर्तमान समय में 60 और 60 से अधिक हैं। अध यापकों के लिए आयोग ने कुछ मानक निर्धारित किये हैं। जिसमें उन्हें अनुसन्धान करने

की स्वतन्त्रता और अपना वैयक्तिक विकास करने की स्वतन्त्रता मिलना चाहिए। यह सुविधा इसलिए भी आवश्यक है कि अध्यापकों का ज्ञान बढ़ने से विद्यार्थियों की बौद्धिक क्षमता का विकास भी हो सकता है।

32. अध्यापकों को अपनी शिक्षा योग्यता बढ़ाने की भी स्वतंत्रता मिलना चाहिए ताकि वे अपनी योग्यताओं को अर्जिण्ट का उच्च कक्षाओं को पढ़ाने के लिए अर्द्ध हो सकें। वर्तमान में 2: शिक्षकों के यह सुविधा प्रदान की गयी हो जो नितान्त असंगत प्रतीत होती है।

33. भारत सरकार का यह दायित्व है कि वह अध्यापकों के लिए एक वेतनमान निश्चित करें और उस वेतनमान के सम्बन्ध में आयोग ने निम्न सुझाव प्रस्तुत किये है।–

– इण्टरमीडिएट उत्तीर्ण प्रशिक्षित अध्यापकों के लिए कम से कम 150 रूपये और अधिक से अधिक 250 रूपये होगें जो 20 वर्षों में पूरे किये जायेगे। इसी में से 15 प्रतिशत अध यापकों के लिए 250 से 300 रूपये तक का चयन वेतनमान दिया जा सकता है।

– स्नातक स्तर के प्रशिक्षित अध्यापकों के लिए 220 से 400 रूपये तक वेतनमान होने चाहिए जो 20 वर्षों में पूरा हो और उसमें भी चयन वेतनमान की प्रक्रिया 15 प्रतिशत है, जिसका वेतनमान 300 से 500 रूपये तक होगा।

– अप्रशिक्षत स्नातकों को जो केवल 220 रूपये प्रतिमाह दिया जा सकता है।

– परास्नातक अध्यापकों को 300 से 600 रूपये तक का वेतनमान दिया जाय और यदि वे प्रशिक्षित हों तो उन्हें एक वेतन वृद्धि भी दी जाय।

– प्रधानाध्यापक के लिए वही वेतनमान दिया जाय जो महा विद्यालयों के अध्यापकों को दिया जाता है। महाविद्यालयों के अध्यापकों को प्रवक्ता जूनियर वेतनमान में 300–25–600–400–30–640–40–800।

– सीनियर प्रवक्ता अथवा रीडर के लिए 740–1100।

– प्रधानाचार्य के लिए

1. 740–1100
2. 850–1500
3. 1000–50–1500 दिया जाय।

– विश्व विद्यालयों के अध्यापकों के लिए 500–40–800–50–950।

– रीडर–700–50–1250

– प्रोफेसर–1000–50–1500–60–1600 दिया जाय।

इन वेतनमानों की संस्तुतियाँ आयोग में वर्ष 65–66 की मूल्य सूची के आधार पर की हैं। वर्तमान में नये वेतनमान प्राप्त होने से अध्यापकों की आर्थिक अवस्था अच्छी हो गयी है।

कोठारी आयोग द्वारा की गई संस्तुतियों को क्रियान्वयन कराने में माध्यमिक शिक्षक वर्ग को आन्दोलन रत भी होना पड़ा है क्योंकि प्राइवेट प्रबन्धक अपने हाथ से सत्ता नहीं खोना चाहते थे और शिक्षा तथा शिक्षकों की स्थिति निरन्तर खराब हो रही थी। दूसरी ओर उत्तर प्रदेश सरकार ने 1958 में अपने अधिनियम का संशोधन कर धारा 16 के अन्तर्गत प्रबन्ध तन्त्र के अधिकार सीमित कर दिये थे और अध्यापकों की चयन प्रक्रिया कठोर कर दिये जाने के कारण जहाँ शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार हो रहा था वहीं आर्थिक असमानता शिक्षक को अपने अधिकार के प्रति जागरूक बना रही थी। शिक्षा अधिनियम में सुधार होने के कारण कोठारी आयोग की अधिकांश संस्तुतियाँ उसमें समाहित थीं।

यह व्यवस्था थी कि अध्यापक आन्दोलन रत होकर इस सीमा तक जाएं कि जेल भरने की नौबत आ जाय। सरकार ने तब आयोग की संस्तुतियों में शिक्षक के वेतनमान को संशोधित रूप में तत्कालीन प्रदेय में कुछ बढ़ा कर नये वेतनमान निर्धारित किया, किन्तु वह भी अपेक्षाओं के अनुरूप पर्याप्त नहीं था। 1958 में संशोधित अधिनियम 1959 में लागू किया गया, तथापि 1968 के आन्दोलन के प्रभाव से आज तक वही चयन प्रक्रिया अध्यापकों के सम्बन्ध में प्रचलित है किन्तु 1982 में शिक्षक निर्वाचन आयोग के गठन के कारण अब निर्वाचन की पारदर्शिता प्रतीत होती है। जनवरी 1986 से नये वेतनमान लागू होने से शिक्षक की आर्थिक अवस्था भी समुचित हो गयी है।

आयोगों द्वारा प्रतिपादित शिक्षा नीतियों का क्रियान्वयन

प्रस्तुत शोध में स्वतन्त्रता के उपरान्त आमूल–चूल परिवर्तन की क्रियान्वित हेतु एक सशक्त प्रबन्धा व्यवस्था की आवश्यकता महसूस की गई। अन्यथा शिक्षा में परिवर्तन की बात कोरा आदर्श होगी और यह वैचारिक स्तर तक ही सीमित रह जायेगी। अतः उच्च शिक्षा की व्यवस्था हेतु डा0 सर्वपल्ली राधा कृष्णन की अध्यक्षता में सन् 1948 में विश्व विद्यालय शिक्षा आयोग का गठन किया गया।

विश्व विद्यालय स्तर पर

प्रस्तुत अध्याय में विश्वविद्यालय आयोग की संस्तुतियों/नीतियों का विवेचन किया गया है। यहाँ पर वर्णित विभिन्न आयोगों की संस्तुतियों के क्रियान्वन पर प्रकाश डाला जायेगा –

1. वर्तमान शिक्षा स्तर में सुझायी गयी संस्तुतियों को अक्षरशः तो लागू नहीं किया गया फिर भी उनका क्रियान्वयन ज्ञान के विकास के साथ–साथ जीवन को जीने की योग्यता व कला को विकसित कर रहा है जो विश्वविद्यालय आयोग का मुख्य उद्देश्य रहा है।
2. अध्यापकों का उन्नयन, अध्ययन का स्तर, अध्ययन पाठ्यक्रम, परास्नातक प्रशिक्षण और अनुसन्धान आदि के क्षेत्र में विश्वविद्यालय आयोग द्वारा जो शिक्षा नीतियाँ बनाई गयीं उनका क्रियान्वयन पूर्णतः तो नहीं किया जा रहा है जैसे आज भी शोध छात्रों को अध्ययन की पर्याप्त सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं। शिक्षकों का स्तर दिन प्रतिदिन गिरता जा रहा है। अतः छात्रों का स्तर आधुनिकीकरण का रूप ले रहा है। यदि आयोग की संस्तुतियों को सरकार लागू करने का प्रयास करती तो अन्ततः शैक्षिक जगत की परेशानियों को हल किया जा सकता था।
3. उच्च शिक्षा के स्तर पर विश्वविद्यालयों के अध्यापकों को अपनी कार्यक्षमता बढ़ाने पर बल एवं अध्यापक को चिन्तनशील एवं मनोयोगी होना चाहिए। वर्तमान में शिक्षक अपने स्तर पर भूलता जा रहा है।
4. उच्च शिक्षा के क्षेत्र में संस्तुतियों के क्रियान्वयन के परिप्रेक्ष्य में धार्मिक शिक्षा, शिक्षण की प्रणाली, परीक्षा व्यवस्था में सुधार, विद्यार्थी कल्याण योजना, शारीरिक शिक्षा, स्त्री शिक्षा एवं विश्वविद्यालयी शिक्षा को संविधान की संवर्ती सूची में रखे जाने पर जोर दिया गया। आज की मांग के अनुसार विश्व विद्यालय आयोग ने उक्त नीतियों को लागू किये जाने की संस्तुति की थी, परन्तु उनका क्रियान्वयन कुछ सीमा तक ही प्रदेश में लागू किया गया जैसे अध्यापकों में प्रोफेसर, रीडर, लेक्चरर के वेतनमानों को समय व प्रदेश की आर्थिक स्थिति को देखते हुए क्रियान्वित किया गया है।
5. विश्व विद्यालय आयोग ने स्नातक और परास्नातक स्तर पर कृषि की शिक्षा देने पर बल दिया परन्तु प्रदेशीय स्तर पर आज भी प्रत्येक विश्वविद्यालय में कृषि शिक्षा की कक्षाएं एवं संसाधन मुहैय्या नहीं हुये हैं।

इस प्रकार विश्वविद्यालय आयोग 1948 – 49 ने जो स्नातक एवं परास्नातक स्तर पर जो शिक्षा संस्तुतियाँ प्रस्तुत कीं उनको प्रदेश की आर्थिक स्थिति को देखते हुए क्रियान्वित तो किया गया, परन्तु आवश्यकतानुसार नहीं।

माध्यमिक स्तर पर

शिक्षा के माध्यमिक स्तर को अधिक प्रभावशाली व महत्वपूर्ण बनाने के लिए माध्यमिक शिक्षा आयोग द्वारा विभिन्न संस्तुतियाँ दी गईं तथा उन संस्तुतियों का क्रियान्वयन राष्ट्रीय शिक्षा नीति के सापेक्ष किया जाना समीचीन प्रतीत होता है, जो अग्रांकित है–

1. माध्यमिक शिक्षा आयोग 1952 – 53 ने हाईस्कूल व हायर सेकेन्डरी स्कूल के पाठ्यक्रम निर्धारण हेतु पाठ्यक्रम मातृभाषा के अतिरिक्त एक अन्य भाषा (हिन्दी) अवश्य पढ़ायी जाय तथा मिडिल स्कूल तक बच्चों को अंग्रेजी के ज्ञान पर बल दिया।

   परन्तु नयी शिक्षा नीति के द्वारा प्रतिपादित नीतियों का क्रियान्वयन हेतु प्रत्येक 5 वर्षों में Review किया जाय। राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर समस्त दृष्टिकोण से विचार प्रस्तुत करती है।

2. आयोग ने अपनी संस्तुतियों में सात वर्गों का वर्णन किया है जिसमें विद्यार्थी को किसी एक वर्ग का चयन कर अपना भविष्य उज्जवल बनाने हेतु अथक परिश्रम करना होगा तभी क्रियान्वयन सुदृढ़ माना जायेगा।

3. माध्यमिक स्तर पर आयोग ने माध्यमिक शिक्षा के विभिन्न पक्षों को वैज्ञानिक आधार पर विभाजित और उन्हें वर्गीकृत किये जाने की संस्तुतियाँ भी की हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने उपरोक्त सभी बिन्दुओं को चर्चा का विषय बनाया है तथा इनके क्रियान्वयन हेतु प्रदेशीय स्तर से लेकर जिला स्तर व ग्राम स्तर पर इनके क्रियान्वयन का प्रयास किया है।

शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर

कोठारी आयोग 1964 – 66 ने सम्पूर्ण भारत में शिक्षा के अभिनवीकरण हेतु शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर अपनी विभिन्न संस्तुतियाँ प्रस्तुत की। इन संस्तुतियों में शिक्षा के स्तरों में सुधार हेतु ही 1968 में स्वतन्त्रता के बाद एक राष्ट्रीय शिक्षा नीति गठन करने की आवश्यकता महसूस हुयी तदुपरान्त 1979 में पुनः राष्ट्रीय स्तर पर नीति गठित की गयी तदुपरान्त राष्ट्रीय

शिक्षा नीति 1986 का गठन किया गया। जो शिक्षा जगत के बहुमुखी विकास हेतु सक्षम एवं सुदृढ़ प्रतीत हुयी।

प्रस्तुत शोध में शिक्षा के विभिन्न स्तरों में कोठारी आयोग जिसमें उच्च, माध्यमिक, प्राथमिक स्तर पर अपने विचार व्यक्त किये एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के बिन्दुओं से तारतम्यता बनायी।

कोठारी आयोग ने वैज्ञानिक शिक्षा के माध्यमिक शिक्षा का मूलाधार व केन्द्र बिन्दु बताया ताकि बच्चे में आत्म निर्भरता बढ़े।

आयोग ने कहा कि लोक तान्त्रिक विधि पर शिक्षा दी जाय। शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर सामाजिक और राष्ट्रीय सेवा को सभी प्रकार के विद्यालयों में लागू किये जाने पर बल दिया। जिसका क्रियान्वयन वर्तमान में लागू किया जा रहा है। परन्तु स्वतन्त्रता के पांच दशक व्यतीत होने के उपरान्त भी उपर्युक्त संस्तुतियों का क्रियान्वयन नहीं किया जा रहा है। जिसके फलस्वरूप शैक्षिक स्तर अचर प्रतीत हो रहा है।

पंचम अध्याय

राष्ट्रीय शिक्षा नीति तथा आयोगों में प्रतिपादित शिक्षा नीतियों की तुलना एवं विभिन्न शिक्षा अधिनियम

(उ०प्र० के विशेष सन्दर्भ में)

उच्च शिक्षा सम्बन्धी

भारत में उच्च शिक्षा का प्रारम्भ लंदन वि0 वि0 की भाँति 1858 में प्रेसीडेन्सी कालेज खोलकर किया गया था। उत्तर प्रदेश में महाविद्यालयों की स्थापना की गई थी जो तत्कालीन कलकत्ता विश्वविद्यालय से सम्बद्ध थे। शासकीय महाविद्यालयों की स्थापना तो बहुत बाद में की गई किन्तु उसके पूर्व 19वीं शताब्दी अनेक ख्याति प्राप्त अशासकीय महाविद्यालय खोले गए। शासकीय महाविद्यालयों में श्रीनगर, उत्तरकाशी, गोवेश्वर, टेहरी, पौढ़ी, पिथौरागढ़, अल्मोड़ा आदि गढ़वाल और कुमाऊं विश्व विद्यालयों से सम्बद्ध हैं। रजा महाविद्यालय रामपुर, के0 एन0 डिग्री कालेज ज्ञानपुर और डी0 बी0 एस0 महाविद्यालय नैनीताल 1951 में सरकार ने अपने नियंत्रण में ले लिए।

इससे पूर्व वर्ष 1791 में राजकीय संस्कृत कालेज वाराणसी की स्थापना जोनाथन, डंकन जो वनारस स्टेट का रेजीडेन्ट था, द्वारा की गई थी। 1958 में इसे डा0 सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्व विद्यालय का नाम दिया गया।

आगरा के पं0 गंगाधर शास्त्री अपनी समस्त जायदाद लगाकर आगरा कालेज की स्थापना 1823 में की थी जिसका प्रबन्ध तंत्र एक ट्रस्ट बनाकर 1882 में सौपा गया। बरेली कालेज बरेली 1850 में स्थापित किया गया जो 1876–77 में बन्द कर दिया गया। 1884 में इसे पुनः स्थापित किया गया जिसका प्रशासन रोहिलखण्ड के आयुक्त द्वारा किया जाता था। कैनिग कालेज लखनऊ की स्थापना 1869 में अवध के तालुकेदारों द्वारा की गई थी ओर 1920 में यही लखनऊ विश्वविद्यालय बना। म्योर सेन्ट्रल कालेज इलाहाबाद 1872 में स्थापित किया गया जो 1887 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय बना। आगरा विश्व विद्यालय की स्थापना 1927 में हुई। यह एक सम्बद्ध वि0 वि0 था जिसका कार्य क्षेत्र परीक्षाओं तक सीमित था किन्तु इसका भौतिक क्षेत्र उ0 प्र0, म0 प्र0, बिहार, नेपाल आदि राज्यों तक प्रसारित था।

नए वि0 वि0 में 1–12–73 को गढ़वाल, कुमाऊं वि0 वि0 की स्थापना श्रीनगर और नैनीताल में की गई। अवध वि0 वि0 फैजाबाद बुन्देल वि0 वि0 झांसी और रूहेलखण्ड वि0 वि0 बरेली में 1975 में स्थापित किए गये। कानपुर वि0 वि0 और मेरठ वि0 वि0 आगरा वि0 वि0 के ही महाविद्यालय से 1967 में स्थापित कर दिए गए थे। जिनके केन्द्र कानपुर और मेरठ ही थे और इन्हें अब श्री शाहू जी महाराज कानपुर वि0 वि0 एवं चौधरी चरण सिंह मेरठ वि0

वि0 के नाम से जाना जाता है। इनके अतिरिक्त चन्द्रशेखर आजाद कृषि वि0 वि0 कानपुर और नरेन्द्र देव कृषि वि0 वि0 फैजाबाद में स्थापित किए गए।

सन् 1973 में यू0पी0 यूनीवर्सिटी एक्ट के द्वारा सभी वि0 वि0 को एक अधिनियम के अन्तर्गत रखकर शिक्षकों की नियुक्ति, सेवाशर्तें तथा नए वेतनमान को एक रूपता प्रदान की गई है।

स्वतंत्रता के पूर्व उत्तर प्रदेश में मात्र पांच वि0वि0 थे किन्तु 1998–99 में 21 वि0वि0 और 636 महाविद्यालयों द्वारा उच्च शिक्षा प्रदान की जा रही है जिनमें एक इंजीनियरिंग और तीन कृषि वि0वि0 महाविद्यालयों में भी 521 अराजकीय और 115 राजकीय महाविद्यालय हैं। राज0 महाविद्यालय में पर्वतीय क्षेत्र में 34 तथा मैदानी क्षेत्र में 81 महाविद्यालय हैं। तथा समस्त रूप से महिला महावि0 की सं0 उ0प्र0 में 143 है और इन सभी महावि0 में लगभग 12 लाख विद्यार्थी अध्ययनरत हैं।

1999 *तक की उपलब्धियाँ*

1. परीक्षाओं की विश्वसनीयता बनाने हेतु सार्वजनिक परीक्षा अधिनियम 1998 अनुचित साधन रोकने हेतु लागू किया गया।
2. अध्ययन सुचारू बनाने हेतु 75 प्रतिशत उपस्थिति अनिवार्य ।
3. प्राइवेट ट्यूशन पर प्रतिबन्ध।
4. वि0वि0 में शिक्षणोत्तर कर्मचारियों के 2283 पद सृजित, महावि0 शिक्षकों के 350 व कर्मचारियों के 305 अतिरिक्त पद सृजित।
5. राजकीय महावि0 में कम्प्यूटर शिक्षा के लिए 2 करोड़ राशि स्वीकृत।

उच्च शिक्षा में अभिवृद्धि

1. 310 महावि0 को स्थायी मान्यता प्रदान की गई।
2. 203 महावि0 को निर्वाध मान्यता प्रदान की गई।
3. इलाहाबाद में राजर्षि पुरूषोत्तम दास टण्डन एवं गौतम बुद्ध नगर में एक वि0वि0 की स्थापना प्रस्तावित है।

व्यवसायोन्मुख पाठ्यक्रम

1. 168 महाविo/ संस्थाओं में एमo बीo एo/एमo सीo एo/ बीo सीo एo की अनुमति प्रदान की गई।
2. छात्र हित में फ्री/पेड/एनo आरoवाईo सुविधा।

कल्याण योजना

1. शिक्षकों का विनियमितिकरण, स्वैच्छिक सेवानिवृति पारस्परिक स्थानान्तरण सुविधा, सेमिनार, संगोष्ठी खेल प्रति योगिताओं के लिए अनुदान, मैडीक्लेम सामूहिक दुर्घटना बीमा योजना और परीक्षा पारिश्रमिक दरों के बढ़ाने आदि की सुविधा प्रदान की गई है।
2. अभिभावक की आय सीमा 50,000 से बढ़ाकर 75,000 तक छात्रवृति को सुविधा प्रदान करना।
3. प्रत्येक विoविo में शीर्ष के पाँच छात्रों की 3000/– वार्षिक छात्रवृति प्रदान करना।
4. खेलकूद क्षेत्र में राष्ट्रीय/अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धाओं में रू0 5000/– की सहायता।
5. इण्टरमीडिएट में 100, सीo बीo एसo सीo में 25 तथा आईo सीo एसo सीo में 25 मेघावी छात्रों को 2400/– वार्षिक छात्रवृति।
6. विo विo तथा महाविद्यालय के शिक्षकों को 1.1.1996 से नए वेतनमान स्वीकृत किए गए।

उoप्रo उच्च शिक्षा एक दृष्टि में

1. कुल विश्वविद्यालय – 21
   - अ) केन्द्रीय विoविo – 3
   - ब) इंजीनियरिंग विoविo – 1
   - स) कृषि विoविo – 3
   - द) सामान्य शिक्षा विविo – 14
2. डीम्ड विoविo 5
3. राजo/अराजकीय महाविo 636
4. महिला महाविo 143
5. राजकीय महाविo 115

6. उत्तराखण्ड महावि0 (राज0) 34

7. मैदानी महावि0 (राज0) 81

8. अराजकीय महावि0 521

9. अनुदान सूचीपर अराज महावि0 356

10. उच्च शिक्षा में छात्र/छात्राएं 11.74 लाख

11. अध्यापकों की सं0 (क्रम 9 को छोड़कर) 20.730

उ0प्र0 में वि0वि0 एवं महाविद्यालयों की संख्या का विकास क्रम

	वि0वि0	महाविद्यालय
1947 के पूर्व	5	16
1948—1961	9	128
1961—1974	13	304
1974—1985	19	401
1985—1992	21	414
1992—1997	21	619
1997 से 2000	21	639

प्रावैदिक शिक्षा

स्नातक/स्नातकोत्तर स्तरीय संस्थाएँ ***2285***

डिप्लोमा स्तरीय संस्थाएं ***8765***

सभी संस्थाएं (कानपुर—केन्द्रीय वस्त्र संस्थाएं, लखनऊ)

विकलांग पालीटेकनिक, (1996—97 से) महिला पालीटेकनिक, (17 संस्थापक, 1310 छात्रावास—1996—1998) कम्यूनिटी पालीटेकनिक (ग्राम्य विकास क्षेत्र) भी स्थापित किए जा चुके हैं।

विश्व बैंक अनुमोदित कार्यक्रम

5.12.1990 से प्रारम्भ की गई विश्व बैंक की योजना का मुख्य उद्देश्य प्रशिक्षण में

गुणात्मक सुधार, तकनीकी संस्थाओं का आधुनिकीकरण तथा महिला भागीदारी में बढ़ोत्तरी है। इसका वित्तीय बजट 241 करोड़ है।

पालीटेकनिक वि0 के विकास क्रम में अल्प संख्यक समुदाय के लिए 3185 युवक/युवतियों की प्रशिक्षण, अनुसूचित एवं जनजाति एवं पिछड़े वर्ग के लिए क्रमशः 21 प्रतिशत, 2 प्रतिशत और 27 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था प्रदान की गई है।

इस प्रकार वि0वि0, महाविद्यालय, पालीटेकनिक्स आदि महा0 और प्रशिक्षण विद्यालयों द्वारा नई तकनीकों से शिक्षा विकास किया जा रहा है।

तुलनात्मक अध्ययन

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त भारत के राजनेताओं का ध्यान सबसे पहले शिक्षा के विकास की ओर अन्मुख हुआ और इस लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु भारत सरकार ने बनारस विश्व विद्यालय के पूर्व कुलपति तथा विश्व विख्यात शिक्षाविद् – डा0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन की अध्यक्षता में दिसम्बर 1948 विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग का गठन किया बाद में डा0 राधा कृष्णन स्वतंत्र भारत के द्वितीय राष्ट्रपति भी बने। अगस्त 1949 को मात्र नौ माह की अल्पावधि में इस आयोग ने अपनी रिर्पोट शासन को सौंप दी।

प्रस्तुत शोध में इस आयोग द्वारा प्रतिपादित नीतियों/संस्तुतियों क राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 से तुलनात्मक विवेचना करते हुए उच्च शिक्षा के स्तर एवं वर्तमान शिक्षा जगत के प्रभावी स्वरूप पर प्रकाश डाला है जो निम्नवत् है–

आयोग ने अपनी संस्तुतियों में शिक्षा का उद्देश्य जीवन के महत्व एवं वास्तविक अर्थ को प्रदान करना है। ज्ञांन के विकास के साथ जीवन जीने की कला का विकास करने, शैक्षिक, आर्थिक और राजनीतिक सोच के सामाजिक दर्शन का विकास, प्रजातंत्र का परीक्षण, आत्म विकास की प्रेरणा, मानसिक स्वतन्त्रता और आत्म शक्ति का विकास, सांस्कृतिक विषय का ज्ञान, व्यवहारिक और औद्योगिक प्रशिक्षण आदि उद्देश्यों पर बल दिया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 एवं 1986 जो कि विश्व विश्व विद्यालय शिक्षा आयोग 1949 के बाद बनी, ने वर्तमान के उच्च शिक्षा के स्तर में उत्तरोत्तर वृद्धि एवं समय की आवश्यकता व शिक्षा की सामाजिक सोच के परे प्रजातंत्र की शिक्षा, धार्मिक शिक्षा एवं व्यवसायिक एवं औद्योगिक व तकनीकी शिक्षा पर जोर देते हुए शिक्षा नीति को 1986 में क्रियान्वित किया था

समय के परिवर्तन के साथ शिक्षा में सुधार की पुनः आवश्यकता महसूस हुयी और 1990 में उक्त राष्ट्रीय नीति की समीक्षा की गयी। वर्तमान में जो शिक्षा पद्यति विश्व विद्यालयी स्तर पर लागू है। वह राष्ट्रीय शिक्षा नीति का ही परिणाम है।

तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो सन् 1949 में विश्व विद्यालय स्तर की शिक्षा के सुधार हेतु विश्व विद्यालय शिक्षा आयोग की संस्तुतियों को दृष्टिगत करते हुये हो। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968, 1986 का गठन किया गया, परन्तु फिर भी समय की मांग एवं शिक्षा के उन्नयन हेतु शिक्षा संसाधनों की वृद्धि, कार्य दिवसों की वृद्धि, तकनीकी व व्यवसायिक शिक्षा पर बल, शिक्षा अनुसंधान के क्षेत्र में पुस्तकालयों, शिक्षण साहित्य को शिक्षार्थियों तक पहुंचाने, स्त्री शिक्षा की स्वतन्त्रता, एवं सामाजिक सोच में बदलाव जैसे विषयों पर शिक्षा नीतियों में आयोगों की संस्तुतियों की अपेक्षा अधिक जोर दिया गया, जिसके फलस्वरूप शिक्षा जगत में विकास तो हुआ परन्तु आवश्यकतानुसार आज भी शिक्षार्थी अध्ययन और शोध हेतु संसाध ानों के अभाव में भ्रमित प्रतीत होते हैं।

माध्यमिक शिक्षा सम्बन्धी तुलनात्मक अध्ययन

माध्यमिक शिक्षा किसी भी देश का भविष्य होती है। इसी स्तर पर विद्यार्थियों में साहस, खोज, अन्वेषण आदि जिज्ञासाओं का बीजाकरण होता है। जो उस राष्ट्र की स्वतन्त्रता और विकास में सहायक होता है। विद्यार्थियों का राष्ट्रीय चरित्र और आर्थिक विकास की दिशाओं के साथ–साथ उनमें आत्मविश्वास और आत्मानुशासन का विकास होता है। उत्तम नागरिकता के गुण भी इसी स्तर पर जन्म लेकर विकसित होते हैं जिनमें आत्म चरित्र, कार्यकुशलता तथा अन्वेषण प्रमुख है।

माध्यमिक शिक्षा समस्त शिक्षा जगत के ताने–बाने का एक अपरिहार्य अंग है। जो माध यमिक स्तर तक ही शिक्षा ग्रहण करते हैं वे जीवन में प्रवेश के अनेक व्यवसायिक अथवा आद्योगिक संसाधन खोज लेते हैं और जो विशेष योग्यता के लिए प्रयास करते हैं उनके लिए माध्यमिक शिक्षा स्तर आधारभूत ज्ञान का कार्य करता है।

माध्यमिक शिक्षा एक विशेषीभूत योजना होती है जिसमें शैक्षिक, प्रशासनिक, संगठनात्मक, परिवेक्षण, आर्थिक, शारीरिक और मनोरंजनात्मक क्रियायें आदि विकसित होती हैं। शिक्षा कभी भी राष्ट्र विरोधी अथवा अर्न्तराष्ट्रीय नहीं होती, भारत में यह स्वतन्त्रता दिवस से ही राष्ट्रीय है।

फलस्वरूप शिक्षकों एवं सामाजिक कार्यकर्ताओं की मांग थी कि सरकार सभी माध्यमिक विद्यालयों का राष्ट्रीयकरण अथवा उ0प्र0 सरकार शिक्षा का प्रदेशीयकरण कर दे।

उ0प्र0 सरकार वैसे तो गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में पाठ्यक्रम, पुस्तकें शिक्षकों की योग्यताएँ, सेवा की शर्तें, नियुक्ति और दण्ड प्रक्रिया, फीस और अनुदान सभी को विनियमित करने का प्रयास किया है तथापि विद्यालयों की बढ़ती हुई संख्या और तदनुरूप छात्रों की संख्या भी असाधारण रूप से बढ़ी है। नियमन के कारण शिक्षकों की नियुक्तियों को योग्यता के आध ार पर यथा सम्भव करने की चेष्ठा भी की गई है जिसका अनुमोदन सक्षम अधिकारी द्वारा किया जाता है। साथ ही शिक्षकों की सेवायें सुरक्षित हो गई हैं और उनके वेतन–भुगतान का दायित्व भी उ0प्र0 सरकार का ही है यद्यपि फीस का 80 प्रतिशत भाग सरकारी कोष में जमा करना पड़ता है। इसी नियमन के अन्तर्गत सरकारी तथा गैर सरकारी शिक्षकों के वेतनमान में भी कोई अन्तर नहीं रह गया है। सरकारी शिक्षकों का स्थानान्तरण होता है और उनकी सेवा पंत्रिका में अनुशासनात्मक प्रविष्टियां होती रहती हैं जिससे गैर सरकारी अध्यापक लगभग मुक्त हैं।

माध्यमिक शिक्षा के राष्ट्रीयकरण में लगभग 125 करोड़ रू0 का वार्षिक अतिरिक्त भार सरकार पर पड़ता है जिसे सरकार सामान्यतः वहन नहीं कर पाती दूसरी ओर गैर सरकारी स्कूलों की संख्या अधिक होने के कारण शिक्षा और साक्षरता का प्रसार होता ही है।

बीसवीं शताब्दी के आठवें दशक तक उ0प्र0 माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, परीक्षा संचालन, प्रदेशी तथा पाठ्येत्तर क्रिया कलापों का पर्याप्त उन्नयन हुआ। पाठ्यक्रम क्रियाओं में प्रदेशीय शिक्षा दल, शिक्षा संस्थान, मनोवैज्ञानिक केन्द्र और माध्यमिक बोर्ड संस्थाएं भी अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही है और इनका प्रभाव भी शिक्षा उन्नयन में स्पष्ट दिखाई देता है।

कोठारी आयोग ने प्रदेशीय शिक्षा बोर्ड को प्राथमिक स्तर से माध्यमिक स्तर तक का क्रियान्वयन एवं सहायतार्थ दो सहायक सलाहकार बोर्ड की स्थापना को संस्तुति की थी। एक कक्षा 8 तक और दूसरा 9 से 12 तक की शिक्षा का नियमन करने के लिए प्रस्तावित किया गया। इसके साथ ही आवश्यकता पड़ने पर उच्च शिक्षा के लिए तीसरा तथा प्रौढ़ शिक्षा के लिए चौथा सलाहकारी बोर्ड भी बनाए जा सकते थे। विश्व विद्यालयी स्तर के पाठ्यक्रम को छोड़कर सभी प्रकार की शिक्षा का यह क्षेत्र था जिसमें 12वीं कक्षा के उपरान्त शिक्षक प्रशिक्षण की भी व्यवस्था की संस्तुति की गई थी।

परीक्षा प्रणाली के सम्बन्ध में यह सुझाव सामने आया कि जब जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा 8वीं कक्षा की सार्वजनिक परीक्षा होती है तो 10वीं कक्षा के लिए सार्वजनिक परीक्षा को अनावश्यक समझा जाए इससे तुरन्त ही हड़ताल, हिंसा, शान्ति सुरक्षा आदि अन्य मुद्‌दों पर नियंत्रण पाया जा सकता है। कक्षा 12 की सार्वजनिक परीक्षा सम्बद्ध विश्व विद्यालय द्वारा कराए जाने का भी संकल्प किया गया था। 1 से 12 की कक्षा की परीक्षा को दो भागों में बांटने का प्रस्ताव था।

1. I से VIII तक की सार्वजनिक परीक्षा – 8 वर्ष
2. IX से XII तक की सार्वजनिक परीक्षा – 4 वर्ष

उपर्युक्त दोनों वर्गों की पूर्ण स्वयत्रता थी अतः उपर्युक्त सन्दर्भ में X कक्षा की परीक्षा, परीक्षार्थियों की अपरिपक्वता के कारण मात्र दो वर्ष बाद, कोई औचित्य प्रतीत नहीं होती। क्योंकि 1 से 8वीं कक्षा और IX से XII वीं कक्षा की दो इकाईयाँ अपने आप में पूर्ण इकाईयाँ थीं।

वर्ष 1948 के पूर्व जूनियर हाई स्कूल परीक्षा प्रणाली का अस्तित्व नहीं था, अतएव इण्टरमीडिएट अधिनियम 1921 की स्थापना की गई और 1.4.1922 को इण्टरमीडिएट बोर्ड की स्थापना कर दी गई एवं 1924 में इण्टरमीडिएट कक्षाओं की प्रथम सार्वजनिक परीक्षा इलाहाबाद विश्वविद्यालय की परीक्षा योजना के अनुसार की गई। इसके पूर्व इण्टर कालेजों के अभाव और X वीं कक्षा की परीक्षा विभिन्न सेवाओं में न्यूनतम अर्हता होने के कारण प्रचलन में रही। और इस प्रकार X और XII वीं कक्षा की सार्वजनिक परीक्षाएं प्रचलन में आज तक बनी हुईं हैं। इसके उपरान्त यह अनिवार्य कर दिया गया कि विद्यालयों में IX से XII तक की कक्षायें रहेंगी जिसमें IX - X को हाई स्कूल परीक्षा और X - XII को इण्टर परीक्षा दोनों ही सार्वजनिक परीक्षायें कहा जायेगा।

यह अनुभव किया गया कि बोर्ड को व्यापक होना चाहिए अतएव बोर्ड के पुर्नसंगठन में प्राथमिक, माध्यमिक और प्रशिक्षण विद्यालयों के अध्यापक प्रतिनिनि, प्राच्य शिक्षा संस्थान, विश्वविद्यालय अथवा महाविद्यालयों के विद्वान, विधान मण्डल के सदस्य प्रतिनिधि, स्थानीय निकायों के प्रतिनिधि भी सम्मिलित किए जाएं। ऐसे बोर्ड का अध्यक्ष कोई विख्यात विद्वान और उपाध्यक्ष शिक्षा निदेशक को रखा जाए तथा इस बोर्ड का मुख्यालय एक ही स्थान हो– इलाहाबाद या लखनऊ जिसमें मुख्य कर्ता शिक्षा निदेशक होंगे और उनकी सहायतार्थ अति0

शिक्षा निदेशक कार्य देखेंगे। इस प्रकार उ0प्र0 में माध्यमिक शिक्षा बोर्ड का पुर्नगठन किया गया।

इसके साथ—साथ माध्यमिक शिक्षा व्यवस्था में कतिपय ऐसी योजनाएं और प्रारम्भ की गई जिनका सीधा प्रभाव छात्र अनुशासन और उत्तम राष्ट्रीय नागरिक जीवन से भी था। इन योजनाओं में प्रदेशीय शिक्षा दल (पूर्व में प्रारम्भ काल में इसे P.E.C. कहा गया), केन्द्रीय शिक्षा संस्थान और मनोविज्ञान केन्द्र मुख्य हैं।

प्रादेशिक शिक्षा दल

यह योजना XI वीं कक्षा के विद्यार्थियों के लिए थी। प्रारम्भ में इसे पी0 ई0 सी0 (Provincial Education Corp) कहा गया था, बाद में इसी का हिन्दी संस्करण कर इसे प्रादेशीय शिक्षा दल कहा गया। यह योजना वर्ष 1951 में झांसी जनपद में प्रारम्भ हुई थी। इसका मुख्यालय तो लखनऊ में था किन्तु प्रशिक्षण केन्द्र फैजाबाद स्थित पूर्व सैनिक के प्रशिक्षण केन्द्र फतेहगढ़ में रखा गया। इस योजना को उत्तर प्रदेश के तत्कालीन शिक्षा मंत्री और शिक्षा मनीषी डा0 सम्पूर्णानन्द ने सैनिक प्रशिक्षण हेतु लागू किया था किन्तु केन्द्रीय सरकार के आपत्ति करने पर इसे सैनिक शिक्षा के नाम से चलते रहने दिया गया। इस योजना के अन्तंगत विद्यार्थियों को दो वर्ष तक सैनिक शिक्षा के नाम से सैनिक प्रशिक्षण दिया जाता रहा। शिक्षा विभाग ने प्रारम्भ में सभी विद्यार्थियों के लिए यूनीफार्म (वर्दी) के दो सैट प्रदान किए और इसी राइफल से उन्हें प्रारम्भिक प्रशिक्षण दिया गया। इसके पूर्व एक कम्पनी (Coy) में तीन/चार अध्यापक भी पूर्ण रूप से एक माह के प्रशिक्षण के उपरान्त सक्षम अधिकारी बनाए गए जिन्हें दो स्टार (Two Star Rank), क्रास वैल्ट (Cros Belt) धारण करने का भी अधिकार दिया गया। वस्तुतः प्रदेशीय शिक्षा दल में व्यय भार अधिक बढ़ने तथ एन0 सी0 सी0 का स्तर बढ़ने के कारण एक स्थिति ऐसी आई कि प्रदेशीय शिक्षा दल योजना को बन्द कर देना पड़ा।

केन्द्रीय शिक्षा संस्थान, राज्य शिक्षण संस्थान और राज्य विज्ञान शिक्षा संस्थान, इलाहाबाद में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा स्थापित किए गए। राज्य मनोविज्ञान केन्द्र, इलाहाबाद में स्थापित किया गया जिसका उद्देश्य था कि विद्यार्थियों की अभिरूचियों के अनुकूल उनका शिक्षण किया जा सकता। इसके लिए प्रमुख जिलों में एक जिला मनोवैज्ञानिक की नियुक्ति की गई।

माध्यमिक शिक्षा परिषद इलाहाबाद की संसार में सबसे बड़ी परीक्षा परिषद है जिसमें 98–99 में लगभग 18 लाख विद्यार्थी परीक्षा में सम्मिलित हुए और इसमें करीब 50,000 विद्यार्थी प्रतिवर्ष बढ़ते जाते हैं। 1889 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय इन परीक्षाओं का संचालन करता था जिसमें मैट्रिक में 1260 विद्यार्थियों ने परीक्षा दी की 1894 में स्कूल फाइनल परीक्षा में 93 परीक्षार्थी थे 1910 में स्कूल सीविंग सर्टीफिकेट परीक्षा में 325 विद्यार्थी सम्मिलित हुए थे। 1924 में मैट्रिक और एस0 एल0 सी0 परीक्षा में परिषद के अन्तर्गत क्रमशः 1, 172 और 5600 विद्यार्थी परीक्षा के सम्मिलित हुए। 1925 में हाईस्कूल परीक्षा प्रारम्भ की गई जिसमें हाईस्कूल में 6368 और इण्टर में 2028 विद्यार्थी सम्मिलित हुए। इन 75 वर्षों की दीर्घावधि में आज की स्थिति में चार जोन बना दिए गए हैं – मेरठ, वाराणसी और इलाहाबाद जोन।

वर्ष 98–99 निजी. प्रबन्ध तंत्र द्वारा संचालित 1700 अशासकीय माध्य0 विद्यालयों हाईस्कूल और इण्टर कक्षाओं में नवीन विषयों की मान्यता प्रदान की गई तथा परीक्षाओं की गुणवत्ता बढ़ाने हेतु केन्द्रीय मूल्यांकन की अवधि सन् 2000 से 10 दिनों से बढ़ाकर 15 कर दी गई माध्यमिक शिक्षा का बजट 1999–2000 में 1938.36 करोड़ रू0 का प्राविधान कर दिया गया है जो वर्ष 1998–99 में मात्र 230.22 करोड़ था।

परीक्षाओं को शुद्ध व छात्रों के ज्ञान वर्धन हेतु नकल मुक्त परीक्षा करने का संकल्प में अधिनियम बनाकर दण्ड का प्राविधान कर विद्यालयों में अध्ययन–अध्यापन का वातावरण भी बनाया गया।

तुलनात्मक अध्ययन

माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में मुदालियर कमीशन का गठन किया गया था तथा इस कमीशन द्वारा विभिन्न संस्तुतियाँ शिक्षा में माध्यमिक स्तर के सुधार हेतु प्रस्तुत की गयी थी जिनका संसोधन राष्ट्रीय शिक्षा नीति में किया गया।

प्रस्तुत शोध में शिक्षा में माध्यमिक स्तर पर मुदालियर कमीशन द्वारा जो संस्तुतियाँ प्रस्तुत की गयी उनका राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में किये गये क्रियान्वयन की तुलनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत किया जा रहा है–

1. माध्यमिक शिक्षा आयोग द्वारा शिक्षा के माध्यमिक स्तर पर आमूलचूल परिवर्तन के लिए अपनी संस्तुतियों में प्रस्तुत किया कि माध्यमिक स्तर पर वैज्ञानिक शिक्षा माध्यमिक शिक्षा का मूलाधार और केन्द्र बिन्दु होना चाहिए।

   राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 ने भी शिक्षाके समग्र बिन्दुओं पर विचार कर माध्यमिक शिक्षा का मूलाधार वैज्ञानिक शिक्षा को बतलाते हुये विद्यार्थियों के विज्ञान, मानविकी एवं समाज विज्ञानों की विभिन्न भूमिकाओं को आधारभूत बताया।

2. माध्यमिक शिक्षा आयोग ने व्यवसायिक शिक्षा के स्वरूप के निर्धारित करते हुए माध्यमिक शिक्षा का व्यवसाय केन्द्रित होने पर बल दिया।

   जबकि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 ने माध्यमिक स्तर पर हुये क्रियान्वयन में व्यवसायिक शिक्षा की दृष्टिगत करते हुये स्पष्ट किया कि व्यवसायिक पाठ्यक्रमों की संस्था खोलने का दायित्व सरकार तथा निजी नियोक्ताओं का होगा।

   व्यवसायिक पाठ्यक्रमों में नव साक्षरों, प्राथमिक शिक्षा प्राप्त युवाओं, विद्यालय छोड़ बैठने वाले तथ कार्य में संलग्न व्यक्तियों तथा बेरोजगार तथा अर्द्ध बेरोजगार व्यक्तियों के लिए, अनौपचारिक, लचीले और आवश्यकता आधारित व्यवसायिक पाठ्यक्रम उपलब्ध कराये जाने पर बल दिया। इस प्रकार यदि तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो राष्ट्रीय शिक्षा नीति में माध्यमिक शिक्षा को व्यवसायिक केन्द्रित बनाये जाने हेतु मुदालियर कमीशन की संस्तुतियों को सामानान्तर रखा।

3. माध्यमिक शिक्षा आयोग द्वारा माध्यमिक स्तर पर स्कूलों में दो वर्ष के पाठ्यक्रम, विद्यालयों मे 234 दिन अथवा 39 सप्ताह अध्यापन का समय, स्कूलों में किये जाने वाले अवकाशों में धार्मिक अवकाशों को कम किये जाने व महापुरूषों के जन्म और निर्वाण दिवसों पर विद्यालय बन्द न किये जाने, स्कलों के कार्य समयन को बढ़ाते हुये एक अध्यापन वर्ष में कम से कम 1100 अथवा 1200 घण्टे किये जाने की संस्तुति की है।

कई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में शिक्ष के संचालन के लिए बौद्धिक जटिलता एवं उद्‌देश्य गम्भीर्य के साथ नवाचार एवं सृजनात्मकता के लिए आवश्यक स्वतन्त्रता प्रदान करने वाले वातावरण के महत्व को स्वीकार किया है।

वर्तमान प्रणली में शैक्षिक अनुशासन पर बल देते हुए सभ विद्यार्थी पढ़े और शिक्षक पढ़ायें इसके लिए निम्न व्यूह रचना को प्रस्तुत किया–

1. शिक्षकों को बेहतर सुविधाएं एवं बृहत्तर उत्तर दायित्व।
2. समुन्नत छात्र–छात्राओं की सुविधाओं की व्यवस्था तथा स्वीकार्य व्यवहार मानकों की अनुपालन पर जोर।
3. शिक्षण संस्थाओं में न्यूनतम सुविधाओं का प्राविधान।
4. राष्ट्रीय एवं प्रान्तीय स्तरों पर निर्धारण मानकों एवं आदर्शों के अनुरूप निष्पत्ति मूल्यांकन प्रणाली के विकास पर बल दिया।

तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 ने आयोग द्वारा सुझायी गयी नीतियों/संस्तुतियां के शैक्षिक व्यवस्था के क्रम में समाहित किया है। तथा कार्य दिवसों एवं दो वर्षीय पाठ्यक्रम की अर्थात् 10 + 2 + 3 के शैक्षिक ढाँचे को प्रस्तावित करे क्रियान्वित करने का प्रयास किया। वर्तमान में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा 10 + 2 + 3 के शैक्षिक ढाँचे पर ही शिक्षण कार्य किया जा रहा है।

बेसिक/प्राथमिक शिक्षा सम्बन्धी

उत्तर प्रदेश भारत का एक वृहत् राज्य है। शिक्षा के क्षेत्र में सर्वाधिक प्रयोग इसी राज्य में किए गए हैं। उत्तर प्रदेश में जहां जिले में एक जिलाधिकारी होता था, वही शिक्षा के क्षेत्र में एक जिले में दो कमिश्नर होते थे। प्रदेश स्तर पर इलाहाबाद में बेसिक शिक्षा निदेशालय की स्थापना की गई। स्वतन्त्रता से पूर्व इसी निदेशालय को डिपार्टमेन्ट ऑफ पब्लिक इन्सट्रक्शन्स (Department of Public Instructions) कहा जाता था। इसके शीर्ष पद पर वी0 जे0 काले और चुंन्नी लाल साहनी जैसे विद्वान शिक्षा मनीषी आसीन रहे। कालान्तर में उत्तर प्रदेश में शिक्षा निदेशक के साथ पांच विभागीय निदेशक और छः अतिरिक्त निदेशक की प्रदेश को आवश्यकता अनुभव हुई। इसके अतिरिक्त लगभग एक दर्जन से अधिक संयुक्त निदेशकों की नियुक्तियाँ भी की गई जिससे सेवाओं में उन्नयन के द्वारा खुल सकें और शिक्षा विभाग का प्रशासन सुचारू रूप से चल सके। इस ओर महत्वपूर्ण था कि शिक्षा निदेशक को समकक्ष अधिकारियों के साथ प्रोन्नत किया जाता जो शिक्षा आयुक्त के समान अधिकारी होता।

बेसिक शिक्षा

उपयुक्त उद्देश्यों की पूर्ति हेतु 25.7.1972 को बेसिक शिक्षा निदेशक की अध्यक्षता में एक बोर्ड का गठन किया गया जिसमें बेसिक शिक्षा निदेशक अध्यक्ष तीन सरकारी अधिकारी पदेन सदस्य, चार स्थानीय निकायों के नामांकित अध्यक्ष और दो शिक्षा विद् सम्मिलित थे। 1975 के अधिनियम द्वारा माध्यमिक शिक्षा निदेशक और उत्तर प्रदेश प्राथमिक शिक्षक संघ के दो सदस्यों को उक्त बोर्ड में और सम्मिलित किया गया। ये भी पदेन सदस्य थे।

बेसिक शिक्षा को परिभाषित करते हुए कहा गया कि हाई स्कूल और इण्टरमीडिएट कालेजों को छोड़कर बेसिक शिक्षा कक्षा VIII तक के विद्यालयों तक मान्य थी और इस शिक्षा का सम्पूर्ण नियन्त्रण बेसिक शिक्षा बोर्ड में निहित था तथा स्थानीय निकायों के समस्त शिक्षा कर्मचारी बेसिक शिक्षा निदेशक से सम्बद्ध किये गए और उसी के नियन्त्रण में रखे गए ।

प्रत्येक जिले में एक जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी (ZBSA) की नियुक्ति की गई। साथ–साथ बढ़ती हुई संख्या के आधार पर प्रदेशीय शिक्षा सेवा (P.E.S.) में उसी वेतनक्रम में महिला जिला बेसिक शिक्षा अधिकारियों की भी नियुक्ति की गई।

वर्ष 1912 में मार्लो–मिन्टों के सुधारवादी दृष्टिकोण से शिक्षा विभाग को गृह विभाग से पृथक किया गया और 1921 में द्वैध प्रणाली के अन्तर्गत शिक्षा भी एक विभाग से दूसरे विभाग में स्थानान्तरित होती रही। तदुपरान्त जितने आयोग बने जिसमें किचलू, हैरय, मुदालियर आयोग प्रमुख थे सभी ने स्थानीय निकायों को शिक्षा–दायित्व से मुख्य रखा।

1937 में खैल समिति से संस्कृति थी कि प्राथमिक शिक्षा से स्थानीय निकायों को सम्बद्ध किया जाय जो शिक्षकों के स्तर का भी ध्यान रखे। इसी से बहुसंख्यक शिक्षा का विकास सम्भव है। इस समिति ने यह भी संस्तुति की कि प्रदेशीय वर्नाक्यूसर शिक्षा सलाहकार समिति का गठन किया जाय। उत्तर प्रदेश में 1917 में ऐसी ही एक सलाहकार समिति का गठन पहले भी किया जा चुका था जिसको 1925 में पुर्नगठित कर बोर्ड आफ वर्नाक्यूलर एजूकेशन नाम दिया गया। कोठारी आयोग ने भी खैर समिति के समान ही संस्तुति की थी। उनका मत था कि स्थानीय समितियाँ शिक्षा–व्यय में पर्याप्त सहयोग कर सकती हैं। उत्तर प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा जिला परिषद और नगर पालिका जैसी संस्थाओं में उपयुक्म संशोधनों और विकास कार्यक्रम का दायित्व उठाती रही है।

1938–39 में आचार्य नरेन्द्र देव ने शिक्षा मंत्री के नेतृत्व में प्रदेशीय शिक्षा बोर्ड की स्थापना की संस्तुति की थी। इसके अतिरिक्त दो सहायक बोर्ड भी गठित किये जायं जो बेसिक और उच्च शिक्षा का कार्य देखें किन्तु ये सलाहकार की स्थिति में ही रहेंगे और शिक्षा का मूल दायित्व स्थानीय बोर्ड द्वारा ही संचालित होगा।

आचार्य नरेन्द्र देव. ने 4 अगस्त 1939 को अपनी आख्या प्रस्तुत करते हुए कहा था जिला परिषदों ने ग्रामीण शिक्षा के विकास में महत्–योग दान किया है ताकि अधिकतम शिक्षा परिणाम उपलब्ध संसाधन से प्राप्त हो सके। उत्तर प्रदेश के विद्वान शिक्षा मनीषी डा0 सम्पूर्णानन्द ने भी स्थानीय बोर्ड के शिक्षा अधिकार और दायित्वों को यथा सम्भव जैसे का तैसा ही बनाए रखा। उनके शासन काल में 22000 राजकीय प्राथमिक विद्यालय मात्र 10 वर्ष की अवधि के खोले गए और 3 वर्ष की अवधि में 13000 विद्यालय और खोले गये जो स्थानीय बोर्डों को सौप दिए गए। यद्यपि इस योजना के अर्न्तगत 44000 विद्यालय खोले जाने थे।

बेसिक शिक्षा योजना को प्रारम्भ करते समय 1938 में अनेक चुनौतियां थीं। संगठन प्रशासन और प्रशिक्षण हेतु बेसिक ट्रेनिंग कालेजों का खोलना बेसिक प्रशिक्षण केन्द्रों को जिलों और मण्डलों में स्थापित करने के साथ–साथ अनेकानेक विद्यालयों के बेसिक विद्यालयों को बेसिक विद्यालयों में परिवर्तित करना एक बड़ा काम था। इसके अतिरिक्त अनुदान, प्रशिक्षण और शिक्षकों को नवीनीकृत प्रशिक्षण आदि कार्यों को डा0 सम्पूर्णानन्द के मंत्रित्व काल में सरलता पूर्वक पूरा कर लिया गया। यह कार्य बिना किसी निदेशालय की स्थापना, जिला नगर ग्राम समिमियों के पुर्नगठन या कि हिन्दुस्तानी शिक्षा व्यवस्था का स्वरूप बदले सहज ही सम्पन्न हुए जो कि भारतीय शिक्षा जगत की अनुपम उपलब्धि थी।

वर्ष 1961 में उ0प्र0 क्षेत्रीय समिति और जिल परिषद अधिनियम पारित किया गया। ऐसा प्रतीत होने लगा था कि 6–14 वय वर्ग के बच्चों को अनिवार्यतः शिक्षा प्राप्त हो सकेगी। अंग्रेजी, हस्त शिल्प, कृषि विज्ञान, भी शिक्षा में सम्मिलित किए गए।

स्थानीय संगठनों ने सदा से ही प्रारम्भिक शिक्षा के व्यापक बनाने तथा अनिवार्य बनाने में प्रयास और सहयोग किया है। 1919 और 1926 के अधिनियमों के अर्न्तगत ग्रामीण और नगरीय शिक्षा का विकास किया गया है। और स्वतन्त्र भारत के प्रारम्भिक वर्षों बेसिक शिक्षा के विकास के निरन्तर प्रयास होते रहे हैं। सन् 1914 में सातवीं कक्षा और इसके उपरान्त

कक्षा 1 से 5 तक 6 से 8 तक के वर्गों में अंग्रेजी दस्तकारी, ग्रामीण ज्ञान और कृषि, बागवानी, मिट्टी का कार्य आदि विषय भी शिक्षा में जोड़े गये। बेसिक शिक्षा के पुर्नगठन, हस्तकौशल आदि के लिए अध्यापकों का चयन, उपकरण आदि की व्यवस्था करना भी बेसिक शिक्षा के अन्तर्गत रखा गया।

शासन द्वारा शिक्षा सम्बन्धी पाठ्यक्रम, पुस्तकें, प्रशिक्षण परीक्षा शिक्षा में भी नियुक्ति आदि कार्य करना और उसका विधिवत् संचालन करना एक कठिन कार्य अवश्य था तथापि इस कार्य को सम्पन्न कर निरीक्षण कार्य की व्यवस्था करना भी शासन का दायित्व बना।

यद्यपि स्थानीय सलाहकारी समितियों की पर्याप्त आलोचनाएं भी की गई, पक्षपात करने के आरोप लगाए गए, सरकारी नियमों की अवहेलना की गई आदि के होने पर भी इतना सभी को मान्य रही है कि स्थानीय समितियों ने शिक्षा का प्रसार ही किया है।

इस सम्पूर्ण बेसिक शिक्षा व्यवस्था पर 100 करोड़ रू0 सालाना व्यय भार शासन पर पड़ता अनुमानित किया गया। इसके साथ ही जिला बेसिक, शिक्षा अधिकारी और निरीक्षक समूह पर व्यय अधिगम और भी अधिक होता जा रहा है लगभग 200 स्थानीय बोर्ड को यह व्यवस्था मुकम्मल थी। संयोग से बेसिक शिक्षा के प्रथम निदेशक के सेवा निवृत्ति के उपरान्त निदेशक का पद ही समाप्त कर दिया गया।

आचार्य नरेन्द्र देव समिति ने ऐसा पाठ्यक्रम प्रस्तावित किया जिसे गांधी जी ने वार्धा योजना (1937) अथवा ज़ाकिर हुसैन ने (1938) सुझाया था। बेसिक शिक्षा में कहीं भी जूनियर बेसिक या कि सीनियर बेसिक जैसे स्तर नहीं थे। बेसिक शिक्षा में कक्षा 1 से 7 तक (अब 8) की शिक्षा योजना थी। डा0 जाकिर हुसैन स्वयं बेसिक शिक्षा के जन्मदाता थे।

अन्ततः सन् 1972 में बेसिक शिक्षा अधिनियम बना और 1975 में इसमें वांछित परिवर्तन कर इसे सुदृढ़ बनाया गया। इतने पर भी विद्यार्थियों की उत्तम शिक्षा एवं मूल्यांकन के लिए 8वीं कक्षा की सार्वजनिक परीक्षा प्रणाली को अपनाया गया। अध्यापकों के पूर्व प्राथमिक, प्राथमिक एवं माध्यमिक कक्षाओं के अध्यापन हेतु H.T.C., B.T.C., J.B.T.C., A.T.C. जैसे प्रशिक्षण के निमित्त उपयोजन किए गए। वर्तमान में ये सभी प्रशिक्षण समाप्त कर दिए गए हैं। सत्य है कि शिक्षकों को अपनी भविष्य निधि, ऋण, स्थानान्तरण आदि भी विधाओं से निरन्तर जूझना पड़ा है किन्तु शिक्षा मन्त्रालय के विकास के लिए मुख्य मंत्री ने 12 जून 1974

को सदन में घोषणा की कि प्रत्येक अध्यापक को समय से वेतन और वेतन का बकाया नियमित रूप से प्राप्त हो सकेगा। माध्यमिक बेसिक शिक्षा के निमित्त, भवन, उपकरण, वेतन, भविष्य निधि, गठन और निरीक्षकों के लिए प्रदेश सरकार पर एक सौ करोड़ रूपये अधिकार पड़ता। शासन इसे स्वीकार करने के लिए प्रतिबद्ध था।

बेसिक शिक्षा की वर्तमान स्थिति

उत्तर प्रदेश सरकार का दृढ़ निश्चय है कि प्रत्येक आरक्षित क्षेत्र में एक प्राथमिक विद्यालय अवश्य होना चाहिए। इसे स्वरूप प्रदान करते हुए सरकार ने प्रत्येक 1.5 किमी0 की दूरी एवं 1000 की आबादी वाले क्षेत्र में एक प्राथमिक पाठशाला खोलने का निर्णय किया। इस योजना के अर्न्तगत 41 जिलों में 4,786 प्राथमिक पाठशाला में खोलने का निश्चय किया गया। इन 41 जिलों में खोले जाने वाले प्राथमिक विद्यालय 94998 हो गए हैं। अब 281 अम्बेडकर गांवों के प्राथमिक विद्यालय भी खोले जा रहे हैं। उच्च प्राथमिक विद्यालयों के विषय में प्रति 3 किमी0 और 800 की आबादी वाले क्षेत्र में 551 जिनकी संख्या विद्यालय खोलने का निश्चय किया गया है। जिनकी संख्या 20045 है। 10वें वित्त आयोग की सहायता से 249 उच्च प्राथमिक विद्यालय केवल बालिकाओं के निमित्त भी खोलने का निश्चय किया गया और ग्राम शिक्षा समितियां इन विद्यालयों के लिए सक्रिय सहयोग में संलग्न है।

12.79 करोड़ रू0 की लागत से 5418 विद्यालयों की मरम्मत की गई है जबकि सरकार ने 4470 प्राथमिक और 561 उच्च प्राथमिक विद्यालयों के भवन पूर्ण रूप से निर्मित कर दिए हैं। इसी प्रकार 13,917 हैण्डपम्प इन विद्यालयों में लगाए जा चुके हैं और 16.10 करोड़ रूपए की लागत से हैण्ड पम्प लगाया जाना स्वीकृत हो चुका है। विद्यालयों में 8,668 शौचालय भी निर्मित किए जा चुके हैं।

'स्कूल चलो' अभियान के अर्न्तगत 12 जिलों के 12 ब्लाकों में 6–11 वय वर्ग के 1. 84 करोड़ बच्चों को यूनीसेफ के सहयोगह एवं सहायता से विद्यालय में दाखिल कराया गया। बुनियादी प्रशिक्षण हेतु 55 जिलों के 28000 अध्यापकों को भी यूनीसेफ के प्रयासों से प्रशिक्षित किया जा रहा है। विश्व बैंक की सहायता से उक्त 12 जिलों की शिक्षा व्यवस्था के अर्न्तगत प्रशिक्षण दिया जा रहा है। सबको शिक्षा योजना के अर्न्तगत विश्व बैंक के द्वारा

दी गई सहायता से शिक्षण–प्रशिक्षण कार्य सम्पन्न हो रहा है। इस निमित 160 करोड़ की योजना जो 12 जिलों में चलायी जा रही है, उसके अतिरिक्त 15 जिलों में महिला साक्षरता का कार्यक्रम भी विश्व बैंक योजित कर रहा है। ये वे जिले हैं जहाँ पर महिला की साक्षरता की दर बहुत कम है।

लगभग एक करोड़ बच्चों के लिए सुपोषण आहार की व्यवस्था भारत सरकार के सहयोग से कार्यान्वित की जाय।

बेसिक शिक्षा में कल्प योजना

बेसिक शिक्षा में गुणवत्त लाने के लिए उ0प्र0 विद्यालय को सुसंस्कार केन्द्र के रूप में विकसित करने का लक्ष्य रखा है। इस योजना में गुणवत्ता, क्षमता और प्रतिभा का विकास किया जाना ही एक मात्र उद्देश्य कल्प योजना के पूरक कार्य हैं–

- प्राथमिक विद्यालयों में 5000 संस्कृत अध्यापकों के पद की व्यवस्था।
- प्रत्येक विकास खण्ड पर एक कम्प्यूटर एवं उसकी शिक्षक व्यवस्था।
- प्रत्येक विकास खण्ड पर संगीत एवं शारीरिक शिक्षक की व्यवस्था।
- प्रत्येक विकास खण्ड पर 5 कल्प विद्यालयों में संगीत वाद्य, खेल उपकरण हैण्ड पम्प और शौचालय आदि की व्यवस्था करना।

अनौपचारिक शिक्षा के क्षेत्र में 596 विकास खण्डों में औपचारिक, अनौपचारिक तथा प्रौढ़ शिक्षा के माध्यम से दम्पत्ति योजना लागू करना विचाराधीन है। जिसमें 5 वर्ष की अवधि में लक्ष्य पूरा होने पर जीवन यापन मानदेय एवं सेवा में संयोजिन करने का भी प्रयास किया जायेगा।

वर्ष 1998–99 में 15 करोड़ के स्वीकृत प्राविधान के अन्तर्गत 5357 प्राथमिक विद्यालय जहाँ विद्यार्थी संख्या 100 से अधिक हे, अतिरिक्त कक्षाओं का निर्माण प्रस्ताव 1997–98 में बेसिक शिक्षा का जो आय व्यय 2507.80 करोड़ रू0 था 98–99 में 2877.65 करोड़ हो गया है।

सम्पूर्ण साक्षरता अभियान कार्यक्रम पर कुल बजट का 2/3 भाग केन्द्र सरकार द्वारा वहनीय है। प्रौढ़ शिक्षा के अन्तर्गत 87वीं पंचवर्षीय योजना में 113.57 लाख व्यक्तियों को किये लाभान्वित किया गया है। प्रदेश में महिला साक्षरता का परिणाम 25.31 प्रतिशत है,

ग्रामीण क्षेत्रों में यही 19.02 हैं। 1996—97 में साक्षर हुए कुल 216 लाख व्यक्तियों में से 126 लाख महिलाएं हैं अर्थात् 90 लाख पुरूष मात्र ही प्रशिक्षित हुए; 1997—98 में कुल महिला प्रतिभागी 10.56 महिलाएं तथा 6.03 लाख अनु.जाति अथवा जन जातियों में से है।1998—99 में यही लक्ष्य 53 लाख महिलाएं एवं 11.55 लाख अनु. और जनजातियों के लोग लाभान्वित होंगे।

उत्तर प्रदेश में भाषा के मानक उच्चारण हेतु अगला भाषा शिक्षा संस्थान (ELTI) इलाहाबाद में भाषा प्रयोगशाला की स्थापना की गई और इसके लिए 98—99 में 115 करोड़ रू0 प्राविधानित था। प्रारम्भिक शिक्षा में गुणवत्ता संवर्धन, पाठ्य पुस्तक समीक्षा शोध सर्वेक्षण और मूल्यांकन आदि कार्य भी सम्पन्न किए जाने की दिशा में प्रयास जारी है।

तुलनात्मक अध्ययन

प्रस्तुत शोध में शोधकर्ता द्वारा उत्तर प्रदेश के विशेष संदर्भ में प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में गठित कमीशन, समितियाँ एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों से तुलनात्मक विवेचन किया जाना अपेक्षित है। उपर्युक्त विवेचना में उत्तर प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा के अधुनातन आँकड़ें प्रस्तुत किये गये हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 भी शिक्षा के चहुमुखी विकास हेतु शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर अपनी विवेचना प्रस्तुत करती है। इसी क्रम में 1964—66 में गठित कोठारी कमीशन ने शिक्षा के अन्य स्तरों के साथ प्राथमिक स्तर के उन्नयन हेतु अपनी संस्तुतियाँ प्रस्तुत की।

तुलनात्मक दृष्टि से राष्ट्रीय शिक्षा नीति चाहे 1968 को देखे अथवा 1986 को दोनों ने ही प्राथमिक शिक्षा के उन बिन्दुओं के उकेरा है। जिन्हें पूर्व में गठित शिक्षा आयोग ने प्रस्तुत किया। प्राथमिक स्तर पर शिक्षक की दशा, वेतनमान, शिक्षण दिवस, अवकाश का समय, शिक्षण की सुविधाएं, संसाधनों की पर्याप्त, खेलकूद के मैदान, परीक्षाओं का संचालन, पाठ्यक्रम का निर्माण आदि विभिन्न बिन्दुओं पर आयोगों द्वारा की गयी संस्तुतियों की अपेक्षा की अपनी नीतियों को राष्ट्रीय एवं प्रादेशिक स्तर पर समाहित किया है। इस प्रकार उत्तर प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा के स्तर को सुधारा जाना अपेक्षित है।

शिक्षकों से सम्बन्धित

माध्यमिक स्तर की शिक्षा हेतु शिक्षकों का उत्तम प्रशिक्षण शिला पर भवन बनाने के समान है। यह ऐसा स्रोत है जिसकी धारायें बालकों और नव युवकों के लिए संजीवनी है।

शिक्षण–कला आज के युग में पर्याप्त विकसित है और नाना प्रकार के माध्यमों से विशेष ज्ञान में परिवर्तित होती जा रही है। विश्वविद्यालयी शिक्षा आयोग ने वर्ष 1949 में स्पष्ट किया है–

People in this country have been slow to recognise that education is a profession for which intensive proparation is necessary at it is in any other profession.

जिस प्रकार किसी मरीज को नीम हकीम को नहीं सौंपा जाता अथवा किसी अकुशल अभियंता को पुल के निर्माण का कार्य नहीं दिया जाता, उसी प्रकार हमें अपने नौनिहाल बच्चों को जो देश का भविष्य है नौसिखिए तथा कथित अध्यापकों को नहीं सौंपना चाहिए। प्रशिक्षण की उपाधियों से लदे–बदे शिक्षकों में शिक्षण की जिज्ञासा नहीं है और न ही हमारे सामाजिक इतने उत्तरदायी हैं वे तो दिन दूने रात चौगुने के प्रतियोगी प्रवाह में पड़कर शिक्षक के प्रशिक्षण और पुनः अभ्यास की ओर ध्यान नहीं देते। उ0प्र0 सरकार ने शिक्षक प्रशिक्षण हेतु एल0 टी0 (Licenciate of Teaching) कक्षायें चलाई जिनसे व्यय की अधिकता की पूर्ति किए जाने और शिक्षा विभाग की प्रतिष्ठाा बनाए रखने के उद्देश्य की पूर्ति होती थी। किन्तु 1953–54 में श्रम आयोग की संस्तुतियों द्वारा कक्षा को बन्द करने का संकल्प किया गया किन्तु वह कार्यान्वित नहीं हो सका। विश्व विद्यालयों में B.Ed. कक्षायें प्रारम्भ करने के कारण भी एल0 टी0 के प्रति शिक्षकों में तथा छात्रों में कोई जिज्ञासा नही रही। क्योंकि B.Ed. के उपरान्त एम0 एड0 के अध्ययन की सुविधाएं सम्भव हो गई थी।

केन्द्रीय शिक्षा संस्थान (Central Pedagogical Institute) की स्थापना 1896 में लखनऊ में की गई थी किन्तु इसे शीघ्र ही इलाहाबाद स्थानान्तरित कर दिया गया। इसकी दो शाखाएं थी सीनीयर शाखा इलाहाबाद में ही रही जबकि जूनियर को लखनऊ में 1909 में स्थापित किया गया। इन विभागीय शाखाओं में क्रमशः S.C.E और J.C.E. (सीनियर सर्टिफिकेट और जूनियर सर्टीफिकेट परीक्षायें) की परीक्षा होती थी। लखनऊ स्थित जूनियर शाखा को उच्च्व अध्ययन प्रशिक्षण केन्द्र बना दिया गया। 1927 में एल0टी0 प्रमाण पत्र (Certificate) को (Diploma) में परिवर्तित कर दिया गया। इस डिप्लोमा का स्तर उत्कृष्ठ होने के कारण इसमें प्रवेश मिलना भी कठिन हो गया, शिक्षक शिक्षा के उच्च्व स्तर होने के कारण विद्यार्थी को कठिन परिश्रम तो करना ही पड़ता था किन्तु उससे वह परिपक्व अध्यापक बन जाता था। परिणामतः 1918 में बनारस हिन्दू वि0वि0 में बी0टी0 का स्तर भी घट गया था। इसी प्रकार

1923 में अलीगढ़ वि0वि0 में भी बी0टी0 उपाधि का महत्व भी घट गया था। एल0टी0 में सिद्धान्त और प्रायोगिक दोनों स्तरों में प्रथम श्रेणी का आना दुरूह था। हंटर कमीशन (1882) से कोठारी कमीशन (1966) तक जितने भी आयोग और समितियाँ शिक्षक प्रशिक्षण सम्बन्ध ी बने उन सबमें उच्च आदर्शों की चर्चा तो गई पर इस शिक्षण का स्तर निरंतर गिरता ही गया। 1953 में श्रम समिति और 1965–66 में भाटिया समिति ने भी SCERT संस्था खोलने की संस्तुति की थी जिसमें शिक्षक प्रशिक्षण और शिक्षा में शोध का प्राविधान रखा गया था।

इस समितियों में संस्तुत किया गया था कि शिक्षक प्रशिक्षण में कक्षा सं0 100 – 128 तक सीमित तथा शिक्षक विद्यार्थी का अनुपात 1:10 का होना चाहिए। साथ ही शिक्षण के प्रयोगात्मक दृष्टि से कम से कम 60 – 70 पाठ अवश्य एक वर्ष में पढ़ायेंह जाने चाहिए। द्विवर्षी पाठ्यक्रम यह 120 तक हो सकते हैं। कोठारी आयोग ने दो वर्ष के प्रशिक्षण सुझाव के स्थान पर एक वर्ष अव्रधि तक ही यह पाठ्यक्रम संस्तुत किया था। मुदालियर आयोग ने एल0 टी0 को वि0वि0 से सम्बद्ध करने की संस्तुति की थी। प्रयोगात्मक शिक्षण के 200 अंकों में से 50 अंक आन्तरिक सत्र कार्य के होना चाहिए।

अध्यापक शिक्षा के भी अनेक स्तर हैं। पूर्व प्राथमिक, प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च स्तरीय तथा स्नातकोत्तर शिक्षा तथा अनुसंधान के क्षेत्रों में शिक्षण शिक्षा महत्वपूर्ण है। नर्सरी, किंडर गार्डन या कि मान्टेसरी आदि प्रशिक्षण पूर्व प्राथमिक शालाओं के लिए उपयोगी है। उसी प्रकार प्राथमिक कक्षाओं के लिए एल0टी0सी0, जे0टी0सी0, बी0टी0सी0 या कि सी0टी0 जैसे सर्टिफिक/डिप्लोमा पाठ्यक्रम थे। माध्यमिक स्तर पर यह बी0एड0 अथवा एल0 का प्रशिक्षण दिया जाना अनिवार्य था। उच्च शिक्षा स्तर पर वि0वि0 अनुदान आयोग ने 48 वि0वि0 में एकेडैमिक स्टाफ कालेजन (ASC) की स्थापना की है, अनुस्थापन (Orientation) अथवा अभिनयीकरण (Refresher Course) द्वारा भी अध्यापकों का ज्ञान स्तर बढ़ाया गया है। अध्यापक शिक्षा में अनुसंधान कार्य के लिए वि0वि0 में एम0 एड0 पाठ्यक्रम खोले गए हैं। इस क्षेत्र में छब्म्त्ज संस्थान ने भी महत्वपूर्ण योगदान किया है।

अध्यापक के स्तर का भी समाज में विशेष महत्वपूर्ण स्थान है किन्तु अध्यापक को कोई सामाजिक मान्यता प्राप्त नहीं है। 52 प्रतिशत प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षकों का एक सर्वेक्षण में यही उत्तर है कि उन्हें कोई सामाजिक स्वीकृति नहीं मिली है। 700 विद्यालयों, 700 विद्यार्थियों और 700 अभिभावकों में से मात्र 10 प्रतिशत अध्यापकों ने शिक्षण कार्य की

ओर समान दिखाया है। शेष आर्थिक कारणों से ही अध्यापक बने हैं। दूसरी ओर 65 प्रतिशत शिक्षक और 56 प्रतिशत अभिभावक अपने पुत्र – पुत्रियों को अध्यापक नहीं बनाना चाहते। किन्तु यह सत्य है कि अध्यापकों को वेतनमान सुधारने के लिए सभी आयोगों ने संस्तुति की है।

शिक्षा प्रबन्ध एवं प्रशासन से सम्बन्धित

शिक्षा में आमूल चूल परिवर्तन भी क्रियान्विति हेतु एक सशक्त प्रबन्ध व्यवस्था की आवश्यकता है। अन्यथा शिक्षा में परिवर्तन की बात कोरा आदर्श होगी। और यह वैचारिक स्तर तक ही सीमित रह जाएगी। अतः जहाँ पर शिक्षा के उन्नयन हेतु गणित आयोगों में शिक्षा प्रबन्ध पर विचार किया गया है एवं संसतुतियाँ प्रस्तुत की गयी हैं। वहीं पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भी शिक्षा प्रबन्ध पर अपने विचार प्रस्तुत किये गये।

शिक्षा आयोगों की तुलना में राष्ट्रीय शिक्षा नीति में संघटक एवं प्रक्रिया दोनों का ही उल्लेख है। प्राथमिक शिक्षा का सार्वजनीकरण, निरक्षरता का उन्मूलन, शैक्षिक अवसरों की समानता इत्यादि ऐसे विषय हैं। जिनके अनुसार शिक्षा प्रबन्ध का विकेन्द्रकरण आवश्यक होगा। शिक्षा प्रबन्ध के अर्न्तगत राष्ट्रीय शिक्षा नीति में निम्न बिन्दुओं को प्राथमिकता दी है–

1. शिक्षा का दीर्घकालीन नियोजन तथा प्रबन्ध परिप्रेक्ष्य विकसित करते हुये इसे देश की विकासात्मक एवं जन शक्ति सम्बन्धी आवश्यकताओं से समेकित करना।
2. शिक्षा प्रबन्ध का विकेन्द्रीकरण तथा शिक्षण संस्थाओं में स्वायत्ता की भावना का सृजन।
3. शैक्षिक कार्यक्रमों में आम जनता के सहभागित्व पर सर्वाधिक बल देते हुए गैर सरकारी अभिकरणों एवं स्वयं सेवी संस्थाओं का अधिकाधिक सहयोग लेना।
4. शिक्षा के नियोजन एवं प्रबन्ध में महिलाओं को अधिकाधिक शामिल करना।
5. उल्लिखित लक्ष्यों एवं प्रतिमानों के संदर्भ में उत्तरदायित्व के सिन्द्धात की स्थापना।

उपर्युक्त बिन्दुओं से यह स्पष्ट है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने शिक्षा के प्रबन्ध की समुचित व्यवस्था की है। राज्य स्तर पर इस सम्बन्ध में सभी कार्य राज्य शिक्षा परामर्श मण्डल के माध्यम से करेंगी। जो क्षेत्रीय संघटन के रूप में कार्य करेगा। उच्च शिक्षा हेतु राज्य उच्च शिक्षा परिषद की स्थापना की जायेगी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के कार्यक्रमों विशेषता प्राथमिक शिक्षा का सार्वजनीकरण, निरक्षरता उन्मूलन, अनौपचारिक शिक्षा आदि के क्रियान्वयन, मूल्यांकन हेतु राज्य स्तर पर भी प्रशासनिक व्यवस्था को पुर्नगठित कर सुदृढ़ किया जायेगा। जिला स्तर पर हाई सेकेण्डरी तक के सभी शैक्षिक कार्यक्रमों के क्रियान्वयन का दायित्व जिला शिक्षा बोर्ड का होगा। इन्हें शैक्षिक, वित्तीय एवं पर्यवेक्षणीय आदि सभी अधिकार होंगे।

राज्य अपने जिला शिक्षा बोर्डों को वित्त उपलब्ध करायेगा। साथ ही अपने वित्तीय श्रोत विकसित करने का वैधानिक अधिकार भी इन्हें प्रदान करेगा।

तुलनात्मक अध्ययन

इस प्रकार प्रस्तुत शोध अध्याय में शिक्षा के विभिन्न स्तरों के उन्नयन, शिक्षण व्यवस्था, शिक्षा तन्त्र, शिक्षकों की दशा, वेतनमान, शिक्षा का व्यवसायीकरण, ओद्योगिक एवं तकनीकी शिक्षा, स्त्री शिक्षा, समेकित बाल विकास सेवाएं (ICDS) प्रौढ़ शिक्षा, सतत् शिक्षा, सबको शिक्षा, सबको स्वास्थ्य जैसे पेचीदे विषय पर अध्ययन कर शिक्षा आयोगों द्वारा तद्नुरूप विषयों से सम्बन्धित प्रस्तुत संस्तुतियों का राष्ट्रीय शिक्षा नीति से तुलनात्मक विवेचन किया गया है जिससे यह स्पष्ट होता है कि स्वतन्त्रा के पश्चात् देश के राजनेताओं ने शिक्षा के उन्नयन की महती आवश्यकता समझी तद्नुरूप शिक्षाविदों के सहयोग से समय–समय पर 1948 – 49 राधाकृष्ण आयोग, 1952 – 53 मुदालियर आयोग, 1964 – 56 कोठारी आयोग को गठित कर उनकी संस्तुतियाँ चाहीं। इसी क्रम में सुझायी गयी संस्तुतियों को वर्तमान प्रदेशीय अर्थ व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए उन्हें अक्षाशः तो लागू नहीं किया जा सकता परन्तु आवश्यकता एवं समय की मांग के अनुरूप प्रदेशीय अर्थव्यवस्था को ध्यान में रखते हुए लागू किया गया।

तत्पश्चात रिवाइज़्ड कमेटियाँ गठित की जाती रहीं जिससे शिक्षा प्रणाली में सुधार होते रहें। ऐसी ही आवश्यकता 1985 में तत्कालीन भारत सरकार ने महसूस की और 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा कर दीं। इसके पूर्व भी एक राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 में घोषित हुई थी जिसका संशोधन 1986 की नीति में पाया जाता है।

अतः तुलनात्मक विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि शिक्षा प्रबन्ध और प्रशासन की दृष्टि में राष्ट्रीय नीति में विभिन्न बिन्दु सुझाये गये जो वर्तमान समय की मांग हैं। अतः आयोगों के द्वारा प्रतिपादित नीतियाँ भी तत्कालीन आवश्यकतानुसार बनाईं गईं थी । अतः तुलनात्मक विवेचन करने पर एकरूपता प्रतीत होती है।

प्रस्तुत शोध में उत्तर प्रदेश स्तर पर बने विभिन्न अधिनियम जैसे विश्वविद्यालय अधिनियम, माध्यमिक विद्यालय अधिनियम एवं बेसिक शिक्षा अधिनियम का विवेचन इस दृष्टि से किया जा रहा है कि शिक्षा के विभिन्न स्तरों को सुगठित रूप से व्यवस्थित बनाये रखने के लिए गठित अधिनियमों की जानकारी होना आवश्यक हो ताकि शिक्षा में किए गए आमूल–चूल परिवर्तन को प्रशासनिक दृष्टि से सम्पादित किया जा सके।

उत्तर प्रदेश में शिक्षा हेतु बने विभिन्न शिक्षा अधिनियम

शिक्षा की उत्तरोतर वृद्धि एवं शिक्षा के क्षेत्र में गठित आयोगों एवं समितियों द्वारा प्रस्तुत संस्तुतियों को स्थायित्व प्रदान करने हेतु समय–समय पर शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर माध्यमिक, बेसिक एवं उच्च शिक्षा अधिनियमों का गठन उत्तर प्रदेश शासन द्वारा किया गया। हयां इन उच्च शिक्षा अधिनियम का गठन उत्तर प्रदेश शासन द्वारा किया गया । यहां इन अधिनियम की निम्नलिलिख विवेचना प्रस्तुत की जा रही है।

उत्तर प्रदेश में माध्यमिक शिक्षा अधिनियम

उत्तर प्रदेश में माध्यमिक शिक्षा 1921 में शिक्षा परिषद के गठन के पूर्व इलाहाबाद विश्व विद्यालय द्वारा संचालित होती थी। इलाहाबाद विश्व विद्यालय की सीमाओं के अर्न्तगत विश्व विद्यालय और उसके महाविद्यालय तथा उत्तर प्रदेश शिक्षा परिषद का सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में व्याप्त होना इतना बड़ा कार्य था कि अकेले विश्वविद्यालय द्वारा इसका सम्पादन कठिन प्रतीत होने लगा। दूसरी ओर इलाहाबाद विश्व विद्यालय के पूर्व कलकत्ता विश्व विद्यालय द्वारा जो परीक्षाएं माध्यमिक स्तर पर संचालित होती थी वह भी अब भिन्न हो गयीं थीं। अतः यह आवश्यक समझा गया कि इस परीक्षा संचालन का कोई विकल्प तलाश लिया जाय। 1921 में ही आगरा विश्व विद्यालय की स्थापना हुयी और उसका क्षेत्र अपेक्षाकृत उत्तर प्रदेश में सीमित न रहकर सम्पूर्ण उत्तर भारत और नेपाल में व्याप्त हो गया। परिणामतः स्वाभाविक था कि विश्व विद्यालयों में माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र के प्रति सीमा निर्धारण कठिन हो जाता अतएव उत्तर प्रदेश शिक्षा परिषद का गठन किया जाना सार्वजनिक हित में एक अनिवार्य हो गयी।

उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा परिषद का गठन उत्तर प्रदेश इण्टहरमीडिएट एजूकेशन अधिनियम (Intermediate Education Act 1912) जिसे यू0 पी0 अधिनियम संख्या 02 1921

निर्देशित किया गया। इस अधिनियम के अर्न्तगत शिक्षा परिषद का गठन किया जाना माध्यमिक शिक्षा के विकास के लिए एक आवश्यकता थी। इसके पूर्व जो क्षेत्रीय अपीलेट समितियों के द्वारा विद्यालय के विवादों का निर्णय करती थीं, उन्हें भंग कर दिया गया। और उनके स्थान पर उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा परिषद का गठन किया गया। यह भी आवश्यक समझा गया कि इस निर्मित अधिनियम में समुचित उपबन्ध प्राप्त कर लिया है। जो परिनियत निकाय (Statuary Bodies) और इसके अन्तर्गत बनाये गये अधिनियमतियों के समान अधिकार दिये गये।

अधिनियम के उद्देश्य को दखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि हाईस्कूल तथा इण्टर मीडिएट शिक्षा परिषद का गठन इस एक मात्र उद्देश्य से किया गया कि वह हाई स्कूल तथा इण्टरमीडिएट शिक्षा की प्रणाली की देखरेख करें, क्योंकि उसे इलाहाबाद विश्व विद्यालय के क्षेत्राधिकार से अलग कर दिया गया था। इस अधिनियम के अधीन परिषद के निगम निकाय (Orporate Body) की हैसियत प्रदान भी की गयी थी। और ना ही इसको उत्तराधिकार का अधिकार दिया गया, और न ही इसकी कोई सामान्य मुद्रा (Comman Seal) ही रखी गयी। इस माध्यमिक शिक्षा परिषद को केवल स्वशासी संस्था बना दिया गया है और यह परिषद सभी प्रयोजनों के लिए शासन का एक विभाग ही है।

***माध्यमिक शिक्षा परिषद/बोर्ड का गठन* (1921)**

परिषद का एक सभापति होगा। यह सभापति शिक्षा निदेशक को ही माना जाएगा औेर अन्य सदस्य इस प्रकार होंगे–

1. राज्य सरकार द्वारा अनुरक्षित संस्थाओं के नाम जद दो प्रधान सदस्य होंगे, जिन्हें राज्य सरकार मनोनीत करेगी।
2. राज्य सरकार द्वारा नामित दो प्राध्यापक।
3. राज्य सरकार द्वारा नामित उत्तर प्रदेश द्वारा स्थापित विश्व विद्यालयों के अथवा उनके अर्न्तगत सहयुक्त म्हाविद्यालयों के पाँच प्राध्यापक।
4. राज्य सरकार द्वारा नामित एक शिक्षक कृषि विश्व विद्यालय में अथवा उनके अर्न्तगत सम्बद्ध अथवा सहयुक्त किसी महाविद्यालय को कार्यरत एक सदस्य।

5. राज्य सरकार द्वारा नामित एक शिक्षक जो इंजीनियरिंग विषय का शिक्षण कर रहा है और किसी विश्व विद्यालय में अथवा उसमें सम्बद्ध या सहयुक्त महाविद्यालय में कार्यरत है।

6. राज्य सरकार द्वारा नामित किसी चिकित्सा महाविद्यालय का प्रोफेसर।

7. राज्य विधान सभा के सदस्यों द्वारा अपने में ही से निर्वाचित पाँच सदस्य।

8. राज्य विधान परिषद द्वारा अपने में ही में से निर्वाचित तीन सदस्य।

9. राज्य सरकार द्वारा नामित पाँच शिक्षा विद्।

10. स्त्री शिक्षा से सम्बन्धित राज्य सरकार द्वारा नामित तीन विदुषी महिलाएं।

11. उत्तर प्रदेश के तकनीकी शिक्षा निदेशक।

12. राज्य सरकार द्वारा नामित तीन प्रतिनिधि जो उद्योग से सम्बन्धित हैं।

13. राजकीय महिला प्रशिक्षण विद्यालय इलाहाबाद की प्रधानाचार्या पदेन सदस्य के रूप में।

14. State Institute of Science Education इलाहाबाद की निदेशक पदेन सदस्य।

15. राजकीय सेन्ट्रल Pedagoical Institute इलाहाबाद के प्रधानाचार्य।

16. Government Constitute Training College लखनऊ के प्रधानाचार्य पदेन सदस्य।

17. Bearou of Psychology उत्तर प्रदेश इलाहाबाद के निदेशक पदेन सदस्य।

18. केन्द्रीय विद्यालय संगठन नई दिल्ली के आयुक्त पदेन सदस्य।

19. राज्य सरकार द्वारा नामित एक जिला विद्यालय निरीक्षक।

20. राज्य सरकार द्वारा नामित एक बालिका विद्यालयों की एक सम्भागीय निरीक्षिका (RIGS)

21. एस0 सी0 ई0 आर0 टी0 (N.C.E.R.T.) नई दिल्ली का एक प्रतिनिधि जो उसी संस्था से नामित होगा।

22. परिषद के सचिव ही माध्यमिक शिक्षा परिषद के पदेस्य सदस्य भी होंगे।

उपरोक्त के अतिरिक्त अल्प संख्यक वर्गों में से राज्य सरकार पाँच प्रतिनिधि नामित करेगी। उपर्युक्त नामांकन हो जाने के उपरान्त राज्य सरकार यह घोषणा करेगी कि परिषद का गठन सम्पूर्ण कर लिया गया है। यदि किसी सदस्य द्वारा अपनी पद अथवा अधिकारों

का दुरूपयोग किया है जो जनहित के विरूद्ध है उसे परिषद सदस्यता से वंचित कर सकेगी, किन्तु उसके पूर्व राज्य सरकार से अनुमति लेना आवश्यक है।

सदस्यों की अवधि

उपर्युक्त में से पदेन सदस्यों को छोड़कर जारी की जाने वाली अधिसूचना की तारीख से सदस्य अपना पद 3 वर्ष के लिए धारण कर सकेंगे।

परिषद की कार्य शक्तियाँ

1. परिषद हाईस्कूल तथा इण्टरमीडिएट की कक्षाओं के लिए शिक्षा की पाठ्यपुस्तकें अथवा शिक्षा सामग्री को निर्धारित कर सकेगी।
2. परिषद उन व्यक्तियों को प्रमाण पत्र प्रदान करेगी, जिन्होंने किसी मान्य संस्था में पाठ्यक्रम पूरा किया हो, अथवा वे शिक्षक हों अथवा निर्धारित विनियमों के अर्न्तगत परिषद की परीक्षा उत्तीर्ण की हो।
3. परिषद के कार्य–क्षेत्र में हाई स्कूल और इण्टरमीडिएट के पाठ्यक्रम के अध्ययन के उपरान्त परीक्षाओं का संचालन करना।
4. अपनी परीक्षाओं के प्रयोजनों के लिए शैक्षिक विषयों की मान्यता प्रदान करना।
5. अपनी परीक्षाओं में अभ्यर्थियों को प्रवेश देना तथा परीक्षाओं के लिए निश्चित की गयी फीस की माँग करना अथवा प्राप्त करना।
6. मान्यता प्राप्त संस्थाओं की अथवा मान्यता प्राप्त करने का आवेदन प्राप्त करने वाली संस्थाओं के विषय में निदेशक से रिपोर्ट मांगना।
7. अपनी ही संस्था द्वारा मान्य विषयों पर सरकार को राय देना।
8. नये विषयों की उपादेयता और जनहित में उसकी माँग की सूची पर राज्य सरकार को सलाह देना।
9. हाई स्कूल तथा इण्टरमीडिएट की शिक्षा को नियमित करना, उसकी देखरेख करना और परिषद के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ऐसे सभी कार्य करना जो आवश्यक हों।

परिषद के अधिकारी

इस परिषद के निम्न अधिकारी होंगे–

1. सभापति
2. सचिव
3. अन्य ऐसे अधिकारी, जिन्हें विनिमय के द्वारा परिषद का अधिकारी घोषित किया गया हो।

परिषद की समितियाँ

परिषद में निम्न समितियाँ कार्य सम्पादन के लिए नियुक्त की गयी है–

1. पाठ्यक्रम समिति
2. परीक्षा समिति
3. परीक्षा फल समिति
4. मान्यता समिति
5. वित्त समिति

उत्तर प्रदेश हाईस्कूल, इण्टरमीडिएट परिषद का गठन ही उत्तर प्रदेश इण्टरमीडिएट शिक्षा अधिनियम 02,क 1921 का स्वरूप है। जिसके द्वारा उत्तर प्रदेश शिक्षा परिषद एक सरकारी संस्था के रूप में कार्य करती है।

शिक्षा अधिनियम (1921) Intermediate Education Act (1921)

माध्यमिक शिक्षा के हित में वैयक्तिक संस्थाओं के द्वारा जो शिक्षा कार्य समाज में सम्पादित हो रहा था उसमें समाज सेवी संस्थाएं जैसे आर्य समाज, विद्या प्रचारिणी सभा, डी0 ए0 वी0 शिक्षा संस्थान आदि संस्थाएं प्रचार–प्रसार कर रही थी, उन्हें एकाधिकार से युक्त करने के लिए शासन ने.जो नीति निर्धारित की उसके निम्नलिखित कारण थे–

1. व्यक्तिगत प्रबन्ध तन्त्रों की मनमानी से अध्यापकों का शोषण होना।
2. प्रदेश भर में वेतनमानों में एकरूपता न होना, शिक्षक असन्तोष का कारण था।
3. विद्यालयों में पाठ्यक्रमों में न तो एक रूपता थी और ना ही उनमें समाजोत्थान की संगति।

4. विद्यालयों में विद्यार्थियों की फीस में एक रूपता नहीं थी, जिसके कारण समाज में असन्तोष की भावना. व्याप्त थी।
5. इलाहाबाद विश्व विद्यालय से करायी जाने वाली परीक्षाएं समाजोपयोगी नहीं थीं और दूर के विद्यार्थियों के लिए उच्च शिक्षा में प्राप्त करने के लिए कठिनाई उत्पन्न होती थी।
6. इसके अतिरिक्त समाज में धनी वर्ग का प्रमुख और निर्धन वर्ग की उपेक्ष से उत्पन्न विसंगतियाँ शिक्षा के उद्देश्य को पूरा नहीं करती थी। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक हो गया था कि उत्तर प्रदेश राज्य सरकार ऐसा कोई नियमन करें जिससे सामाजिक एक रूपता उत्पन्न हो।
7. उत्तर प्रदेश सरकार अंग्रेजी शासन के द्वारा संचालित थी, और प्रदेश का नामकरण भी यूनाइटेड प्रोवेन्श आगरा व अवध था, जिससे यह प्रतीत होता है कि प्रदेश तीन भागों में विभक्त हो।
8. अंग्रेज शासक केवल अपने ही स्वार्थ की शिक्षा प्रदान करते थे और राज्य सरकार पर उनका प्रभुत्व व नियन्त्रण था, अतः शासकीय स्वेच्छाचारिता निरन्तर प्रभावशाली रहती थी। जिसके लिए एक स्वायत्तशासी निकाय की आवश्यकता अनुभव की गयी।
9. इण्टरमीडिएट शिक्षा अधिनियम 02, 1921 के द्वारा शिक्षा के नियमन में आमूल परिवर्तन किया गया।

इण्टरमीडिएट शिक्षा अधिनियम 02, 1921 के द्वारा उत्तर प्रदेश सरकार ने माध्यमिक शिक्षा परिषद के नाम से एक स्वायत्तशासी संस्था का गठन किया, जिसमें इण्टर मीडिएट शिक्षा अधिनियम का रूप धारण किया। इस अधिनियम के द्वारा परिषद का गठन, उद्देश्य और कार्यक्षेत्र तथा परिषद् के सदस्यों की अवधि निर्धारित की गयी। अधिनियम में अध्यापकों के लिए न्यूनतम अर्हताएं भी बनायी गयी, जिनके आधार पर शिक्षकों का निर्वाचन और उनकी योग्यता के अनुसार उन्हें विभिन्न स्तरों पर नियुक्त किया जाता था। सरकार ने ऐसे तीन स्तर बनाये थे जहाँ पर अध्यापकों का चयन और उनकी नियुक्तियाँ प्रबन्ध आदि करण के द्वारा की जाती थी। पहले वर्ग में उच्च प्राथमिक कक्षाएं छह, सात, आठ थी, जिन्हें 'जूनियर टीचर्स केडर' कहा जाता था। पूर्व माध्यमिक कक्षाओं नौ व दस के लिए प्रशिक्षित स्नातक वेतन निर्धारित था, जबकि माध्यमिक कक्षाओं ग्यारह और बारह के लिए अध्यापकों को

परास्नातक होना ही पर्याप्त समझा गया और तदनुसार उन्हें प्रवक्ता वेतनक्रम में नियुक्ति दी जाती थी।

अध्यापकों के अवकाश के नियम, तत्कालीन शिक्षा संहिता के द्वारा संचालित थे।

संशोधित शिक्षा अधिनियम (1958)

वैयक्तिक प्रबन्ध तन्त्रों की स्वेच्छाचारिता के कारण और पाठ्यक्रम, फीस, अध्यापिका का वेतन क्रम आदि की विसंगतियों से उत्पन्न असन्तोष में इस बात के लिए अध्यापकों को ही विवश किया कि वे 1921 के अधिनियम में वांछित परिवर्तन करें। अन्य विषयों की तुलना में अध्यापकों का सीधा सम्बन्ध विनिमय की धारा 16 से था, जिसमें अध्यापकों की नियुक्ति की जाती थी। तब अध्यापकों की नियुक्ति न तो स्थायी थी और न ही उनका वेतनमान निश्चित होते हुए भी उन्हें नहीं दिया जाता था। बढ़ती हुयी शिक्षा की दर और समाज की चेतना में स्वतन्त्र भारत की सरकार को एक चुनौती दी, जिससे विवश होकर प्रदेशीय सरकार को अपने अधिनियम में संशोधन करना पड़ा।

अ) बोर्ड का अधिकार क्षेत्र

शिक्षा संवर्ती सूची का विषय है। अतः भारत शासन की नीतियों के अनुरूप प्रदेशीय शासन की शिक्षा में नियमन करने के लिए विवश था। भारत सरकार के माध्यमिक शिक्षा आयोग वर्ष 1952–53 में शिक्षा के सम्बन्ध में जो सुझाव दिये उनमें शिक्षक की दुरावस्था और वेतनमान का भी प्रस्तुत किया गया था अतः 1921 के अधिनियम में संशोधन होना नितान्त वांछनीय था।

ब) प्रशासन योजना

अधिनियम की धारा 16 (ए) के अनुसार एक प्रशासन योजना भी प्रस्तुत की गयी, जिसके अर्न्तगत प्रबन्ध आदि कारण के अधिकार सीमित कर दिये गये। उनका निर्वाचन एक निश्चित प्रणाली के द्वारा नियन्त्रित किया गया। जनसाधारण की दृष्टि से शिक्षा प्रेमी व्यक्तियों को प्रबन्ध आदि करण के सदस्य बनने के भी नियम उल्लिखित किये गये। इसी के अर्न्तगत प्रबन्ध समिति, समिति के अध्यक्ष, प्रबन्धक और कोषाध्यक्ष के लिए अधिकार निश्चित किये गये। जिनसे प्रदेश के सभी विद्यालयों में एक रूपता निश्चित हुयी।

अध्यापकों की सेवा शर्तों का संशोधन करते हुये अधिनियम की धारा 16 (ख) के अनुसार अध्यापकों की योग्यता के अनुसार अंकों के आधार पर उनकी नियुक्ति सुनिश्चित

की गयी, जिसमें जिला विद्यालय निरीक्षक (D.I.O.) का अनुमोदन अनिवार्य किया गया। इस धारा के अन्तर्गत सौ (100) उप नियम बनाये गये जिनके द्वारा विद्यालय प्रबन्ध और शिक्षण का नियन्त्रण किया गया है।

'पाठ्यक्रम समिति' पाठ्यक्रम के विषयों का निर्धारण करती है। और उन्हें वर्गीकृत कर विद्यालय में अध्ययन, अध्ययन का निर्देश देती है। 'परीक्षा समिति' के द्वारा पाठ्यक्रमों के अनुसार विद्यार्थियों का परीक्षण किया जाता है। और 'परीक्षाफल समिति' उनके परीक्षा परिणामों को घोषित कर उन्हें उच्च शिक्षा के लिए अर्ह बनाती है। इस प्रकार परिषद का कार्य क्षेत्र 1958 के संशोधन से व्यापक होने के साथ–साथ संयमित भी हो गया है। परिषद के कार्यक्षेत्र में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ।

स) शिक्षा आयोग का गठन एवं अधिनियम

अध्यापकों की नियुक्ति के लिए उत्तर प्रदेश सरकार ने एक आयोग गठित किया है। जिसकी संरचना वर्ष 1982 में हुयी थी। इस आयोग को उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 05, 1982 द्वारा स्थापित किया गया। यह अधिनियम 1981 के अधिनियम मान्यता प्राप्त संस्थाओं के प्राध्यापकों के चयन के लिए ''माध्यमिक शिक्षा सेवा आयोग'' के नाम से स्थापित किया गया।

अध्याय 01 में बोर्ड के विभिन्न पदों अथवा सम्बोधनों की परिभाषाएं उल्लिखित हैं।

अध्याय 02 में राज्ब सरकार द्वारा अधिसूचना जारी करने की तिथि से यह आयोग माध्यमिक शिक्षा सेवा आयोग से सम्बोधित होगा, और यह एक नियमित निकाय समझा जाएगा। इस आयोग में न्यायिक सेवा का उत्कृष्ट स्तर का जो अधिकारी रहा हो और दो ऐसे व्यक्ति होंगे जो राज्य शिक्षा सेवा में उत्कृष्ट स्तर के हों अथवा रहे हों तथा विश्व विद्यालय के आचार्य के पद पर कार्यरत एक व्यक्ति और महाविद्यालय के कम से कम तीन वर्ष की सेवा के प्राचार्य तथा 1921 के अन्र्तगत पन्द्रह वर्ष का अनुभव प्राप्त एक प्राचार्य सदस्य होगा।

सदस्यों की पदावधि

आयोग के सदस्यों की पदावधि छः वर्ष होगी, जो निरन्तर दो अवधि से अधिक के लिए योग्य नहीं होंगे

सदस्यों की आयु

आयोग के सदस्यों की आयु सीमा 62 वर्ष होगी।

समय–समय पर इस आयोग की परिनियमावली को शासकीय गजट संख्या 2866 / 15–10–81–15 (85)–79, 10 जून 1981 को परिनियमावली को घोषित किया गया। वर्ष 1983 में इसकी प्रक्रिया और कार्य संचालन की नियमावली निर्धारित की गयी। तदुपरान्त वर्ष 1983 में ही संशोधित नियमावली निर्गत की गयी। इस प्रकार आयोग की नियमावलियों में निरन्तर संशोधन होता रहा है। 1985 में प्रशासनिक दृष्टि से दण्ड प्रक्रिया की नियमावली की अवधारण की गयी।

उत्तर प्रदेश /बेसिक शिक्षा अधिनियम 1972

उत्तर प्रदेश में बेसिक शिक्षा अधिनियम 1972 में पारित हुआ। इसके उद्देश्य में यह उल्लिखित किया गया था कि प्रारम्भिक शिक्षा की वर्तमान व्यवस्था न तो पर्याप्त है और न ही कौशलपूर्ण अतः इसके पुर्नगठन और एक बेसिक शिक्षा परिषद की नितान्त आवश्यकता अनुभव की गई है जिसे स्थानीय सलाहकार समिति का समय–समय पर उचित परामर्श देंगी ताकि बेसिक विद्यालयों, नार्मल स्कूलों और अन्य प्रशिक्षण विद्यालयों में सुव्यवस्था तथा अच्छा प्रशासन हो सके। 1972 के इस अधिनियम को 1975 के अधिनियम के बाद में आवश्यकतानुसार संशोधित भी किया गया है।

आयोग का गठन

1972 *का अधिनियम*

उत्तर प्रदेश में बेसिक शिक्षा के समुचित कौशल पूर्ण निर्वाह के लिए उत्तर प्रदेश अधि ानियम सं. 34 सन् 1972 द्वारा विधि सम्मत् अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम की धारा 3 द्वारा एक वैदिक शिक्षा परिषद का गठन किया गया जिसमें निम्नलिखित सदस्यों का प्राविधान किया गयाः–

1. शिक्षा निदेशक – पदेन अध्यक्ष।
2. दो सदस्य जिला परिषदों के अध्यक्षों में से मनोनीत।
3. एक सदस्य महापालिकाओं के नगर प्रमुखों में से मनोनीत।

4. एक सदस्य नगर पालिका अध्यक्षों में से मनोनीत।

5. सचिव, राज्य सरकार वित्त विभाग – पदेन।

6. प्रधानाचार्य, राज्य शिक्षा संस्थान – पदेन ।

7. हाई स्कूल इण्टरमीडिएट बोर्ड, इलाहाबाद के सचिव – पदेन।

8. उत्तर प्रदेश प्राथमिक शिक्षा संघ के अध्यक्ष – पदेन।

9. दो शिक्षाविद् राज्य सरकार द्वारा मनोनीत।

10. शिक्षा उप निदेशक या उसके समतुल्य अधिकारी – सचिव सदरय राज्य सरकार द्वारा मनोनीत।

इस प्रकार उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद में बारह सदस्य होंगे। सदस्यों को अधिकार होगा कि वे अपने स्थान पर प्रतिनियुक्ति भी कर सकते हैं किन्तु ऐसी प्रति नियुक्ति उप – सचिव के पद से न्यून नहीं होगी।

***अनुच्छेद* – 10**

उत्तर प्रदेश में बेसिक शिक्षा उन्नयन के लिए जिला बेसिक शिक्षा समितियाँ (दस सदस्यों की) होंगी जिसमें जिला परिषद के अध्यक्ष होंगे और जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी पदेन सचिव के रूप में कार्य करेंगे।

***अनुच्छेद* – 10 (क)**

प्रत्येक नगर, नगर पालिका, नोरीफाइड एरिया, टाउन एरिया के लिए एक–एक बेसिक शिक्षा समिति स्थापित की जाएगी।

***अनुच्छेद* – 11**

उपर्युक्त के अनुसार ही प्रत्येक गांव या गांव समूह के लिए गांव सभा स्तर पर एक गांव शिक्षा समिति स्थापित की जाएगी जिसमें प्रधान अध्यक्ष तथा मुख्य और ज्येठतम अध यापक सचिव होगा और इनके अतिरिक्त तीन अभिभावक सदस्य होंगे।

उपर्युक्त अधिनियमं सं0 34 को 20 मई 1975 को अधिसूचना जारी कर संशोधित किया गया। जिसमें अध्यापकों की भर्ती और सेवा सम्बन्धी नियमन किया गया।

उक्त संशोधित नियमन से अध्यापक के लिए नियुक्ति के पूर्व जिला बेसिक शिक्षा अधि ाकारी का अनुमोदन प्राप्त करना आवश्यक था (धारा 9) किन्तु माननीय उच्च न्यायालय ने

इसे सुसंगत नहीं माना किन्तु किसी अध्यापक की सेवा समाप्ति के लिए जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी का पूर्वानुमोदन अनिवार्य समझा गया।

पुनः उत्तर प्रदेश मान्यता प्राप्त बेसिक स्कूल (जूनियर हाई स्कूल) अध्यापकों की नियुक्ति और सेवा नियमन सम्बन्धी नियमावली सन् 1978 में पारित की। जिसमें नियुक्ति हेतु–

1. प्रबन्ध समिति के किसी सम्बन्धी (तेरह सम्बन्धों का उल्लेख) की नियुक्ति न किया जाना।
2. नियुक्ति के लिए चयन समिति को निर्दिष्ट करना।
3. चयन प्रक्रिया
4. सेवा मुक्ति/पदावनति/पदच्युति या सेवा से प्रथक किये जाने हेतु जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी का लिखित पूर्वानुमोदन आवश्यक बनाया गया। इसी परिनियमावली के अनुच्छेद 20 द्वारा निर्दिष्ट किया गया कि प्रबन्धाधिकरण छः माह से अधिक अवधि के लिए अर्ह व्यक्ति को प्रधान/सहायक अध्यापक पद पर नियुक्त कर सकती है। (किन्तु लिपिक अथवा चतुर्थ वर्गीय कर्मचारी इस उपबन्ध से मुक्त रहेंगे।)

उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा भविष्य विधि नियमावली 1975 (अधिसूचना से 3523/XV (5) 334 – 73 दिनांक जुलाई 19, 1975 द्वारा साधारण गजट में प्रकाशित) द्वारा 10 प्रतिशत की सीमा तक भविष्य निधि में अभिदान किया जा सकेगा। इसके लिए प्रपत्र 1, 2 व 3 द्वारा सम्पूर्ण अभिलेखों को क्रमशः नियम 6, 13 व 16 के अर्न्तगत रखने का प्राविधान है।

अधिनियम की उपलब्धि

बेसिक शिक्षा परिषद की स्थापना 25 जुलाई 1972 में निदेशक बेसिक शिक्षा की अध यक्षता में गठित की गई। सन् 1975 में हाई स्कूल इण्टरमीडिएट बोर्ड के सचिव को भी पदेन सदस्य के रूप में सम्मिलित किया गया। बेसिक शिक्षा को आठवीं कक्षा तक के शिक्षा के रूप में निर्दिष्ट किया गया।

ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि में सन् 1840 में बंगाल सरकार द्वारा पश्चिमोत्तर प्रान्त को (उत्तर प्रदेश का पूर्वनाम) शिक्षा के स्थानान्तरित किया गया था। सन् 1910 में मार्ले–मिन्टो सुधारों के अर्न्तगत शिक्षा को गृह विभाग से निका कर स्वतन्त्र शिक्षा विभाग बनाया गया।

1937 में खरे समिति की संस्तुतियों में स्थानीय परामर्श समितियों को शिक्षा के अनयन हेतु देखा गया।

विश्व विद्यालय अधिनियम (1973)

उत्तर प्रदेश में दीर्घकाल से लम्बित विश्वविद्यालय अधिनियम अन्ततः 1973 पारित किया गया। यह अधिनियम राष्ट्रीय अधिनियम 10 सन् 1973 कहलाया। उक्त अधिनियम में यह छूट दी गई थी कि जिस दिन से इस अधिनियम को सरकारी राजपत्र में प्रकाश किया जाएगा उसी तिथि से यह लागू होगा। इस अधिनियम में यह विशेष प्राविधान किया गया कि वाराणसीय संस्कृत विश्व विद्यालय का नाम इस अधिनियम के लागू होते है, उत्तर प्रदेश के पूर्व शिक्ष मंत्री डा0 सम्पूर्णानन्द के नाम पर "सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय होगा। इस अधिनियम द्वारा राज्य सरकार ने अपने दायित्व से निम्न विश्व विद्यालयों की स्थापना की।

झांसी में – बुन्देलखण्ड विश्व विद्यालय

फैजाबाद – अवध विश्व विद्यालय

बरेली में – रूहेलखण्ड विश्व विद्यालय

की स्थापना की है। 18 जून 1994 में अवध विश्वविद्यालय का नाम परिवर्तित कर द्वितीय संशोधन द्वारा डा0 राम मनोहर लोहिया अवध विश्व विद्यालय फैजाबाद कर दिया गया। इसी प्रकार वाराणसी स्थित काशी विद्यापीठ व महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ कहा गया और इसे विश्व विद्यालय का भी स्तर प्रदान किया गया। विश्व विद्यालय स्तर प्राप्त होने के साथ ही काशी विद्यापीठ का प्रबन्ध तंत्र स्वतः समाप्त हो गया इस अधिनियम द्वारा उत्तर प्रदेश सरकार अपने दोनों सदनों के संकल्प से किसी भी विश्व विद्यालय का अधिकार क्षेत्र बढ़ा सकेगी या कि उसके नाम परिवर्तन, परिवर्धन के लिए भी अधिक होगी। 28 मई 1972 के संकल्प द्वारा राज्य सरकार ने काशी विद्यापीठ की सम्पति चल और अचल समाधि का भी अधिग्रहण करने के लिए स्वतंत्र हो गयी।

उ0प्र0 राज्य विश्व विद्यालय अधिनियम द्वारा 1951 में स्थापित उ0प्र0 होम्योपैथिक मेडीसिन (बोर्ड) अधिनियम के अर्न्तगत प्रस्तावित/निर्धारित पाठ्यक्रम की परीक्षा लेने तथा डिप्लोमा प्रदान करने के लिए आगरा तथा कानपुर विश्वविद्यालयों को प्राधिकृत किया गया।

इस संशोधन को अधिनियम से 14 सन् 1977 द्वारा मान्यता दी गई। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय को यह अधिकार भी दिया गया कि वह भारत के किसी भी महाविद्यालय को अथवा संस्थाओं को सम्बद्ध कर सकेगा एवं राज्य क्षेत्र अथवा विदेश के अध्यापकों को मान्यता प्रदान कर सकेगा।

अंग्रेजी शासनकाल में उत्तर प्रदेश में मात्र तीन विश्वविद्यालय राज्य में थे, इनके नाम हैं इलाहाबाद वि0वि0 लखनऊ वि0वि0 और आगर वि0वि0 इनके अतिरिक्त बनारस तथा अलीगढ़ में स्थापित वि0वि0 केन्द्र सरकार द्वारा शासित थे। आगरा विश्वविद्यालय से अनेक महाविद्यालय सम्बद्ध थे जो न केवल उत्तर प्रदेश के थे अपितु मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, हरियाणा तथा नेपाल तक इस वि0वि0 का परिक्षेत्र या सीमा बनाते थे। 1965 में कानपुर तथा मेरठ वि0वि0 स्थापित किए गए जिनमें आगरा वि0वि0 के अधिकांश महाविद्यालयों को सम्बद्ध किया गया। विश्वविद्यालय अधिनियम के बनने के तुरन्त बाद बुन्देलखण्ड वि0वि0 झांसी, अवध वि0वि0 फैजाबाद और रूहेलखण्ड वि0वि0 बरेली उ0प्र0 राज्य सरकार ने अपने दायित्व से स्थापित किये। उ0प्र0 में कानपुर विश्वविद्यालय को यह अधिकार दिया गया कि उ0प्र0 राज्य में समस्त आयुर्वेदिक एवं यूनानी चिकित्सा प्रदान करने वाले महाविद्यालय को सम्बद्ध करें तथा उनके छात्रों विद्यार्थियों की शिक्षा एवं परीक्षा की व्यवस्था करें। साथ ही आगरा वि0वि0 तथा कानपुर वि0वि0 से होम्योपैथिक चिकित्सा की शिक्षण समस्याएं शिक्षण एवं परीक्षा के लिए सम्बद्ध की गई।

वर्तमान में उ0प्र0 में निम्नलिखित वि0वि0 राज्य वि0वि0 अधिनियम 1973 के अर्न्तगत कार्यरत हैं और उनका परिसीमन भी निर्दिष्ट है–

विश्वविद्यालय का नाम	*परिक्षेत्र / परिसीमन*
1. लखनऊ वि0वि0	दीक्षान्त भवन से 16 किलोमीटर के अर्धव्यास से निर्मित परिधि के अर्न्तगत परिक्षेत्र।
2. इलाहाबाद वि0वि0	दीक्षान्त भवन से 16 किमी0 के अर्धव्यास की परिधि के अर्न्तगत परिक्षेत्र।
3. आगरा वि0वि0 (रूहेलखण्ड वि0वि0 बनने क उपरान्त)	आगरा, अलीगढ़, एटा, मैनपुरी और मथुरा जनपदों का परिक्षेत्र।

4. गोरखपुर वि0वि0 (पूर्वांचल विवि0 बनने के उपरान्त)	बरेली, दवरिया और गोरखपुर के जनपदों का परिक्षेत्र।
5. कानपुर वि0वि0	इलाहाबाद, इटावा, फरूखाबाद, फतेहपुर हरदोई, कानपुर, लखीमपुर–खीरी, लखनऊ, रायबरेली, सीतापुर, उन्नाव के जनपदों का परिक्षेत्र (किन्तु इलाहाबाद और लखनऊ वि0वि0 के परिसीमन को छोड़कर)
6. मेरठ वि0वि0	मेरठ, बुलन्दशहर, मुजफ्फरनगर तथा सहारनपुर के जनपदों का परिक्षेत्र।
7. कुमायू वि0वि0	अलमोड़ा, नैनीताल और पिथौरागढ़ के जनपदों का परिक्षेत्र।
8. गढ़वाल वि0वि0	चमोली, देहरादून, गढ़वाल, टेहरी–गढ़वाल और उत्तर काशी के जनपदों का परिक्षेत्र।
9. बुन्देलखण्ड वि0वि0	झांसी बांदा, हमीरपुर, झांसी, ललितपुर, जालौन और महोबा जनपदों का परिक्षेत्र।
10. अवध वि0वि0	फैजाबाद – बहराइच, बिजनौर, मुरादाबाद, पीलीभीत रामपुर और शाहजहाँपुर जनपदों का परिक्षेत्र।
11. रूहेलखण्ड वि0वि0	बरेली – बदायूँ, बरेली, बिजनौर, मुरादाबाद, पीलीभीत, रामपुर और शाहजहाँपुर जनपदों का परिक्षेत्र।
12. पूर्वांचल वि0वि0	जौनपुर – आजमगढ़, बलिया, गाजीपुर, जौनपुर, वाराणसी और मिरजापुर जनपदों का परिक्षेत्र।

उत्तर प्रदेश विश्वविद्यालय अधिनियम 1973 के लागू होने से प्रदेश के वि0वि0 के स्थापना सम्बन्धी पूर्व अधिनियम स्वतः निरस्त हो गए हैं। ये निम्नवत् सूची बद्ध है–

अधिनियम	वर्ष
लखनऊ वि0वि0 अधिनियम	1920
इलाहाबाद वि0वि0 अधिनियम	1921
आगरा वि0वि0 अधिनियम	1926
गोरखपुर वि0वि0 अधिनियम	1956
वाराणसी संस्कृत वि0वि0 अधिनियम	1956
कानपुर वि0वि0 अधिनियम	1965

अब इन विश्वविद्यालयों का नियमन प्रबन्धन और प्रशासन उ0प्र0 वि0वि0 अधिनियम 1973 के अर्न्तगत तदनुसार बनी परिनियमावली द्वारा होगा।

उत्तर प्रदेश विश्वविद्यालय अधिनियम 1973 द्वारा अध्यापकों की नियुक्ति और सेवा–शर्तों को भी निर्दिष्ट किया गया जिसमें अध्यापकों की सेवा–सुरक्षा और उनके व्यापक हितों की चिन्ता की गई। अध्यापकों की नियुक्ति के लिए एक चयन समिति का गठन किया गया, जिसमें कुलपति द्वारा नामित दो विषय विशेषज्ञों में से एक की अनिवार्यता, आवश्यक था। इस विधि में अध्यापक के वैयक्तिक पदोन्नति का भी प्राविधान रखा गया।

प्रायः देखा गया था कि अधिकांश महाविद्यालयों के अध्यापकों को उनका वेतन समय पर नहीं मिलता था और कई महीनों तक उनको वेतन न दिए जाने से असन्तोष होना स्वाभाविक भी था। इस अधिनियम से अध्यापकों के धारा 60 अ के अर्न्तगत उनका वेतन सुनिश्चित किया जिसका भुगतान अगले माह की 20 तारीख तक अवश्य किए जाने की बाध्यता बनाई गई एवं यह भी सुनिश्चित किया गया कि अध्यापकों तथा कर्मचारियों का वेतन आगामी माह के बीसवें दिन तक बैठक द्वारा भुगतान किया जाए। 31.3.75 के उपरान्त यह सरकार का दायित्व होगा कि अध्यापकों को वेतन नियमित तौर पर दिया जाय।

अध्यापकों की नियुक्तियों को लेकर भी प्रशासन के समक्ष प्रबन्ध समितियों द्वारा की जा रही मनामानियों और भाई भतीजावाद को लेकर निरन्तर समस्यायें बढ़ रहीं थीं। इसके निराकरण हेतु उत्तर प्रदेश सरकार ने अपनी अधिसूचना संख्या 5004/गअ–10–82–15 (95)/82 दिनांक लखनऊ अक्टूबर 23, 1982 द्वारा एक उच्च शिक्षा आयोग की स्थापना की

जिसका उद्‌देश्य अध्यापकों का चयन कर प्रदेश के वि0वि0 से सम्बद्ध महाविद्यालय में उनकी नियुक्ति करना था। इस आयोग द्वारा चयनित अध्यापक सन्दर्भ महाविद्यालय में नियुक्ति एक अनिवार्यता थी।

विश्व विद्यालय अधिनियम 1973 भारत सरकार के अर्न्तगत राष्ट्रपति अधिनियम संख्या 10, 1973 के नाम से भी अभिलेखों मे उल्लिखित है। विश्व विद्यालय अधिनियम में विशेष रूप से शिक्षकों की सेवा सुरक्षा का वर्णन किया गया है। वस्तुतः इस अधिनियम के अर्न्तगत बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी में, अवध विश्वविद्यालय फैजाबाद में, रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय बरेली में स्थापित किये गये। विश्वविद्यालय के अधिकारियों में प्रदेश के राज्यपाल, कुलाधिपति और प्रत्येक विश्वविद्यालय में कुलपति तथा अधिनियम की धारा 14 के अर्न्तगत कुलपति द्वारा नामित प्रति कुलपति, वित्त अधिकारी, कुल सचिव, संकायों के संकायाध्यक्ष, छात्र कल्याण के संकाय अध्यक्ष, कार्यपरिषद के सदस्य और ऐसे अन्य अधिकारी जो परिनियमावली के अर्न्तगत अधिकारी के रूप में घोषित किये जाऐगे। कुलपति का कार्यकाल पद ग्रहण करने की तिथि से तीन वर्ष की अवधि पर्यन्त तक रहेगा।

शिक्षकों की सेवा सुरक्षा

इस अधिनियम बनने के पूर्व तक कानपुर, मेरठ और आगरा विश्वविद्यालय ही इन परिक्षेत्रों का नियन्त्रण करते थे। किन्तु अब नये विश्वविद्यालय ही इन परिक्षेत्रों का नियन्त्रण करते थे। किन्तु अब नये विश्वविद्यालय बन जाने से क्षेत्र सीमित हो गये हैं और अध्यापकों को अपने क्षेत्रों में सेवा सुरक्षा का अधिकार प्राप्त हो गया है। तथा कम समय और कम दूरी में वे विश्व विद्यालय अधिकारियों के साथ सम्पर्क कर सकते हैं।

अध्यापकों की नियुक्ति प्रबन्ध समूह द्वारा एक चयन समिति की सिफारिश पर किये जाने का प्राविधान है। (विश्वविद्यालय आयोग अधिनियम के अर्न्तगत अब यह नियुक्तियाँ सीधे आयोग द्वारा की जाती हैं।)

शिक्षकों को धारा 31 (क) के अर्न्तगत शिक्षकों को समयबद्ध प्रोन्नति का प्राविधान भी किया गया है। जिससे शिक्षक को अपनी उन्नति के लिए सतत् उत्तमता का प्रमाण देना होता है। ऐसे प्रोन्नत शिक्षकों के लिए शासन में एक चयन समिति का भी निर्धारण किया है। और उस समिति की संस्तुति पर अध्यापक को चयन वेतनमान अथवा रीडर अथवा उपाचार्य के रूप में प्रोन्नति प्राप्त हो सकती है।

अभी तक प्रबन्धादिकरण अपने अधीनस्थ अध्यापकों को सेवानिवृत्ति करने का भी अधि
ाकार रखते थे, किन्तु अब अधिनियम के बनने से अध्यापकों की सेवा सुरक्षित समझी जा सकती है, क्योंकि सेवा निवृत्ति के पूर्व कुलपति का अनुमोदन आवश्यक है। अध्यापकों को जहाँ प्रबन्ध समिति द्वारा वेतन वितरण की असुविधाएं थीं उच्च शिक्षा अधिकारी से प्रति हस्ताक्षरित करके सुनिश्चित कर दिया गय है। इस प्रकार अध्यापकों की सेवाएं सहज ही समाप्त नहीं की जा सकती।

अधिनियम बनने के पूर्व अध्यापकों को प्रबन्धतन्त्र के साथ एक संविदा (Contact) करना पड़ता था। जिसकी शर्तें प्रबन्ध तन्त्र किसी न किसी प्रकार अपने पक्ष में कर शिक्षक की सेवाएं समाप्त कर देता था। अधिनियम बन जाने से शिक्षक की सेवाओं को सहज समाप्त नहीं किया जा सकता जब तक कि उनके ऊपर कोई गम्भीर आरोप न हो अथवा वे किसी वित्तीय अनियमितता में लिप्त न हो। नैतिक आचरण के कारण भी उन्हें सेवा मुक्त किया जा सकता है। अधिनियम के अर्न्तगत उनके विरूद्ध आरोपों का अनुमोदन कुलपति से लेना अनिवार्य है। विश्व विद्यालय के अध्यापकों की प्रोन्नति अथवा अनुमोदन के समय कार्य परिषद से सहमति लेना अनिवार्य है।

उत्तर प्रदेश सरकार ने नये विश्व विद्यालयों के आर्थिक स्तर सुधारने और अध्यापकों के वेतन भुगतान के लिए पाँच वर्षीय अवधि तक का पूर्ण दायित्व लिया था, जिससे अध्यापक आर्थिक रूप से भी स्वतन्त्र था।

सरकार ने अध्यापकों की योग्यताओं में पी0 एच0 डी0 की शर्त अनिवार्य रखी थी, किन्तु यदि अध्यापक पाँच वर्ष की अवधि में पी0 एच0 डी0 हो जाता है तो उसकी नियुक्ति के समय मूल अर्हताओं में शिथिलता बर्ती जा सकती है। बशर्त उसकी पूर्व की उपाधियाँ 55 प्रतिशत से अधिक हों।

समयबद्ध उन्नति और विकास की दिशाएं

अध्यापकों की प्रारम्भिक नियुक्ति प्रवक्ता के पद पर होती है और आठ वर्ष की सतत् सेवा के उपरान्त अच्छे परीक्षा परिणामों को दृष्टि में रखकर चयन वेतनमान में संस्तुति की जाती है। तथा पाँच वर्ष के उपरान्त उसे रीडर के वेतनमान में प्रोन्नत किया जाता है। विश्व विद्यालय से सम्बद्ध महाविद्यालय में रीडर के ऊपर कोई पद नहीं है जबकि विश्व विद्यालय

स्तर पर रीडर से प्रोफेसर बनने की सम्भावनाएं सतत् बनी रहती हैं। प्रतिबन्ध यह है कि एक विभाग में एक ही प्रोफेसर होगा। किन्तु रीडर एक से अधिक भी हो सकते हैं। इस प्रकार अध्यापक को अपनी उन्नति और विकास की दिशाएं जब स्पष्ट हो जाती है। तब अपने विकास के लिए वह अध्ययन–अध्यापन में भी विशेष रूचि रखता है। अध्यापक के विकास के साथ विद्यालय की भी प्रतिष्ठा बढ़ती है।

आयोग का गठन एवं विकास की दिशाएँ

इस आयोग का कार्यारम्भ 1 नवम्बर 1982 से हे गया था। अतः आयोग का गठन इस प्रकार है–

1. अध्यक्ष डा0 एस0 एन0 शिनवाल।
2. सदस्य श्री एस0 एन0 पाण्डेय।
3. सदस्य श्री आर0 पी0 पाण्डेय।
4. सदस्य श्री सोहन लाल घूसिया।
5. सदस्य श्री आर0 पी0 चौहान।

इस प्रकार अध्यक्ष सहित कुल पाँच सदस्यों से इस आयोग का गठन किया गया था। इस पाँच सदस्यीय समिति का कार्यकाल दो वर्ष था। इस आयोग का स्पष्ट निर्देश था कि केवल आयोग द्वारा चयनित व्यक्ति को ही महाविद्यालय की प्रबन्ध समिति नियुक्त कर सकेगी।

आयोग के गठन से विश्वविद्यालय शिक्षा में जो परिवर्तन हुये उनसे यह आशा की जाती रही कि अच्छे शिक्षक नियुक्त होगें और उनमें अध्यापन करने की वह क्षमता होगी, क्योंकि वे आर्थिक रूप से अब पीड़ित नहीं होगें। आयोग ने अध्यापकों के चयन में किंचित कठोरता बरती है ताकि उचित विद्वान अध्यापक ही उच्च शिक्षा में प्रविष्ट हों। उच्च शिक्षा के अयोग व्यापक हैं जो न केवल राष्ट्रीय विकास की दृष्टि से अपितु अर्न्तराष्ट्रीय क्षेत्रों में भी कार्य करने में सक्षम हैं।

वर्तमान युग में भूगोल से खगोल तक की यात्रा केवल इस बात पर निर्भर है कि वैज्ञानिक सूक्ष्मतम गणना से विभिन्न ग्रह पिण्डों तक जाकर उनका अध्ययन कर सकें। अमेरिका के नासा क्षेत्र सुविख्यात हैं। और भारत में तमिलनाडू और केरल में ऐसे क्षेत्र चुने गये हैं। जहाँ से उपग्रह प्रक्षेपण सरल है। भारत वर्ष में स्वयं विकसित की गयी प्रक्षेपव प्रणालियों से अब अन्तरिक्ष में जाया जा सकता है। भारत में भी युवा युवतियाँ इस अन्तरिक्ष

यात्रा में यूरी गागरिन के साथ अपना नाम लिखा सकती हैं। कम्प्यूटर प्रणाली में कुछ ऐसे यन्त्रों का अविष्कार किया गया है जिनसे कठिन से कठिन कार्य सरल हो गये हैं। आज की स्थिति में उपग्रह में संचार प्रणालियाँ संचालित होती हैं। जो थोड़े समय में दूरस्थ क्षेत्रों में पहुंचकर संदेश प्रेषण व ग्रहण कर सकती हैं।

बम्बई और मद्रास के क्षेत्रों से चौड़ी पट्टी वाली समुद्री टेलीफोन लाइन दुबई तक कुछ ही छड़ों में संदेश प्रेषित करती है संचार माध्यमों ने भारत वर्ष का विकास विश्व में तीसरे स्थान पर है संचार माध्यमों में भारत वर्ष ने जो सम्भावनाएं खोजी हैं वे विश्व में आश्चर्य का विषय बनी हुयी है। अन्तरिक्ष उपग्रह और सम्बन्धित सेवाओं में विश्वविद्यालयों में ही इस शिक्षा का विकास हो सका है।

विश्व विद्यालय आयोग ने विज्ञान और तकनीकी संस्थान खोलने की योजना भी प्रस्तावित की है यद्यपि शासन के पास इतना वित्त माध्यम नहीं है तथापि स्ववित्त पोषी विषय खोलकर विश्वविद्यालय ने उन सम्भावनाओं को भी प्रस्तुत किया है जहाँ विद्यार्थी अपने श्रम और वित्त से अध्ययन करके नये अविष्कार कर सकते हैं। कतिपय औद्योगिक संस्थान अपने प्रशिक्षण विद्यालय खोलकर शोधार्थियों को वह सुविधा प्रदान करते हैं कि वे उनक उद्योग से सम्बन्धित अविष्कार कर नयी सम्भावनाओं का पता लगाएं। टाटा–बिरला, ओबराय आदि ऐसे उद्योगपति हैं जिन्होंने वैज्ञानिक ढंग से अपना विकास किया। यही कारण है कि विश्व विद्यालयों में उन विषयों का अधिक ध्यान रखा जा रहा है जो आप विश्व की आवश्यकता की पूर्ति करते हैं।

विश्व विद्यालय आयोग द्वारा शिक्षक की वित्तीय समस्याएं लगभग समाप्त हो गयी हैं। और हमारे बीच ऐसा भी उदाहरण है कि अन्तरिक्ष वैज्ञानिक ए0 पी0 जे0 अब्दुल कलाम जैसा व्यक्ति राष्ट्र के शीर्ष पद पर स्थित है। जहाँ तक सम्भव है अन्तरिक्ष विषयों के अतिरिक्त कृषि क्षेत्र में अपार सम्भावनाएं खोजी जा सकती हैं। परम्परागत कृषि के अतिरिक्त अब कृषि का क्षेत्र इतना विकसित हो गया है कि भूमि की ऊर्जा समाप्त किये बिना वर्ष भर भिन्न–भिन्न प्रकार की फसलें उगाकर लोग सम्पन्न हो रहे हैं। उद्यान विज्ञान, फल विज्ञान, फल संरक्षण विज्ञान, रसायन विज्ञान, कृषि रसायन विज्ञान आदि ऐसे विषयों की सम्भावनाएं बढ़ गयी हैं। जिनसे विद्यार्थी जन हित में कार्य कर सकते हैं।

अन्र्तराष्ट्रीय व्यापार क्षेत्र में प्रबन्धन का महत्व बढ़ गया है। वैज्ञानिक प्रबन्धन की दृष्टि से छोटे उद्योग भी अपने उत्पादन का निर्यात करते हैं। जापान जैसा छोटा देश इलेक्ट्रानिक्स की प्रौद्यागिकी से आज विश्व के शीर्ष स्थान पर है। और जापान में ही नयी तकनीकी से चुम्बकीय शक्ति से संचालित रेल गाड़ियाँ अधर में लटक कर चलती हैं। कई रेल गाड़ियाँ तो निरन्तर चलती रहतीं हैं। जब कभी स्टेशन आते हैं ते रेले रूकती नहीं हैं। अपितु प्लेटफार्म ट्रेन की ही स्पीड से उनके साथ-साथ चलते हैं और गतिशीलता नियम के कारण रेलों में चढ़-उतर लेते हैं। ऐसी सम्भावनाएं यद्यपि जादूगरी सी प्रतीत होती है तथापित स्थित है। विश्वविद्यालय का दायित्व है कि ऐसी सम्भावनाओं का अविष्कार करें और उनको यथार्थ रूप देकर जनहित में लगाएं।

भारत एक आध्यात्मिक देश है। इस समस्त भौतिक विकास की सम्भावनाओं के साथ मनुष्य की आत्मिक चेतना का विकास विश्व विद्यालयों में अध्ययन से सम्भव है। भारतीय दर्शन अन्र्तमुखी है विश्व के अन्य दर्शन प्रायः बर्हिमुखी है। भौतिक विकास के साथ-साथ मनुष्य के आध्यात्मिक विकास से विश्व बन्धुत्व की भावना, मानवीय विकास की भावना और मानवीय संवेदनाओं का विकास होता है जिसका परिणाम आज के युग में मानव आयोग के रूप मे प्रत्यक्ष दिखाई देता है।

अतः यह कहा जा सकता है कि विश्व विद्यालय आयोग द्वारा प्रतिपादित विश्व विद्यालय में अध्ययन से न केवल भौतिक राजनीतिक और आर्थिक सम्भावनाओं का विकास हुआ है तथापि मानवीय चेतना का भी विकास हुआ है तथा अभी ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें अध्ययन की सम्भावनाएं प्रबल हैं और उनसे मानव समाज का सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक उन्नयन हो सकेगा।

अधुनातन पाठ्यक्रम का निर्धारण/समायोजन

विकासशील विश्व विद्यालयी में नये पाठ्यक्रम नियोजित किये जा सकते हैं जो वर्तमान की वैज्ञानिक और तकनीकी आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। विश्व विद्यालय अनुदान आयोग केवल उन्हीं विश्व विद्यालयों को आर्थिक सहायता के लिए अर्ह समझता है जिन्होंने विश्व विद्यालय के अन्तर्गत सात विभागों की मान्यता प्राप्त कर ली है। सात विभागों से कम रहने पर विश्व विद्यालय अनुदान आयोग आर्थिक सहायता देने में असमर्थ है। धारा

12 (बी) में यह प्राविधान·है कि जिन विश्व विद्यालयों में सात अथवा सात विभागों से अधिक विभागों को सम्बन्धित शिक्षा संगठनों से मान्यता प्राप्त है केवल वे विश्व विद्यालय ही विश्व विद्यालय अनुदान आयोग से अनुदान पाने के अधिकारी होंगे। इसी प्रकार मान्यता प्राप्त विषयों के विभागों में महाविद्यालयों में भी विश्व विद्यालय अनुदान आयोग किसी प्रोजेक्ट के लिए वित्तीय सहायता उपलब्ध कराते हैं प्राध्यापकों के शोध प्रबन्ध प्रकाशित कराने हेतु विश्व विद्यालय की संस्तुति पर गुणवत्ता के आधार पर विश्व विद्यालय अनुदान आयोग अध्यापकों को एक मुश्त राशि प्रदान करते हैं। यह राशि 6,000 से 10,000 तक दी जाती है।

वर्तमान युग में गणित संकाय में कम्प्यूटर शिक्षक एक अनिवार्यता बन गयी है। पर्यटन विभाग के साथ होटल प्रबन्धन (Hotel Management) और पोषण विभाग कई विश्व विद्यालयों में खोले जा रहे हैं। एन0 जी0 ई0 आर0 टी0 (N.C. E. R. T.) द्वारा मान्यता प्राप्त होने पर कला और विज्ञान संकायों से सम्बन्धित विषय यथा ललित कला में संगीत, मौखिक और बाह्य, कर्नाटक और हिन्दुस्तानी, ड्राइंग, पेन्टिक, डिजाइनिंग, गृह निर्माण, अन्तरिक्ष विज्ञान, खगोल शास्त्र, ज्योतिष शास्त्र, नौकायन, समुद्र विज्ञान मत्स्य उद्योग आदि जैसे विषय वर्तमान युग की माँग है। चिकित्सा संकाय ने औषधि निर्माण विभाग भारतीय औषधि विज्ञान और इसी प्रकार के अन्य विषय जिनमें स्वास्थ्य और शरीर संरक्षण, दन्त चिकित्सा, कृत्रिम अंग रोपण, परखनली शिशु, कृत्रिम गर्भाधान आदि विषय चिकित्सा क्षेत्र में परिगणित किये जाते हैं। रसायन विज्ञान में कार्बन की सहायता से युग–युगों पूर्व के इतिहास को जाना जाता है। चन्द्रमा, मंगलग्रह, शुक्रग्रह आदि पर जाना सफल हो गया है व जाने का प्रयास चल रहा है इन नये आयामों में तेजी से विकसित होते संसार में अध्ययन करना अब एक अनिवार्यता भी है। आइंस्टीन द्वारा आविष्कृत आयामों का सिद्धान्त अब चर्तु आयामी सिद्धान्तों में बदला जा रहा है। जिसके अध्ययन की महती आवश्यकता है।

विश्व विद्यालयों की परिधि में यदि उपर्युक्त विषयों का अध्ययन किया जाता है तो समय और स्थान की दूरी सीमित हो जाएगी और कम्प्यूटर की सहायता से मनुष्य बड़े से बड़े कार्य करने में भी समर्थ हो सकेगा।

षष्ठ अध्याय

आयोगों में प्रतिपादित नीतियों के निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध में "उत्तर प्रदेश में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद गठित आयोगों द्वारा प्रतिपादित नीतियों तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 का तुलनात्मक अध्ययन" शीर्षक शोधकार्य हेतु चयनित किया गया, क्योंकि भारतीय समाज को दो सौ वर्षों की ब्रिट्रिश दासता के उपरान्त पन्द्रह अगस्त सन् 1947 का स्वतन्त्रता हासिल हुयी थी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत के समक्ष अनेक समस्यायें थीं। इन समस्याओं में से एक शिक्षा प्रणाली के पुर्नगठन करने तथा शिक्षा के अवसरों का विस्तार करने की समस्या भी थी। सभी बालकों को निःशुल्क तथा अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराने, अनपढ़ प्रौढ़ों को साक्षर बनाने, माध्यमिक शिक्षा में गुणात्मक सुधार करने, विज्ञान तकनीकी शिक्षा का तेजी से विस्तार करने, लड़कियों, हरिजनों व अल्पसंख्यकों के शैक्षिक विकास के सुनिश्चत करने तथा मातृभाषा, प्रादेशिक भाषा व राष्ट्र भाषा के माध्यम से शिक्षा प्रदान करने जैसे अनेक विकट चुनौतियों स्वतन्त्र भारत के कर्णधारों के सम्मुख थी। निःसन्देह स्वतन्त्र भारतीय संविधान के निर्माताओं तथा केन्द्र व राज्यों की सरकारों ने इन चुनौतियों को स्वीकार किया तथा भारतीय शिक्षा को एक नयी दिशा प्रदान करने का भरसर प्रयास किया। भारतीय संविधान में शिक्षा के सम्बन्ध में अनेक प्राविधान करके सभी के शैक्षिक अधिकारों को सुनिश्चित किया गया एवं केन्द्र तथा राज्य सरकारों के उत्तरदायित्वों को स्पष्ट कर दिया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद केन्द्र तथा राज्यों के विभिन्न स्तरों की शैक्षिक समस्याओं के अध्ययन एवं उनके समाधान प्रस्तुत करने हेतु सन् 1948 में डा0 राधाकृष्णन की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग 1952 में डा0 लक्ष्मण सिंह 1964 में डा0 दौलत सिंह कोठारी की अध्यक्षता में शिक्षा आयोग का गठन किया गया। इन आयोगों द्वारा जो संस्तुतियाँ प्रस्तुत की गयी उत्तर प्रदेश के विशेष संन्दर्भ में उन्हें कहाँ तक क्रियान्वित किया गया एवं उत्तर प्रदेश की शैक्षिक व्यवस्था सुदृढ़ता हेतु संस्तुतियों के क्रियान्वयन पश्चात् जो प्रादेशिक एवं शैक्षिक व्यवस्था बनी उनका विवेचन प्रस्तुत शोध में किया जाना अपेक्षित है–

विश्व विद्यालय शिक्षा आयोग द्वारा प्रतिपादित संस्तुतियों के निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध का विषय क्षेत्र उत्तर प्रदेश तक ही सीमित है। अतः विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग जो कि सम्पूर्ण भारत की केन्द्रीय एवं प्रादेशिक शिक्षा के उन्नयन एवं विश्वविद्यालयी शिक्षा के उत्तरोत्तर विकास हेतु गठित किया गया था जो सिर्फ उत्तर प्रदेश के संदर्भ में दी

गयी संस्तुतियों को देखा जाएगा। चूंकि विश्वविद्यालयों की स्थापना ब्रिटिश शासन काल के अन्तिम समय में ही हुयी थी, परन्तु यह वृद्धि संख्यात्मक थी, जिसके फलस्वरूप उच्च शिक्षा का स्तर गिरने लगा। सन् 1947 में जब देश स्वतन्त्र हुआ तथा उच्च शिक्षा में व्याप्त कमियों को पूरा करने की आवश्यकता महसूस की जाने लगी और राजनीतिज्ञों विद्वानों एवं मनीषियों ने उच्च शिक्षा का पुर्नगठन करना अत्यन्त आवश्यक समझा। अतः 4 नवम्बर 1948 को डा0 राधाकृष्णन की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग का गठन किया। इस आयोग ने उच्च शिक्षा से सम्बन्धित प्रमुख रूप से 14 संस्तुतयाँ प्रतिपादित की जो अग्रांकित है–

1. विश्वविद्यालय शिक्षा के उद्देश्य
2. अध्यापक कल्याण
3. उच्च शिक्षा का स्तर
4. अध्ययन पाठ्यक्रम
5. स्नातकोत्तर शिक्षा तथा अनुसन्धान
6. वैयक्तिक शिक्षा
7. शिक्षा का माध्यम
8. परीक्षा प्रणाली
9. धार्मिक शिक्षा
10. छात्र कल्याण
11. ग्रामीण विश्वविद्यालय
12. संविधान तथा नियन्त्रण
13. अर्थ व्यवस्था
14. नारी शिक्षा

विश्वविद्यालय आयोग द्वारा प्रतिपादित उपर्युक्त संस्तुतियों में उच्च शिक्षा का कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं रहा, जिसको आयोग ने अपने परिक्षेत्र में न किया हो अर्थात् उच्च शिक्षा के विकास हेतु प्रस्तुत संस्तुतियाँ हमारे प्रदेश के उच्च शिक्षा के स्तर को विकसित करने में सहयोग देगी ऐसी अपेक्षा की गयी थी। निष्कर्षतः यदि इन प्रतिपादित संस्तुतियों की अक्षरशः

स्वीकार कर लिया गया होता तो उत्तर प्रदेश की उच्च शिक्षा का स्तर ही बदला हुआ नजर आता, परन्तु अनेक व्यवहारिक एवं आर्थिक कठिनाइयों के कारण इस आयोग की अनेक सिफारिशें स्वीकार एवं लागू नहीं की जा सकी, जो अपने क्रियान्वयन से कोषों दूर रह गयी। निष्कर्षतः उत्तर प्रदेश में उच्च शिक्षा का आद्योपान्त विकास अधूरा रह गया। फिर भी इस आयोग की नीतियों/सिफारिशों ने जो क्रियान्वित की गयी उनसे विश्वविद्यालयी शिक्षा के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत की और आज विश्वविद्यालयी शिक्षा का जो स्तर दृष्टिगोचर होता है, उसका श्री गणेश विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग द्वारा किये गये प्रयासों का ही परिणाम है।

माध्यमिक शिक्षा आयोग द्वारा प्रतिपादित नीतियों के निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध में उत्तर प्रदेश में माध्यमिक स्तर की शिक्षा व्यवस्था के विकास हेतु 1952 में गठित माध्यमिक शिक्षा आयोग द्वारा प्रतिपादित नीतियों/सिफारिशों का निष्कर्ष रूप में प्रस्तुत किया जाना अपेक्षित है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त यद्यपि विश्वविद्यालय शिक्षा के विकास के सम्बन्ध में एक आयोग का गठन किया जा चुका था तथा शैक्षिक क्षेत्रों में माध्यमिक शिक्षा को कैसे प्रभावशाली बनाया जाय, पर विचार किया गया। इस हेतु केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद द्वारा सन् 1951 में की गयी सिफारिश को स्वीकार करते हुए भारत सरकार ने 23 सितम्बर 1952 को डा0 मुदालियर की अध्यक्षता में माध्यमिक शिक्षा आयोग का गठन किया।

इस आयोग ने माध्यमिक शिक्षा के स्तर में उत्तरोत्तर वृद्धि हेतु अग्रांकित 24 बिन्दुओं/विषयों पर अपनी संस्तुति प्रतिपादित की–

1. माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य
2. माध्यमिक शिक्षा का पुर्नगठन
3. बहु–उद्देशीय विद्यालय
4. कृषि शिक्षा
5. तकनीकी शिक्षा
6. आवासीय शिक्षा
7. विकलांगों की शिक्षा
8. सहशिक्षा

9. त्रिभाषा सूत्र

10. पाठ्यक्रम

11. पाठ्य पुस्तकें

12. शिक्षण विशियाँ

13. अनुशासन

14. धार्मिक व नैतिक शिक्षा

15. पाठ्योत्तर क्रियायें

16. परामर्श व निर्देशन

17. स्वास्थ्य शिक्षा

18. अध्यापक

19. परीक्षा प्रणाली

20. संगठन तथा प्रशासन

21. निरीक्षण

22. छात्र संख्या

23. अवधि

24. वित्त व्यवस्था

उपर्युक्त संस्तुतियों के रहते यह स्पष्ट है कि माध्यमिक शिक्षा आयोग ने माध्यमिक शिक्षा के दोषों को दूर करने तथा इसके स्तर को उन्नत बनाने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किये थे। परन्तु इन सुझावों को पूर्णतः स्वीकार नहीं किया गया। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि उ़त्तर प्रदेश जनसंख्या की दृष्टि से भारत का सबसे बड़ा राज्य था और यदि इस आयोग द्वारा सुझायी गयी संस्तुतियों/प्रतिपादित नीतियों को स्वीकार किया गया होता तो आज शिक्षा का माध्यमिक स्तर अपेक्षाकृत उन्नतशील होता। चूंकि माध्यमिक शिक्षा की चन्द्रमुखी प्रगति में इस आयोग ने अविस्मरणीय योगदान दिया इसलिए निष्कर्षतः यह आयोग उत्तर प्रदेश में माध्यमिक शिक्षा जगत में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

शिक्षा आयोग द्वारा प्रतिपादित नीतियों के निष्कर्ष

यद्यपि स्वतन्त्रता के उपरान्त शिक्षा का अत्यन्त तीव्र गति से विकास हुआ, परन्तु यह विकास केवल संख्यात्मक एवं गुणात्मक नहीं थाा अपितु, इसके साथ–साथ संविधान में शिक्षा के प्रति संकल्पों को पूरा करने हेतु व स्वतन्त्रोत्तर भारत में शिक्षा के समस्त पक्षों की विस्तार पूर्वक जाँच करने के लिए एक आयोग के गठन की माँग की गयी तथा सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक क्षेत्रों से भी शिक्षा में सुधार करने की माँग की जा रही थी तथा संख्यात्मक दृष्टि से भारत के सबसे बड़े राज्य उत्तर प्रदेश में शिक्षाविदों द्वारा ऐसी ही माँग प्रस्तुत की गयी जिसके फलस्वरूप 14 जुलाई 1964 को डा0 दौलत सिंह कोठारी की अध्यक्षता में शिक्षा आयोग के गठन की घोषणा की गयी। इस आयोग ने शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर सघन प्रकाश डालते हुए अग्रांकित प्रमुख 19 बिन्दुओं पर अपनी नीति प्रतिपादित की–

1. शिक्षा के राष्ट्रीय उद्देश्य
2. शिक्षा की संरचना
3. अध्यापकों की दशा
4. अध्यापक प्रशिक्षण
5. नामांकन तथा मानव शक्ति
6. शैक्षिक समानता
7. स्कूल शिक्षा का विस्तार
8. स्कूल पाठ्यक्रम
9. स्कूल शिक्षा पद्धति
10. स्कूल निरीक्षण
11. उच्च शिक्षा के उद्देश्य
12. उच्च शिक्षा में प्रवेश व कार्यक्रम
13. विश्व विद्यालयों की व्यवस्था
14. कृषि शिक्षा
15. व्यवसायिक तकनीकी तथा इंजीनियरिंग शिक्षा

16. विज्ञान शिक्षा तथा अनुसन्धान

17. प्रौढ़ शिक्षा

18. शैक्षिक योजना तथा प्रशासन

19. शैक्षिक अर्थ व्यवस्था।

उपर्युक्त संस्तुतियाँ जो कि शिक्षा के प्राथमिक, माध्यमिक व उच्च शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, महिला शिक्षा, शिक्षकों की दशा, शिक्षकों का प्रशिक्षण अनुसन्धान और शोध कार्यों में वृद्धि आदि विभिन्न महत्वपूर्ण एवं पेचीदा विषयों पर कोठारी आयोग ने अपनी संस्तुतियों को प्रतिपादित किया। इससे स्पष्ट होता है कि सम्पूर्ण शिक्षा जगत के शैक्षिक स्तर के उन्नयन में आने वाली समस्याओं को दूर करने व उनमें वृद्धि करने के लिए इस आयोग की संस्तुतियाँ महत्वपूर्ण योगदान रखती है।

प्रस्तुत शोध में उत्तर प्रदेश में आयोग के प्रतिवेदन का चारो ओर स्वागत किया गया परन्तु प्रदेश में आयोग द्वारा प्रस्तुत संस्तुतियों को पूर्णतः लागू नहीं किया जा सका, फिर भी इस आयोग ने देश एवं प्रदेश की शिक्षा व्यवस्था का व्यापक एवं विस्तृत अध्ययन करके उसमें सुधार लाने हेतु प्रस्तुत सुझाव देने का यह एक भागीरथ प्रयास था परिणाम स्वरूप शिक्षा आयोग द्वारा प्रतिपादित संस्तुति भरे प्रतिवेदन को भारतीय शिक्षा की गीता भी कहा गया है। प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ है कि इस आयोग ने जहाँ देश की शिक्षा व्यवस्था में चार–चाँद लगाने का प्रयास किया वहीं उत्तर प्रदेश के विशेष संदर्भ में यह आयोग शिक्षा के चहुमुखी विकास हेतु महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

निष्कर्षतः यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि स्वतन्त्रता के उपरान्त उ0प्र0 भारत का सबसे बड़ा राज्य होने की दृष्टि से शिक्षा की सर्वाधिक समस्याओं का सामना कर रहा था इन समस्याओं की जाँच एवं शिक्षा के स्तर में वृद्धि करने के उद्देश्य से उपर्युक्त वर्णित आयोगों की प्रतिपादित संस्तुतियों को प्रदेश में लागू तो किया गया परन्तु व्यवहारिक कठिनाईयों के रहते इन्हें पूर्णतः क्रियान्वित नही किया जा सका फिर भी प्राप्त निष्कर्षों से यह स्पष्ट होता है कि प्रदेश की शिक्षा व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने में इन आयोगों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

प्रस्तुत शोध में स्वतन्त्रता के बाद गठित शिक्षा आयोगों व शैक्षिक स्तर में आयी कठिनाईयाँ जाँच हेतु विभिन्न समितियों का विस्तृत वर्णन किया गया है। अतः आयोगों और समितियों के द्वारा प्राप्त सुझावों के आधार पर ही उ0प्र0 की शिक्षा के विकास को महत्वपूर्ण दिशा प्रदान की गयी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों से सम्बन्धित निष्कर्ष

स्वतन्त्रता के उपरान्त अखिल भारतीय स्तर पर यह आवश्यकता महसूस की गयी कि राष्ट्र में शैक्षिक स्तर के उन्नयन हेतु तथा विभिन्न स्तरों पर शिक्षा व्यवस्था को सुदृढ़ करने एवं देश की भावी नागरिक प्रदान करने हेतु जो राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत हों, अतः ऐसे नागरिक तैयार करने के लिए देश में राष्ट्रीय शिक्षा नीति घोषित किये जाने का निर्णय लिया गया। कहा गया है कि – "शिक्षित व्यक्ति समाज का आदर्श होता है।" राष्ट्रीय शिक्षा नीति के सम्बन्ध में ब्रिटिश शासन के समय से ही विवाद चला आ रहा था तथा स्वतन्त्रता के पूर्व भी 1904 एवं 1913 में राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों की घोषणा की जा चुकी थी। चूंकि वह ब्रिटिश शासन की देन थी इसलिए उन नीतियों में भारतीयों की शिक्षा व्यवस्था हेतु समुचित निर्णय नहीं लिये गये और न ही, उनके गठन समिति में भारतीयों को सदस्य बनाया गया था। अतः वह एक पक्षीय प्रतीत हुयी। तदुपरान्त स्वतन्त्रोत्तर भारत में 1964 में गठित "शिक्षा आयोग" जो शिक्षा के राष्ट्रीय स्वरूप तथा शिक्षा के सभी स्तरों व पहलुओं पर शिक्षा के विकास के लिए सामान्य सिद्धान्तों तथा नीतियों पर सरकार को सलाह दे सके। इस आयोग ने सन् 1966 में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। आयोग ने 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति' के निर्माण पर जोर देते हुए कहा था कि – "भारत सरकार को राष्ट्रीय शिक्षा नीति के सम्बन्ध में एक वक्तव्य जारी करना चाहिए, जिससे राज्यों तथा स्थानीय निकायों को अपने–अपने क्षेत्रों में शैक्षिक योजनाओं को बनाने तथा क्रियान्वित करने के लिए मार्ग दर्शन मिल सके।"

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 के निष्कर्ष

भारत सरकार ने शिक्षा आयोग द्वारा सुझायी संस्तुतियों में 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा' पर विचार करते हुये राजनेताओ, विद्वानों, शिक्षाविदों के साथ विस्तृत चर्चा की, तदुपरान्त यह महसूस किया कि शिक्षा प्रणाली ऐसी होनी चाहिए जिससे राष्ट्रीय सेवा तथा विकास के लिए दृढ़ संकल्प, चरित्रवान तथा योग्य युवक–युवतियों का निर्माण हो। विभिन्न

उद्देश्यों से ओत–प्रोत होकर भारत सरकार ने 1968 में शिक्षा की राष्ट्रीय नीति को निर्धारित करके इसकी विधिवत् घोषणा की।

प्रस्तुत शोध में राष्ट्रीय स्तर पर गठित राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 को उत्तर प्रदेश के विशेष संदर्भ में देखा गया। इस शिक्षा नीति ने अग्रांकित 17 आधारभूत सिद्धान्तों को स्थापित किया–

1. निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा
2. अध्यापकों का स्तर, वेतन तथा शिक्षा
3. भाषाओं का विकास
4. शिक्षा के अवसरों का समानीकरण
5. प्रतिभा की खोज
6. कार्यानुभव तथा राष्ट्रीय सेवा
7. विज्ञान शिक्षा तथा अनुसन्धान
8. कृषि तथा उद्योगों के लिए शिक्षा
9. पुस्तकों का उत्पादन
10. परीक्षाएं
11. माध्यमिक शिक्षा
12. विश्वविद्यालयी शिक्षा
13. अंशकालीन शिक्षा तथा पत्राचार पाठ्यक्रम
14. साक्षरता तथा प्रौढ़ शिक्षा का प्रसार
15. खेलकूद
16. अल्पसंख्यकों की शिक्षा
17. शैक्षिक ढाँचा

उपर्युक्त बिन्दु जो कि सम्पूर्ण भारत की शिक्षा व्यवस्था को सुदृढ़ करने हेतु सुझाये गये थे, जो शोधकर्ता द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद उत्तर प्रदेश की शैक्षिक व्यवस्था, शिक्षा के सुदृढ़ीकरण हेतु आंकलित किये गये हैं। किये गये अध्ययन के परिणामस्वरूप उत्तर

प्रदेश में इस शिक्षा नीति की घोषणा उपरान्त मिश्रित प्रतिक्रियाएं हुयी एक ओर जहाँ इस नीति का स्वागत किया जा रहा था वहीं दूसरी ओर लोगों ने आलोचानात्मक दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किया। फिर भी उत्तर प्रदेश में इस शिक्षा नीति को शिक्षा जगत के उन्नयन हेतु अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया। चूंकि यह स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद प्रदेश की प्रथम शिक्षा नीति थी जिसने शिक्षा के विभिन्न स्तरों को सुदृढ़ करने का भागीरथी प्रयास किया था। अतः एक लम्बी अवधि तक इस नीति ने अपना प्रभाव बनाये रखा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1979 के निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध में शोधकर्ता द्वारा ये प्रयास किया गया कि शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर समय की आवश्यकतानुसार घोषित राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों की विवेचना एवं उनके निष्कर्ष स्वरूप वे नीतियाँ पूर्व में गठित आयोगों के सापेक्ष कहाँ तक उत्तर प्रदेश की शैक्षिक व्यवस्था को सुदृढ़ करने में कारगर सिद्ध हुयी है–

सन् 1977 में तत्कालीन जनता पार्टी की सरकार ने राष्ट्र की वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में अनेक कमियाँ पायी, जिनके सुधार करने की अत्यन्त आवश्यकता महसूस की। पर्याप्त विचार विमर्श के उपरान्त सन् 1979 में भारत सरकार ने नवीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति का मसौदा तैयार किया। इस नीति में शिक्षा के विभिन्न स्तरों में समुचित सुधार के लिए अग्रांकित 23 बिन्दुओं को रखा–

1. प्रस्तावना
2. सर्वव्यापी प्रारम्भिक शिक्षा
3. प्रौढ़ शिक्षा
4. माध्यमिक शिक्षा
5. उच्च्च शिक्षा
6. शिक्षा का ढाँचा
7. तकनीकी शिक्षा
8. कृषि शिक्षा
9. चिकित्सा शिक्षा

10. संस्कृति

11. शारीरिक शिक्षा

12. शिक्षा का माध्यम

13. त्रिभाषा सूत्र

14. भाषाओं का विकास

15. परीक्षा सुधार

16. पुस्तक विकास

17. शैक्षिक अवसर

18. अध्यापक

19. सामुदायिक सहभागिता

20. स्वैच्छिक संगठन

21. अल्पसंख्यकों की शिक्षा

22. शिक्षा में निवेश

23. समीक्षा

जो प्रत्येक पाँच वर्षों में राष्ट्रीय शिक्षा नीति के क्रियान्वयन की समीक्षा करेगी तथा अनुभवों के आधार पर परिवर्तन करेगी। इस प्रकार निष्कर्षतः यह स्पष्ट होता है कि उपरोक्त बिन्दुओं से शिक्षा को कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं रह जाता तथा जो बिन्दुओं को 1979 की नीति में सम्मिलित किया गया है। वे बहुत हद तक 1968 की नीति से समानान्तर है। अर्थात् शिक्षा के चहुमुखी विकास हेतु इस नीति में अपने आयाम प्रस्तुत किये थे पर 1980 में जनता सरकार के गिर जाने के कारण संसद में इस नीति के मसौदे को स्वीकृत नहीं मिल सकी, फिर भी शिक्षा के विभिन्नह स्तरों के उन्नयन का यह भागीरथी प्रयास था।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध कार्य में राष्ट्रीय शिक्षा नीति को विस्तृत रूप में पूर्व से वर्णित किया गया है। यहाँ पर इस शिक्षा नीति से सम्बन्धित जो परिणाम प्राप्त हुये उनका विवेचन किया जाना समाचीन समझा गया–

देश में सत्ता परिवर्तन के साथ ही देश के युवा प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी के नेतृत्व में भारत सरकार ने जनवरी 1985 में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति के निर्माण की घोषणा की। इस दृष्टि से राष्ट्र की शिक्षा की वर्तमान अवस्था का विश्लेषण एवं समीक्षा की गई। यह विश्लेषण एवं समीक्षा – "चैलेंज ऑफ एजूकेशन ए पॉलिसी परस्पेक्टिव के नाम से अगस्त 1985 में प्रकाशित की गयी, जिस पर शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर सम्पूर्ण देश में राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर बहस हुयी। फलस्वरूप मई 1986 में संसद ने इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति को स्वीकृति दे दी। इस प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की अग्रांकित 12 भागों में अपनी रूपरेखा प्रस्तुत की। प्रस्तुत शोध में राष्ट्रीय शिक्षा नीति उत्तर प्रदेश के विशेष संदर्भ में देखा गया है। चूंकि यह नीति सम्पूर्ण भारत की शिक्षा व्यवस्था की सुदृढ़ करने हेतु बनायी गयी थी, जिसमें देश का सबसे बड़ा राज्य उत्तर प्रदेश है अतः प्रस्तुत शोध में राष्ट्रीय शिक्षा समिति 1986 को उ0प्र0 के विशेष सन्दर्भ में प्रस्तुत किया गया है। 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अग्रांकित विषय–

1. प्रस्तावना
2. शिक्षा की प्रकृति एवं भूमिका
3. शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली
4. समानता के लिए शिक्षा
5. विभिन्न स्तरों पर शिक्षा का पुर्नगठन
6. तकनीकी एवं प्रबन्धकीय शिक्षा
7. शिक्षा प्रणाली को क्रियाशील बनाना
8. शिक्षा की विषय वस्तु एवं प्रक्रिया का अभिनवीकरण
9. अध्यापक
10. शिक्षा प्रबन्ध
11. संसाधान तथा समीक्षा
12. शिक्षा का विषय

उपर्युक्त 12 खण्डों में कुल 157 बिन्दुओं के अन्तर्गत नई शिक्षा नीति को लिपिबद्ध किया गया।

इस प्रकार निष्कर्षतः राष्ट्रीय शिक्षा नीति में मुख्य रूप से निम्न बिन्दुओं की समाहित कर देश एवं राज्यों की शिक्षा के विभिन्न स्तरों के उन्नयन की दिशा अग्रसर की है–

1. राष्ट्रीय शिक्षा क्रम को 10+2+3 की शिक्षा प्रणाली लागू किये जाने पर बल दिया।
2. पूर्व बाल्यावस्था शिक्षा तथा प्राथमिक शिक्षा के क्रम में बाल रक्षा एवं शिक्षा (ECCE) कार्यक्रम को उच्च प्राथमिकता देते हुये बाल विकास कार्य क्रमों को समन्वित किये जाने पर बल।
3. राष्ट्रीय शिक्षा नीति में अनुसूचित जातियों व जन जातियों की शिक्षा की विशेष व्यवस्था पर जोर दिया गया।
5. अल्पसंख्यकों की शिक्षा पर गुणात्मक और सामाजिक न्याय की दृष्टि से विशेष ध्यान दिया गया।
6. विकलांगों की शिक्षा व्यवस्था हेतु व्यवसायिक प्रशिक्षण, जिला स्तर पर छात्रावास एवं स्वैच्छिक प्रयत्नों को प्रोत्साहित किये जाने पर जोर।
7. ग्रामीण प्रतिभावन छात्रों को शिक्षा के विकास क्रम में अग्रसर करने हेतु नवोदय विद्यालय स्थापित किये जाने की संस्तुति।
8. उच्च शिक्षा कार्यक्रमों एवं खुले विश्वविद्यालय जो 1985 में स्थापित किया गया को समृद्ध किये जाने पर बल दिया गया।
9. सघन साक्षरता कार्यक्रम व प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों को चलाये जाने पर जोर।
10. ग्रामीण विश्वविद्यालय जो महात्मा गाँधी के विचारों पर आधारित है को नवीन पेटर्न के अनुसार एकीकृत किये जाने पर बल दिया गया।
11. कम्प्यूटर साक्षरता, तकनीकी एवं प्रबन्ध शिक्षा मूल्यों की शिक्षा, शैक्षिक तकनीकी जैसे विषयों को उत्तरोत्तर वृद्धि हेतु पाठ्यक्रमों में लागू किये जाने पर बल दिया गया।
12. इस नीति के अन्तर्गत क्रीडा स्थल, उपकरण, शिक्षक, छात्रावास, प्रतिभाशाली बच्चों को प्रोत्साहन, देशी एवं परम्परागत खेलों का विकास योग शिक्षा आदि की व्यवस्था पर जोर दिया गया।

13. परीक्षा प्रणाली शिक्षकों की चयन प्रक्रिया को पुर्नगठन, अध्यापकों की शिक्षा हेतु जिला शिक्ष एवं प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना किये जाने पर बल दिया गया।
14. शिक्षा को विकेन्द्रीकरण करके शैक्षिक संस्थाओं में स्वायत्ता की भावना विकसित किये जाने पर बल दिया गया।
15. शिक्षा की अर्थ व्यवस्था हेतु राष्ट्रीय आय का 6 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च किये जाने पर जोर दिया गया।
16. नई शिक्षा नीति किस सीमा तक क्रियान्वित की गयी, की समीक्षा प्रत्येक पाँच वर्षों बाद दिये जाने पर अपनी प्रस्तुत की है।

इस प्रकार उपरोक्त प्रावधान जो राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की नीति के तहत किये गये हैं ये स्पष्ट है कि नयी शिक्षा नीति तक सुविचारित संकल्प है जो वर्तमान उदित राजनीतिक इच्छा शक्ति का परिणाम है।

प्रस्तुत शोध में नयी शिक्षा नीति को उत्तर प्रदेश की शिक्षा व्यवस्था में कहाँ तक क्रियान्वित किया गया है पर विवेचन किया गया है। प्रदेश स्तर पर आज जो शिक्षा व्यवस्था है। वह नयी शिक्षा नीति का ही मिला जुला एवं संशोधित रूप है। वर्तमान में उत्तर प्रदेश में 10+2+3 की शिक्षा व्यवस्था ही लागू की जा रही है। शिक्षा में शोध कार्यों में भी अपेक्षाकृत संसाधन तो उपलब्ध नहीं हो रहे फिर भी वर्तमान पीढ़ी अपने कैरियर के प्रति चिन्तित है तथा विभिन्न क्षेत्रों में शोध कार्य प्रस्तुत कर रही है। नयी शिक्षा नीति का उद्देश्य शिक्षा को ऐसी प्रभावी यन्त्र बनाना है जिसके द्वारा सबको समान शिक्षा मिल सके अतः शिक्षा अभिनवीकरण में नई शिक्षा नीति एक ईमानदारी युक्त प्रयास है।

तुलनात्मक निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध में स्वतन्त्रता उपरान्त गठित शिक्षा आयोगों द्वारा प्रतिपादित नीति संस्तुतियाँ एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 का तुलनात्मक विवेचन किया गया है। अतः यहाँ पर स्पष्ट है कि स्वतन्त्रता के उपरान्त उत्तर प्रदेश में शिक्षा की व्यवस्था में उत्तरोत्तर वृद्धि करने के लिए तत्कालीन सरकारों ने समय–समय पर शिक्षा के सुदृढ़ीकरण एवं व्यवसायीकरण पर जोर देते हुये एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था की कल्पना की जिससे देश एवं प्रदेश में भावी नागरिक तैयार हो जो देश के भावी कर्णधार सिद्ध हो सकें। इस शोध से कुछ ऐसे निष्कर्ष

सामने आये जो अयोगों की संस्तुतियों और राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों का तुलनात्क दृष्टि से समानान्तर प्रतीत होते हैं। निष्कर्ष इस प्रकार है–

1. 1948–49 में गठित शिक्षा आयोग जो कि सिर्फ स्नातक व स्नातकोत्तर कक्षाओं में सुध
ार एवं अनुसंधान के क्षेत्र में समुचित व्यवस्था हेतु गठित किया गया था। तुलनात्मक दृष्टि से यह देखा गया शिक्षा क्षेत्र में जो विभिन्न शिक्षा नीतियाँ निर्मित की गयी उनका परिक्षेत्र सिर्फ विश्वविद्यालयी स्तर की शिक्षा का सुधार न होकर सम्पूर्ण स्तरों (पूर्व प्राथमिक, प्राथमिक, अनौपचारिक, प्रौढ़ शिक्षा, माध्यमिक व विश्वविद्यालय स्तर, खुले विश्वविद्यालयों की स्थापना) की शिक्षा व्यवस्था के सुधार की दृष्टि से बनायी गयी। ऐसा ही 1986 की शिक्षा नीति की विवेचना से स्पष्ट होता है।
2. वर्ष 1952 में गठित माध्यमिक शिक्षा आयोग की संस्तुतियों के आकलन से प्रस्तुत शोध
ा से यह स्पष्ट हुआ है। कि इस आयोग का गठन माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक शिक्षा स्तर के चहुमुखी विकास हेतु किया गया, जिसके अभ्यार्थियों की उम्र लगभग 12 से 18 वर्ष के बीच की हो तथा उनके सर्वागीण विकास एवं परीक्षा प्रणाली में सुधार, अध्यापकों की दशा, स्तर, छात्रों की संख्या आदि बिन्दुओं को लेकर मात्र माध्यमिक स्तर के सभी पहलुओं को समाहित करते हुये किया गया था।

तुलनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत शोध के दौरान यह देखा गया कि स्वतन्त्रता उपरान्त गठित 1968 की शिक्षा नीति 1986 की शिक्षा नीति में सभी स्तरों के विभिन्न बिन्दुओं पर अपनी दृष्टिकोण रखते हुए सरकार के समक्ष अपनी नीति प्रस्तुत की। साथ ही साथ आयोगों के उपरान्त विभिन्न शिक्षा समितियों का गठन हुआ और इन शिक्षा समितियों ने भी गठित शिक्षा नीतियों की तुलना में कुछ विशिष्ट बिन्दुओं जैसे माध्यमिक शिक्षा के सुध
ार हेतु आचार्य नरेन्द्र देव समिति, विभिन्न स्तरों पर स्त्री शिक्षा के सुधार हेतु दुर्गा बाई देशमुख समिति लड़कियों के लिए पाठ्यक्रम निर्धारण की समस्या से निजात हेतु हंसा मेहता समिति, N.C.E.R.T. द्वारा तैयार पाठ्यक्रम की जाँच एवं पुनरीक्षण हेतु ईश्वर भाई पटेल समिति एवं +2 स्तर की स्कूल शिक्षा के पाठ्यक्रम की जाँच एवं शिक्षा के व्यवसायीकरण के विशेष संदर्भ में आदि सेषैया समिति आदि संदर्भित विशिष्ट विषयों का वर्णन एवं विवेचन किया जबकि तुलनात्मक दृष्टि से राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों का उद्देश्य तो शिक्षा के चहुमुखी विकास एवं भावी कर्णधार तैयार करना ही था जो कि तुलनात्मक

दृष्टि से समानान्तर है लेकिन इन नीतियों ने शिक्षा के सभी पक्षों का विवेचन कर प्रत्येक पाँच वर्ष में इनके क्रियान्वयन का पता लगाने तक का स्पष्ट व्याख्या की है।

अतः स्पष्ट है कि तुलनात्मक दृष्टि से राष्ट्रीय शिक्षा नीति में दर्शाए 12 खण्डों को यदि पूर्णतः लागू कर दिया जाता तो शिक्षा की वर्तमान व्यवस्था के ओर मजबूत एवं प्रभावशाली रूप में देखा जा सकता था।

3. 1964–66 में गठित शिक्षा आयोग ने विभिन्न स्तरों पर अपनी संस्तुतियाँ प्रस्तुत कर राष्ट्रीय शिक्षा नीति को निर्मित करने में नयी दिशा प्रदान की है। अतः तुलनात्मक दृष्टि से यह आयोग उपर्युक्त गठित दोनों आयोगों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण एवं शिक्षा के सभी पक्षों की विवेचना करता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति भी इस आयोग का निचोड़ सिद्ध हुयी है।

उपरोक्त तुलनात्मक विवेचना से ये स्पष्ट होता है कि समय की आवश्यकतानुसार ही विभिन्न आयामों को समाहित करते हुये उक्त आयोगों एवं समितियों व तत्सम्बन्धी शिक्षा नीतियों को गठित करना आवश्यक समझा गया और सभी का अपनी–अपनी जगह विशेष महत्व है परन्तु राष्ट्रीय शिक्षा नीति जो विकास क्रम में वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की नयी नीति है। तुलनात्मक दृष्टि से सर्वापरि एवं शिक्षा के सभी पक्षों की विवेचना करती है।

सुझाव

प्रस्तुत आयोगों एवं समितियों व शिक्षा नीतियों के विवेचन एवं तुलनात्मक दृष्टिकोण से की गयी विवेचना से शोधकर्ता ने भावी पीढ़ी हेतु कुछ सुझाव प्रस्तुत किये हैं। जो छात्रों/विद्यार्थियों के लिए अनुकरणीय सिद्ध हो सकते हैं–

1. शिक्षा के क्षेत्र में अध्ययन कर रहे विद्यार्थियों को पूर्व में गठित आयोगों का एवं प्रदेशीय शिक्षा प्रणाली के आवश्यक बिन्दुओं का पता लगाया जा सकता है।
2. नवयुवकों छात्रों एवं छात्राओं को शिक्षा देश एवं प्रदेश की शिक्षा व्यवस्था के क्रम एवं तत्सम्बन्धी हुये सुधारों, पुनरीक्षणों एवं शैक्षिक विकास का इतिहास का अध्ययन किया जा सकता है। तथा भावी पीढ़ी को नयी शिक्षा व्यवस्था को कारगर बनाने में स्वयं की क्या भूमिका है। का भी चिन्तन एवं सोच विकसित करने की दिशा मिलेगी है।

3. आज की युवा पीढ़ी को प्रदेशीय शिक्षा तंत्र एवं देश की शिक्षा व्यवस्था में सहभागिता का पाठ निभाना होगा तभी देश के भावी नागरिक, देश प्रेम एवं स्वाभिमान का पाठ सीख सकेंगे।
4. उत्तर प्रदेश में क्रियान्वित संशोधित नयी शिक्षा नीति के विभिन्न पहलुओं की जानकारी छात्र–छात्राओं और नवयुवकों को करायी जाए ताकि वे पूर्व माध्यमिक स्तर की शिक्षा प्राप्त करने के बाद आगामी अध्ययन हेतु भ्रमित न हों।
5. बच्चों, नवयुवकों एवं भावी देश के कर्णधारों को ऐसी भावना से ओतप्रोत किया जाय जिससे वे देश प्रेम की शिक्षा ले सकें एवं अध्ययन की दृष्टि से सिर्फ किताबी कीड़ा न रहकर व्यवहारिक, औद्योगिक एवं अनुसन्धान के क्षेत्र में उत्तरोत्तर वृद्धि कर सकें व अपनी सोंच को विकसित कर सकें।
6. उत्तर प्रदेश में व्याप्त शिक्षा का स्तर ऐसा होना चाहिए जिससे भावी पीढ़ी 21वीं सदी में प्रवेश करने के साथ, देश–विदेश एवं अन्तरिक्ष में व्याप्त वैज्ञानिक एवं खगोलीय शिक्षा का यथोचित अध्ययन न कर सकें।
7. चूंकि उत्तर प्रदेश, देश का सबसे बड़ा राज्य होने की दृष्टि से शिक्षा के क्षेत्र में भी पिछड़ा न रहे ऐसी सोच प्रत्येक युवाओं एवं अभिभावनों में जाग्रत की जाय।
8. प्रदेश में अल्पसंख्यकों की शिक्षा व्यवस्था, स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन, बालिका शिक्षा एवं बालिका समृद्धि योजना, मातृत्व लाभ योजना, निराश्रितों के सहयोगार्थ स्वेच्छिक संगठनों को प्रोत्साहन जैसी योजनाओं को महत्व दिया जाय, जिससे प्रदेश को सामाजिक एवं शैक्षिक स्तर में विकास किया जा सके।
9. शिक्षा आयोगों द्वारा प्रतिपादित संस्तुतियों एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति में सुझाये विभिन्न बिन्दुओं पर वर्तमान आवश्यकता को देखते हुये व्यापक विचार–विमर्श किया जाय एवं शिक्षा विदों के साथ विचार विमर्श उपरान्त जो निष्कर्ष प्राप्त होते हैं उनको क्रियान्वित किया जाय।
10. चूंकि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 को 4 वर्षोपरान्त 1990 में पुर्न समीक्षित करते हुए संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति क्रियान्वित की गयी थी, जिसको बने लगभग बारह वर्ष व्यतीत हो गये हैं को पुर्न समीक्षित किया जाय ताकि प्रदेश की वर्तमान शिक्षा में आने वाले कठिनाइयों से अभिभावकों एवं बच्चों को छुटकारा मिल सके और वे प्रदेश की अर्थ व्यवस्था में अपना योगदान दे सकें।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के क्रियान्वयन पर सुझाव

राष्ट्रीय शिक्षा नीति एक आदर्श शिक्षा दस्तावेज के रूप में प्रस्तुत की गयी, जिसमें उन सभी विषयों का समावेश किया गया जो एक आदर्श समाज में होना चाहिए। तेइस बिन्दुओं में सर्वप्रथम बिन्दु शिक्षा नीति का क्रियान्वयन था, अर्थात् 1986 की शिक्षा नीति बनाने वाले विशेषज्ञों को यह प्रतीत होता रहा होगा कि इतने आदर्शों की पूर्ति और उसका क्रियान्वयन करना अपेक्षाकृत कठिन है तथापि वे उसके लिए सतत् प्रयत्नशील रहे कि यह शिक्षा नीति समाज संरचना में सहायक है। उनका मानना था कि इन सभी तेइस (23) विषयों पर विभिन्न कार्यदल बनाये जायं, जो समाज की स्थिति का अवलोकन करें। इन 23 विषयों के मुख्य विषय निम्नलिखित थे–

1. स्कूल शिक्षा की पाठ्यवस्तु और प्रक्रियाएं।
2. नारी समानता के लिए शिक्षा।
3. अनुसूचित जाति, जनजाति और पिछड़े वर्गों की शिक्षा।
4. अल्पसंख्यकों और विकलांगों की शिक्षा।
5. प्रौढ़ और सतत् शिक्षा।
6. अनौपचारिक शिक्षा।
7. माध्यमिक शिक्षा और नवोदय विद्यालय।
8. मुक्त विश्वविद्यालय।
9. तकनीकी और प्रबन्ध शिक्षा।
10. शिक्षा में कम्प्यूटरों का उपयोग।
11. भाषा नीति और सांस्कृतिक कार्यक्रम।
12. शारीरिक शिक्षा और खेल।
13. अध्यापक अैर उनका प्रशिक्षण।
14. ग्रामीण विश्वविद्यालय।
15. शिक्षा का प्रबन्ध।

इनके अतिरिक्त अन्य संदर्भित समस्याओं पर भी विचार किया जाना था। 20 जुलाई 1986 को राज्य सरकार और केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों के प्रशासकों की एक बैठक आयोजित की गयी, जिससे यह कार्यक्रम लागू किये जाने की मंत्रणा हुयी।

इस कार्यक्रम को लागू करने के लिए प्रारम्भिक बाल्य शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा और ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड जैसी योजनाओं से इसे सम्पन्न करना चाहिए था, ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड के अर्न्तगत न केवल ब्लैक बोर्ड ही प्रयुक्त किये जाने थे, बल्कि चार्ट और खेल सामग्री की उपलब्धिता भी सुनिश्चत की जानी थी। माध्यमिक शिक्षा के समानान्तर पब्लिक स्कूलों के समान शासन ने नवोदय विद्यालय की योजना प्रस्तावित की जिनमें विभिन्न क्षेत्रों और प्रदेशों से बालक विद्यालय परिसर में ही निवास करते हुये अध्ययन करेंगे। प्रत्येक जिले में एक नवोदय विद्यालय होना निश्चित किया गया। मुक्त विश्वविद्यालय और दूरस्थ शिक्षा के लिए इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के कार्यक्षेत्र को और विस्तृत कर उनकी गुणवत्ता सुनिश्चित की जानी थी।

अनुसूचित जाति जन जाति तथा पिछड़े वर्ग की शिक्षा के लिए छात्र–वृत्तियाँ, निःशुल्क पाठ्यसामग्री, छात्रावास अथवा अन्य सुविधाएं दिये जाने का प्रस्ताव था। इसी प्रकार नारी शिक्षा को भी पुरूषों के समान विकसित कर समाज में समानता का भाव प्रस्तुत करना था। युवा और खेल से सम्बन्धि पाठ्यक्रम में स्पोर्ट्स विद्यालय खोलना, योग्य प्रशिक्षण, स्नातक स्तर पर खेल और राष्ट्रीय सेवा योजना आदि जैसी योजनाएं संचालित करने का उद्देश्य रखा गया। अध्यापक तथा उनके प्रशिक्षण के लिए भी एन0 सी0 टी0 ई0 (राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद) को स्वायत संस्था बनाने का उपक्रम था, तथा ग्रामीण विश्वविद्यालय की परिकल्पना में गांधी जी के शिक्षा दर्शन के अनुरूप प्रोत्साहन कार्य करने की प्राथमिकता दर्शायी गयी। इस प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा नीति के क्रियान्वयन में से कार्यक्रम संचालित किये जाने थे।

सुझाव

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के क्रियान्वयन पर कुछ मुख्य सुझाव इस प्रकार हैं–

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के कार्यक्रमों का विस्तार इतना अधिक था कि उन्हें पूर्वरूपेण सफल बनाने के लिए अनेक शिक्षा कार्यदलों की आवश्यकता थी। ये कार्यदल विभिन्न क्षेत्रों में अवलोकन और परिश्रम से इसे सफल बनाते हैं–

कार्यदलों की सूचना और गठन

1. समाज से स्वयंसेवी संस्थाओं और व्यक्तियों के सहयोग से ऐसे कार्यदलों का गठन किया जाना चाहिए जो बाल्य शिक्षा से लेकर प्राथमिक और अनौपचारिक शिक्षा के क्षेत्र में समर्पित भाव से काम करें।
2. स्त्री शिक्षा के अर्न्तगत शिक्षित महिलाओं, अनुदेशिकाओं व अन्य सुरूचि सम्पन्न महिलाओं को प्रेरित करना चाहिए।
3. युवा महिलाओं के लिए व्यवसायिक तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए। महिलाओं के शैक्षिक विकास के लिए माध्यमिक और विश्व विद्यालय स्तर पर भी निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए तथा उनके लिए छात्रावास और विभिन्न विभागों में सेवा के अवसर भी निश्चित किये जाने चाहिए।
4. खेल और युवा कार्यक्रमों में राष्ट्रीय सेवा योजना के अर्न्तगत राष्ट्रीय विकास और व्यवसायोन्मुख योजनाएं चलायी जानी चाहिए।
5. अनुसूचित जाति, जनजाति और पिछड़े वर्ग के लिए पुस्तकालय, विद्यालय निःशुल्क अध्ययन सामग्री तथा उच्च शिक्षा, स्तर तक उन्हें वजीफा देकर उनके जीवन स्तर का विकास करना चाहिए ताकि वे राष्ट्र की मुख्य धारा में मिल सके।
6. इसी प्रकार विकलांगों की शिक्षा व्यवस्था के विषय में अन्धे, गूंगे, बहरे विद्यालयों में विद्यार्थियों को ब्रेल, श्रवण उपकरण और प्रशिक्षित ऐसे अध्यापक होना चाहिए जो संकेतों द्वारा उनका शिक्षण कर सकें तथा उन्हें वे सभी सुविधाएं और परिचारक अनुचर प्रदान किये जाएं जो सेवा भाव से उनके सहायक हों।
7. नवोदय विद्यालयों में आवासीय विद्यालय की सुविधाएं राज्य शासन द्वारा उपलब्ध करायी जाय। वर्तमान 261 नवोदय विद्यालयों को राज्य शासन को स्थानान्तरित कर दिया जाय।
8. तकनीकी व प्रबन्ध शिक्षा को औद्योगिक दृष्टि से विकसित किया जाय तथा उनमें अनुसन्धान व विकास की दिशाओं को भी बढ़ाया जाय।
9. ग्रामीण विश्वविलाय के क्षेत्र में ऐसे विषय पढ़ाये जाय जिनका सीधा सम्बन्ध ग्रामीण उत्पादन से हो और उन्हें बाजार मूल्य पर क्रय–विक्रय में उपयोग किया जा सके।

ग्रामीण विश्वविद्यालयों में सभी विषय ग्रामीण अंचलों में जाकर अध्ययन किये जाय और उनके प्रोजेक्ट बनाये जायं व उन्हीं क्षेत्रों के उपयोग के अनुरूप अनुसन्धान कार्य किये जाय।

10. भाषाओं के क्षेत्र में त्रिभाषा सूत्र लागू कर एक राष्ट्रीय भाषा, क्षेत्रीय भाषा व अन्य प्रदेशीय भाषा अथवा अन्तर्राष्ट्रीय भाषाओं में से किसी एक का अध्ययन कराया जाय। कम्प्यूटर की भाषा को भी अनिवार्य रूप से सिखाया जाय।

प्रस्तुत शोध का योगदान

नीति निर्धारण, सुनियोजन एवं विद्यालयी शिक्षा के क्षेत्र में परियोजना और कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में आवश्यक आकड़ों और आधार सामग्री का अत्यन्त महत्व है। उत्तर प्रदेश में स्वतन्त्रता के बाद गठित शिक्षा आयोगों द्वारा प्रतिपादित शिक्षा नीतियों का जो समय की आवश्यकता के अनुसार व्यवहारिक कठिनाइयाँ वश पूर्ण रूप से लागू नहीं की जा रही थी व वर्तमान में शिक्षा के उन्नयन हेतु इन नीतियों को लागू किये जाने की आवश्यकता महसूस की गयी, परन्तु तत्कालीन सरकार ने इसी आवश्यकता के परे यह महसूस किया कि राष्ट्र की शिक्षा व्यवस्था के सुधार हेतु राष्ट्रीय स्तर की शिक्षा नीति की घोषणा की जाय। अतः परिणाम स्वरूप नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 घोषित की गयी। पुनः सत्ता परिवर्तन के साथ 4 वर्षोपरान्त पुनः नयी सरकार ने 1990 में इस नीति को पुर्न संशोधित किये जाने हेतु आदेश जारी किये। इस प्रकार प्रस्तुत शोध में स्वतन्त्रता के उपरान्त गठित शिक्षा कमीशन एवं शिक्षा प्रणाली की जाँच एवं उनके उत्तरोत्तर सुधार हेतु गठित समितियों का राष्ट्रीय शिक्षा नीति से तुलनात्मक अध्ययन किया जाना उचित समझा गया। इसके पूर्व शिक्षा के क्षेत्र में किसी भी शोधार्थी ने इस तरह की समस्या को अपना शोध विषय नहीं चुना था अतः आवश्यकतानुसार शोधकर्ता ने प्रस्तुत समस्या का चयन किया जिसका भविष्य में शोधार्थियों के लिए महत्वपूर्ण योगदान है।

1. प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में इतिहास क्रम से स्वतन्त्रता के पूर्व अंग्रेजी शासन काल में जो शिक्षा नीतियाँ क्रियान्वित की गयी थीं उनका विस्तृत रूप से विवेचन किया गया है। इसके साथ ही स्वतन्त्र भारत में शिक्षा विषयक आयोग, समितियाँ और नीतिगत दस्तावेज एक कालक्रम में प्रस्तुत किये गये हैं। इससे भारतीय शिक्षा के इतिहास का एक क्रम भी बनता है।

2. शिक्षा में व्यापक दृष्टिकोण से उच्च शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा और प्राथमिक शिक्षा के लिए विषय में प्रशासन, संगठनात्मक और विकास क्रम के क्षेत्रों में तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

3. शिक्षक शिक्षा और प्रशिक्षण के वर्तमान संदर्भों में प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में विस्तृत विवेचना की गयी है।

4. प्रौढ़ शिक्षा, सतत् शिक्षा और इसी प्रकार से अनौपचारिक शिक्षा के क्षेत्रों में नीतिगत तुलनात्मक विवेचन किया गया है।

5. शिक्षा के समस्त क्षेत्रों को एकीकृत कर नीतिगत दुर्बलताएं और भविष्य के विकास के लिए सुझाव प्रस्तुत किये गये हैं।

उपर्युक्त अध्ययन से मुझे विश्वास है कि प्रस्तुत शोध प्रबन्ध भविष्य में शिक्षा के विकास के अध्ययन में उपादेय सिद्ध होगा।

भावी शोध कार्य हेतु सुझाव

इस अनुसन्धान में कुछ ऐसे विषयों का संकेत मिलता है जिनपर विस्तृत शोध की जा सकती है–

1. सम्पूर्ण देश की शिक्षा व्यवस्था एवं स्वतन्त्रता के बाद गठित शिक्षा आयोगों का आलोचनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

2. शैक्षिक स्तरों के विकास क्रम में स्वतन्त्रता के उपरान्त गठित शिक्षा समितियों का योगदान पर एक अध्ययन ऐतिहासिक अध्ययन किय जा सकता है।

3. स्वतन्त्रोपरान्त गठित शिक्षा नीतियाँ एवं क्रियान्वयन का भावी पीढ़ी के विकास पर प्रभाव आलोचनात्मक अध्ययन भावी शोध का विषय चुना जा सकता है।

4. उत्तर प्रदेश के विकास क्रम में परीक्षा प्रणाली व अध्यापकों की दशा एवं स्तर पर आलोचनात्मक अध्ययन।

5. वर्तमान आर्थिक तंगी में अभिभावनों की समस्याओं एवं शैक्षिक प्रणाली का तुलनात्मक अध्ययन भावी शोध का विषय बन सकता है।

6. शिक्षा प्रणाली और देश का भविष्य पर एक आलोचनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

7. भारत में शिक्षा व्यवस्था एवं देश की वित्त व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

8. सरकारी याजनाओं के प्रति भावी पीढ़ी की सोच एक आलोचनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

9. स्वतन्त्र भारत की शिक्षा व्यवस्था एवं वर्तमान शिक्षा व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन भावी शोध हेतु ज्ञान वर्ध एवं उपयोगी विषय बन सकता है।

10. सन् 1950 के बाद शिक्षा के विभिन्न स्तरों में व्याप्त शिक्षा व्यवस्था का राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 व संशोधित नीति 1990 का तुलनात्मक अध्ययन भावी शोध का विषय बन सकता है।

उपरोक्त विषयों पर भावी शोध हेतु अपने सुझाव प्रस्तुत करते हुये शोध कर्ता ने अपनी शोध के दौरान स्वतन्त्रतोपरान्त शिक्षा आयोगों तथा समितियों तथा नयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति का तुलनात्मक विवेचन कर इस निष्कर्ष पर पहुँची है कि भावी पीढ़ी को जाग्रत करने उसे विकास की दशा से जोड़ने के लिए प्रदेश स्तर पर एक निश्चित काल–क्रम के अन्तराल के बाद शिक्षा प्रणाली का अभिनवीकरण किया जाय जिससे शिक्षा प्रणाली में व्याप्त बुराईयों को समय रहते दूर किया जाए और देश के लिए भावी कर्णधारों को तैयार करने में बाधाएं उत्पन्न न हो।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अग्रवाल जे० सी०	नई शिक्षा नीति, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली	1986
2. काबरा उम्मेदराम	नयी शिक्षा नीति, क्रियान्वयन एवं सतत् मूल्यांकन, अजमेर कृष्णा ब्रादर्स	1987
3. कपिल एच० के०	अनुसन्धान विधियाँ, आगरा, भार्गव बुक हाउस	1982
4. खुल्लर के० के०	"राष्ट्रीय शिक्षा नीति", नयी दिल्ली, विज्ञापन और दृश्य प्रचार निदेशालय	1988
5. गैरिट एच० ई०	शिक्षा एवं मनोविज्ञान में, नयी दिल्ली, राजकमल प्रकाशन	
6. नयी शिक्षा नीति (विशेषांक)	आगरा विनोद पुस्तक मन्दिर	
7. पाण्डेय रामशकल	नयी शिक्षा नीति, आगरा विनोद पुस्तक मन्दिर, बुन्देल खण्ड दर्शन	1991
8. पाण्डेय रामशकला तथा अन्य	भारतीय शिखा की समस्याएं, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक, आगरा	1974
9. पाण्डेय जय नारायण	भारत का संविधान, इलाहाबाद सेन्ट्रल एजेन्सी	1976
10. पं० रामशकल पाण्डेय	राष्ट्रीय शिक्षा, आगरा विनोद पुस्तक मन्दिर	1987
11. शर्मा डी० एल० एवं वशिष्ठ के० के०	"भारतीय शिक्षा की नई दिशाा मेरठ, लायल बुक डिपो	1987
12. शर्मा आर० ए०	शिक्षा अनुसन्धान, मेरठ, लायल बुक डिपो	1985
13. शिक्षा की चुनौती (नीति संबंधी परिप्रेक्ष्य)	सम्बन्धी परिप्रेक्ष्य नयी दिल्ली शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार	1985
14. शिक्षा विवेचन	नयी दिल्ली, भारत सरकार शिक्षा मंत्रालय	1990
15. सिद्दीकी एवं सुख्लाल	राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं नूतन आयाम उदयपुर, राजस्थान प्रकाशन गृह	1986
16. सुखिया एस० पी०	शैक्षिक अनुसन्धान के मूल तत्व, आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर	
17. त्रिपाठी विद्या बन्धु	उत्तर प्रदेश का भूगोल कानपुर किताब घर	1967
18. पाण्डेय रामशकल तथा अन्य		
19. पाण्डेय, जयनारायण	भारत का संविधान इलाहाबाद, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी	1976
20. फारे, एडगर	आजीवन शिक्षा, शिक्षा जगत आज और कल, भोपाल मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी	1974
21. प्रकाश श्री	भारतीय शिक्षा की समस्याएं, नयी दिल्ली मीनाक्षी प्रकाशन	1986–87
22. मदन मोहन एवं सारस्वत	भारतीय शिक्षा का विकास, इलाहाबाद कैलाश प्रकाशन	1972
23. मल्होत्रा, पी० एल०	भारत में विद्यालयी शिक्षा, वर्तमान स्थिति और भाषी आवश्यकताएं नयी दिल्ली राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद	1986

24. मिश्र, माधवी	उत्तर प्रदेश में शिक्षा, लखनऊ मनोहर प्रकाशन	1972
25. मिश्र, विद्यासागर	भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्याएं, इलाहाबाद आलोक प्रकाशन	1976
26. मुखोपाध्याय, श्रीधरनाथ	भारतीय शिक्षा का इतिहास, बड़ोदा आचार्य बुक डिपो	1961
27. रावत, प्यारेलाल	भारतीय शिक्षा का इतिहास, आगरा यूनिवर्सल पब्लिशर्स	1987
28. सिन्हा, एच० सी०	शैक्षिक अनुसन्धान, नयी दिल्ली विकास पब्लिशिंग हाउस	1979
29. सिंह, राघव प्रसाद	भारत वर्ष तथा उत्तर प्रदेश में प्रजातांत्रिक उच्चतर माध्यमिक शिक्षा की ऐतिहासिक भूमिका, लखनऊ हिन्दी साहित्य भण्डार	1959
30. सूर, रमणीकांत तथा दुबे	भारतीय शिक्षा का इतिहास (अंगेजों के समय से), इलाहाबाद किताब महल	1957
31. सैय्यदन, के० जी०	शिक्षा की पुर्नरचना (प्राठलम्स ऑफ एजूकेशन रिकान्स्ट्रक्शन, अनुवादक, मुनीश सक्सेना)	
32. डा० मदन सिंह	प्रौढ़ शिक्षा, शिक्षा निकेतन, लखनऊ दिल्ली राजकमल प्रकाशन	1960

शिक्षा कोष

1. गाषा, ओम प्रकाश	सामाजिक विज्ञान कोश, दिल्ली आर० बी० पब्लिशिंग हाउस	1984
2. गाषा, ओम प्रकाश	राजनीति विज्ञान कोश, दिल्ली आर० बी० पब्लिशिंग हाउस	1985
3. जायसवाल, सीताराम	शिक्षा विज्ञान कोश, दिल्ली राजकमल	
4. मिश्र आत्मानन्द	शिक्षा कोश, कानपुन ग्रन्थम	1977
5. बुलके फादर कामिल	अंग्रेजी हिन्दी कोश नयी दिल्ली एस० चाँद एण्ड सन्स	1986

शासकीय प्रतिवेदन

अ. केन्द्रीय

1. "भारत का संविधान" नयी दिल्ली भारत सरकार, 1950
2. "भारत" 1985, नयी दिल्ली सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, 1987
3. "शिक्षा की चुनौती" नीति सम्बन्धी परिप्रेक्ष्य, नयी दिल्ली शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार, 1985
4. आचार्य राममूर्ति रिर्पोट, 1990
5. ईश्वर भाई पटेल कमेटी रिर्पोट, 1977

ब. राज्य

1. शिक्षा की प्रगति, 1955 उत्तर प्रदेश शिक्षा विभाग
2. शिक्षा की प्रगति 1960 तथा 1961 उत्तर प्रदेश शिक्षा पत्रिका विभाग, शिक्षा संचालक कार्यालय
3. शिक्षा की प्रगति 1965 से 1988–89 इलाहाबाद शिक्षा निदेशालय
4. अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण, प्रथम से चतुर्थ (1957+1965,–66,1973–74 तथा 978–79) तथा उत्तर प्रदेश शिक्षा विभाग

5. पंचम अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण (संक्षिप्त) 1987, उत्तर प्रदेश शिक्षा विभाग 1989
6. उत्तर प्रदेश वार्षिकी (1986–87, 1987–88, 1988–89, 1989–90) 1990 से 97 तक उत्तर प्रदेश सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, 1988
7. योजनागत विकास उत्तर प्रदेश शासन सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग
8. उत्तर प्रदेश तथा भारत वर्ष की शैक्षिक तुलनात्मक सांख्यिकी इलाहाबाद राज्य शिक्षा संस्थान, 1987
9. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986, महिला समिति की आख्या इलाहाबाद शिक्षा निदेशालय

स. पत्र-पत्रिकाएं

1. शिक्षा विवेचन नयी दिल्ली भारत सरकार, शिक्षा मन्त्रालय
2. योजना नयी दिल्ली योजना भवन
3. साहित्य परिचय (विशेषांक) आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर
4. शिविरा पत्रिका बीकानेर शिक्षा विभाग, राजस्थान
5. कल्याण (शिक्षांक) संख्या 1 वर्ष 62 गोरखपुर गीता प्रेस
6. अमृत प्रभात (दैनिक) इलाहाबाद
7. स्वतन्त्र भारत (दैनिक) लखनऊ
8. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नयी दिल्ली हिन्दुस्तान टाइम्स प्रकाशन

BIBLIOGRAPHY

1. Agarwal J.C. Education Policy in India, Delhi, Shipra Publication 1992
2. Agarwal J.C. National Policy on Education, Delhi, Doba House 1989
3. Agarwal J.C. Ramamurti Report on National Publicy on Education in 1990 India Delhi, Doba House
4. Best John Research in Education, New Delhi Prectice Hall of India 1982
5. Biswas Arvind Indian Education Documents since Independence, Newand Other Delhi Popular Publication
6. Buch M.B. A Surnyd Research in Education
7. Buch M.B. Baroda's Centre of Advanced Study in Psychology and Education
8. Buch M.B. Third Survey d. research in Education 1978-83 New Delhi N.C.E.R.T. 1987
9. Buch M.B. Fourth Survey of research in Education volume I,& II, New Delhi N.C.E.R.T.
10. G. S. Chandra Education Policy in India since Warson Hesleys, Naya Prakash Publications, Calcutta
11. Shukla, P. D. The New Education Policy in India, New Delhi, Sterling Publication Pvt. Ltd 1990
12. Naik, I. P. Equality Quality and Quantity, Bombay Allied Publisher 1975
13. Second Survey of research in Education 1972-78 Baroda, Society of research and development 1979
14. Documents of New Education Policy 1986 Govt. of India Publications
15. U.P. Education Manual Edition 1988
16. U.P. University Act 1973
17. Education in Uttar Pradesh B. S. Sail
18. Bhargava M.L. History of Secondary Education in Uttar Pradesh, Lucknow, Superintendent, Printing and Stationary U.P. 1958
19. Bhatnagar, R.P. and Others Educational Administration, Meerut Loyal Book Depot, 1986
20. Butler, Lor Survival depends on Higher Educations, New Delhi, Vikas Publication, 1971
21. Chaubey, S.P. Secondary Education for India, New Delhi, Atma Ram and Sons, 1956
22. Dutta, U.C. Educational Surney of Uttar Pradesh, Allahabad. The Indian Press (Publisher), 1957

23. Jha S. N. Naths	Secondary Education, its Principles, Curriculum and reorganization. Allahabad, be Indian Press (Publicaton),	1960
24. Kaul, Lokesh	Methodology of Educational Research, New Delhi, Vani Educational Book,	1984
25. Kumar, Girija and Others	Bibliography, New Delhi, Vikas Publishing House,	1981
26. Lal, Mohan	Recent Trends in Secondary Education, Delhi Arya Book Depot ,	1973
27. Malcolm, S. Adisesbiah	Indian Education in 2001, New Delhi, N.C.E.R.T.	1975
28. Mukerjee, R.K.	Ancient Indian Education, Varanasi, Nand Kishor and Sons	1945
29. Mukherjee, S,N.	Education in India, Today and tomorrow, Vadodara, Acharya Book Dept,	1976
30. Mukherjee, S.N.	Secondary Education in India, New Delhi, Orient Longman,	1972
31. Murti, S.K.	Contemporary Problems and Current Trends in Education Ludhiyana, Prakash Brothers,	1979
32. Pal, S.K. and Saxena, P.C.	Quality Control in Educational Research, New Delhi, Metsopolian Book Company,	1985
33. Prakash, Sri	Educational System of India, Delhi, Concept Publishing Company,	1977
34. Purkait, B.R.	New Education in India, Amballa Contt, The Associated Publishers	1987
35. Sharma, M.L.	Educational Reconstruction in Uttar Pradesh, Agra, Kranchalson and Company.	
36. Shukals, P.D.	Administration of Education in India, New Delhi, Vikash Publishing House	1983
37. Tewari, D.D.	Primary Education in Uttar Pradesh, Allahabad, Ram Narain Lal, Benimadho Lal,	1967
38. Verma, M.	An introduction to Educational and Psychological research, Bombay, Asia Publishing House	1965
39. Vakil, K.S. and Others	Education in India, Bombay, Altied Publishers.	

Dictionaries

1. Allee, John Gage	Webster's Dictionary, Washington, The Library Press	1958
2. Bamnock, Graham	The penguin Dictionary of Education England Middlesex,	1981
3. Gondhaleker, S.B.	Synoptical Glossary of Education. Poona, The Royal Book stall.	

4. Hills, P.J. — A Dictionary of Education London, Routledge and Kegam Pace, 1982
5. Thomas, J.B. and Others — International Dictionary of Education London, The English Language Book Society 1979

Central Government Reports, Records Commissions, Committees & Policies Commissions

1. Indian Education Commission 1882-83
2. Report of the University Education Commission.
3. Report of the University Education Commission. New Delhi Government of India, 1952
4. Report of the Education Commission, National Development. New Delhi, Ministry of Education Government of India, 1966

Committees

1. Chand, Tara — Committee on Secondary Education in India. New Delhi Ministry of Education, 1948
2. Committee for the intgration of post basic and multipurpose schools, Delhi Ministry of Education. 1957
3. Report on the National Committee on women Education. New Delhi Ministry of Education, 1959
4. Committee on Religious and moral instruction. New Delhi Ministry of Education, 1960

Policies (Education)

1. Resolution on Education Policy. New Delhi, Government of India, 1904
2. Resolution on Education Policy. New Delhi, Government of India, 1913
3. Report of the committee of members of Parliament on Education. National Policy on Education, New Delhi, Government of India, 1968 1968
4. National Education Policy, New Delhi, Lok Sabha Secretariate, 1984
5. National Policy on Education, 1968. New Delhi, Ministry of Human Resource Development, 1986
6. Programme of Action, National Policy on Education, 1986 New Delhi, Ministry of Human Resource Development,

Other Reports and Publications

1. All India Education Surney I, II, III and IV, New Delhi, N.C.E.R.T.
2. The Indian Year Book of Education I and II, New Delhi N.C.E.R.T.
3. Constitution of India, Delhi Manages Publications, Government of India.
4. Fifth all India Educational Surney, Selected Statistics. New Delhi, N.C.E.R.T., 1989
5. Annual Report 1985-86 to 2000. New Delhi, Ministry of Education, Government of India 2001
6. Surney Report on Educational Administration Uttar Pradesh, New Delhi, N.E.P.A., 1976
7. A.T.R. 1978, S.C., Nagpur All India Reporter Limited, 1948
8. Education in India, 1950-51, New Delhi Ministry of Education, 1954
9. Education in India, 1960-61, New Delhi Ministry of Education, 1966
10. Education in India, 1965-66, New Delhi, Ministry of Education, 1973
11. Education in India, 1970-71, New Delhi, Ministry of Education, 1976
12. Education in India, 1975-76, New Delhi, Ministry of Education , 1978
13. Education in India, 1979-80, New Delhi, Ministry of Human Resource and Development, 1987

Periodicals and news papers

1. Education, Quaterly, New Delhi, Ministry of Education and serial welfare.
2. Indian Education Review, New Delhi, N.C.E.R.T.
3. Journal of Indian Education, New Delhi, N.C.E.R.T.
4. M.I.E. Journal, New Delhi, N.C.E.R.T.
5. Progress of Education, Pune Vidyarathi Grah Prakashan.
6. Education Quaterly, Lucknow Development of Education Government of Uttar Pradesh.
7. University News, New Delhi, A.O.L.U.